॥ ॐ ॥

श्री जिनाय नमः ॥

आगमानुसार मुंहपत्ति का निर्णय.

और

जाहिर उद्घोषणा नं० १-२-३.

कर्त्ता:—

परमपूज्य परमगुरु श्री १००८ श्री मन्महोपाध्यायजी श्री सुमतिसागरजी महाराजके लघु शिष्य पं० मुनि-श्रीमणिसागरजी महाराज .

छपवाकर प्रकट कर्त्ता:—

श्री कोटा आदि का जैन श्वेतांबर संघ.

तीन फार्म लक्ष्मीविलास स्टीम प्रेस इन्दौर में छपे और शेष सब ग्रंथ कोटा प्रिंटिंग प्रेस कोटा शहर में छपा.

[... सं० २४५३] [विक्रम सम्वत् १९८३. कार्त्तिक शुदी ११.

[...० कॉपी.] भेट [मूल्य सत्य ग्रहण.

॥ ॐ ॥

श्री जिनाय नमः ॥

आगमानुसार मुंहपत्ति का निर्णय.

और

जाहिर उद्घोषणा नं० १-२-३.

कर्त्ता:—

परमपूज्य परमगुरु श्री १००८ श्री मन्महोपाध्यायजी श्री सुमतिसागरजी महाराजके लघु शिष्य पं० मुनि-श्रीमणिसागरजी महाराज .

छपवाकर प्रकट कर्त्ता:—

श्री कोटा आदि का जैन श्वेतांबर संघ.

तीन फार्मे लक्ष्मीविलास स्टीम प्रेस इन्दौर में छपे और शेष सब ग्रंथ कोटा प्रिंटिंग प्रेस कोटा शहर में छपा.

श्रीवीरनिर्वाण सं० २४५३] [विक्रम सम्वत् १९८३. कार्त्तिक शुदी ११.

प्रथम वार २०००० कॉपी.] भेट [मूल्य सत्य ग्रहण.

इस सूचना को पहिले पढिये.

यहसमय शांतिपूर्वक सबसे मिलकर रहनेका है, बहुत लोग खंडन मंडनके विवादकी पुस्तकें छपवाना नहीं चाहते, तोभी स्थानकवासियों की तरफ से मुख वस्त्रिकानिर्णय, गुरु गुणमहीमा, जैनतत्त्वप्रकाश, वगैरह ८-१० पुस्तकोंकी अनुमान ३००००-४०००० हजार प्रतियें छपकर प्रकाशित होचुकी हैं उन्होंमें भगवती, ज्ञाताजी, निरयावली, निशीथ, महानिशीथ आदि आगमोंके नामसे तथा आचार दिनकर, योगशास्त्र, ओघ निर्युक्ति आदि प्राचीन शास्त्रोंके नामसें और शिवपुराण आदि अन्यशास्त्रों के नामसे प्रत्यक्ष झूठ बोलकर व्यर्थ भोलेजीवोंको धोखे में डालनेके लिये हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेका ठहरायाहै और हाथमें मुंहपत्ति रखकर मुंह की यत्ना करके बोलने वाले सर्व जैनियों के उपर बहुत अनुचित आक्षेप किये व झगडा फैलाया, यह सब बातें सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्ध होनेसे भव्यजीवोंको सत्य बातका निर्णय होनें के लिये मेरेको स्थानक वासियों की मुंहपत्ति बाधने संबंधी सब पुस्तकों का और सब शंकाओंका समाधान अच्छी २ युक्तियों पूर्वक सर्व शास्त्र पाठों के साथ इस ग्रंथमें लिखना पडाहै। स्थानक वासी, बाईस टोले, ढूंढिये व साधु मार्गी इन चार नामोंमें ढूंढिया नाम विशेष करके सर्वत्र प्रसिद्ध है तथा "ढूंढत ढूंढत ढूंढिलिया सब, वेद पुराण कुरानमें जोई। ज्यों दही मांहीसु मक्खण ढूंढत, त्यों हम ढूंढियों का मत होई॥ १॥" इस प्रकार यह लोग ढूंढिया नाम स्वीकार करते हैं इसलिये मैंने इस ग्रंथमें ढूंढिया नाम लिखा है इसपर कोई नाराज न होवे।

प्रेसवालोंकी कई तरहकी तखलीफोंसे यह ग्रंथ बहुत विलंबसे प्रकट हुआ है और छपाई में भी बडी गरबड रहगईहै इसलिये प्रेसदोष, दृष्टिदोष, लेखक दोषकी पाठक गण क्षमा करें। प्रथम जाहिर उद्घोषणा नंबर १-२-३ पढकर फिर मूल ग्रंथ पढें और सत्य तत्वही ग्रहण करें।

इसग्रंथको आपपढो, औरोंको पढाओ, मित्रोंको व आसपासक गावोंमें भेजो, श्वेताबर जैनों में घर घरमें प्रचार करो, तभी सत्य असत्यकी सर्वत्र परीक्षा होगी. सर्पकी कांचली की तरह झूठीबातरूप मिथ्यात्वको छोडना और चिंतामणिरत्नकी तरह सत्य बातरूप सम्यक्त्वको ग्रहण करना यही सच्चे जैनीका पहिला कर्तव्यहै। लघुकर्मी मोक्षगामी सत्य बात ग्रहण करतेहैं और गुरुकर्मी संसारगामी सत्य बातपर नाराज होतेहैं।

॥ जाहिर खबर ॥

जैन साधु धर्मलाभ कहतेहैं, यहभी अनादि मर्यादाहै परन्तु नई रीति नहींहै। वीरप्रभुके समयमें नंदीषेणमुनि वैश्याके पाड़ेमें गौचरी गये तब धर्मलाभ कहाथा, उसके प्रति उत्तरमें तुक मिलानेके लिये वैश्या ने अर्थलाभ कहाथा, यह बात प्रसिद्धही है। धर्मलाभ आशीर्वाद का वचनहै और दयापालो यह उपदेशका वचनहै, आशीर्वाद और उपदेश के वचनोंकी ढूंढियोंको समझ नहींहै इसलिये हर समय सब जगह पर दयापालो कहा करतेहैं १, पहिलेके श्वेतवस्त्रवाले यतिलोग शुद्ध संयमी थे परंतु अभी बहुतसे यतिलोग आरंभ-परिग्रहवाले होगये और ढूंढिये लोग यतियोंकी निंदा करतेहुये जिनमूर्त्तिका भी उत्थापन करनेलगे इस-लिये यतियोंसे भिन्नता दिखलानेके लिये तथा अनादि जिनमूर्तिकी मा-न्यताकी रक्षाकरनेके लिये व शुद्धसंयम धर्मकी जगतमें महिमा बढाने के लिये संवेगी नाम रखकर शुद्ध संयमी साधुओंने पीलेवस्त्र कियेहैं २, जिनराजके जन्माभिषेक, दीक्षा-केवलज्ञान-निर्वाण कल्याणक महोत्सव, नंदीश्वरद्वीपमें शाश्वतचैत्योंमें अट्ठाईमहीमा, जिनप्रतिमाकी पूजादि धार्मिक कार्यों में देव-देवी-श्रावक-श्राविका आदिको छकायकी दया, १८ पापस्थानक सेवनका त्याग व जिनराजके अनंत गुणोंका स्मरण ध्यान हो-नेसे अशुभ कर्मोंकी निर्जरा, शुभ पुण्यानुबंधी पुण्यकी वृद्धि और मोक्ष की प्राप्तिहोतीहै ३, जिनप्रतिमाकी जल-चंदन-पुष्प आदि अष्ट प्रकारी पूजामें जीवहिंसाका पाप बतलाकर निषेध करनेवाले ढूंढिये-तेरहापं-थियोंकी अनसमझ और प्रत्यक्ष अनंत लाभकी प्राप्ति ४, जिनमूर्ति-तीर्थ-यात्राकी मान्यता वीरप्रभुके मोक्ष पधारे बाद नई शुरु नहीं हुई है किंतु अनादिसेहै और इसका निषेध करनेवालोंको छकायकी हिंसा, १८पापस्था-नक सेवन करनेका पाप और जिनेश्वर भगवान् के गुणोंका स्मरण परम वैराग्य, शुभभावना वगैरह महान् धर्म कार्योंकी अंतरायका दोष आता है५, जिनप्रतिमाके द्वेषसे ढूंढियोंने मूलसुत्रों में व रामचरित्र-श्रीपाल चरित्रादिमें कैसे २ पाठ और अर्थ बदलकर नये २ कौन २ पाठ बनाकर डा-लेहैं६, चैत्य विवाद निर्णय७, निक्षेप विवाद निर्णय ८,इत्यादि बातोंका तथा तेरहापंथियोंकी दया-दान विषयी सब शंकाओंका निर्णय ९, इन सबका निर्णय " श्रीजिनप्रतिमाको वंदन-पूजन करनेकी अनादि सिद्धि " नामा ग्रंथमें तथा " ज़ाहिरउद्घोषणा नंबर ४-५-६" में लिखनेमें आवेगा।

॥ ॐ ॥

॥ श्रीजिनाय नमः ॥

जाहिर उद्घोषणा नंबर १.

॥ मोक्ष प्राप्ति की इच्छा करने वालोंको सूचना ॥

पहिले इस लेख को पूरा २ अवश्य पढिये.

सुलहो विमाण वासो, एगछत्ता मेहीणि वि सुलहा ॥
दुल्लहा पुण जीवाणं, जिणंदवर सासणे बोहिं ॥ १ ॥

इस अनादि संसारचक्रमें जन्म-मरण-रोग-शोक-आधि-व्याधि उपाधि-संयोग-वियोग-गर्भावास-नरक-तिर्यंचादि अनंत दुःख भोगते हुए भी कभी पुण्ययोग से देवलोकमें वास होना तथा एकछत्र पृथ्वीका राज्य, लोकपूजा, सरस आहार, इष्टभोग वगैरह मिलने सुलभहैं परन्तु संसारके अनंत दुःखों का विनाश करके मोक्षका अक्षय सुख को देने वाले श्रीजिनेश्वर भगवान्के वचनोंपर शुद्धश्रद्धा (सम्यग् दर्शन) प्राप्त होना बहुत मुश्किलहै।

" सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्ष मार्गः " शुद्ध सम्यक्त्व, ज्ञान और चारित्र ही मोक्षका मार्गहै यह वाक्य जैनसिद्धांतों में प्रसिद्धही है, जबतक सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र इन तीनोंकी प्राप्ति न होगी तबतक किसी भी जीवका मोक्ष हुआ नहीं, होगा नहीं, और हो सकेगाभी नहीं, इसलिये मोक्षप्राप्ति की इच्छाकरने वालोंको सम्यग् दर्शनादि इन तीनोंको अंगीकार करने चाहिये।

जबतक जिनेश्वर भगवान्के वचनोंपर शुद्धश्रद्धा न होगी तबतक सम्यग् दर्शन कभी नहीं होसकता, जबतक सम्यग्दर्शन न होगा तब तक सम्यग् दर्शनके बिना पदार्थका यथार्थ बोध कभी नहीं होसकता जबतक पदार्थका यथार्थ बोध न होगा तबतक सम्यग् ज्ञान नहीं हो

सकता, जबतक सम्यग् ज्ञान न होगा तबतक सम्यग् चारित्र की प्राप्ति कभी नहीं होसकती, इससे जिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञा मूजिब चलना यही सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्र की प्राप्तिका हेतुहै, यही संसारी दुःखों का नाश करने वालाहै, यही मोक्ष देनेवाला प्रबल कारण है इस लिये संसारी दुःखोंसे छुटनेकी चाहना करने वाले आत्मार्थियों को जिनेश्वर भगवान्‌की आज्ञा मूजिब चलनाही परम हितकारीहै।

और आज्ञाविरुद्ध चलनेवाले चाहें बडे २ तपकरें, जपकरें, ध्यान करें, जिन गुणगावें, सूत्र-सिद्धांत पढें-गुणें-सुनें-सुनावें, साधुके पांच महाव्रत पालें, श्रावकके १२ व्रत पालें, दोनों समय प्रतिक्रमण करें, दयापालें, दानदेवें, शीलपालें, इत्यादि बहुत धर्मकार्य करें तोभी आज्ञा विरुद्ध होनेसे सब निष्फल हो जाते हैं. मोक्ष देने वाले नहीं होते, किंतु संसार बढाने वाले होते हैं।

देखो-' ज़मालि ' आज्ञा मूजिब चलता और शुद्ध प्ररूपणा करता तो बहुत कठिन (बडी उत्कृष्ट) क्रिया करनेवाला था सो उसी भवमें अवश्यही मोक्ष जाता परंतु भगवान्‌का एक वचन उत्थापन करनेसे उसकी बड़ी कठिन क्रिया; तपस्यादिभी सब निष्फल गई और हलकी नीचजातिका किलविषिया देव हुआ. वैसेही आज्ञा विरुद्ध चलनेवाले उत्सूत्रप्ररूपणा करने वाले और उनको समझाने परभी अपना झूंठा हठ नहीं छोड़ने वाले बहुत दयापालें तथा तपस्यादि धर्मकार्य करें तोभी अज्ञान कष्ट (काय क्लेश) से हलकी जातिके देवादि होवें या कपट क्रियासे तिर्यंच योनिमें जावें तो सेठ साहूकार राजा बाबूके वहां घोड़े हाथी आदि होकर काय क्लेशका फल भोगकर संसारमें परिभ्रमण करते हैं, फिर बोधीबीज सम्यक्त्व जैनधर्म मिलना बहुत मुश्किल होता है, इसलिये शास्त्रोंमें कहाहै कि—

" सम्मत्तं उच्छिदिय, मिच्छत्तारोवणं कुणइ नियं कुलस्स ॥ तेण सयलो वि वंसो, कुगइमुह संमुहो नीओ ॥१॥ उस्सुत्त भासगाणं, बोहिं-णासो अणंत संसारो ॥ पाणचए वि धीरा, उस्सुत्त तो नभासंति ॥२॥ उस्सुत्तमाचरंतो, बंधइकम्मं सुचिक्कणो जीवो ॥ संसारं च पवड्ढइ, माया मोसं च कुव्वई ॥ ३ ॥ उम्मगदेसओ, मग्गनासओ गुढहियय माइलो ॥ सढसीलो य ससल्लो, तिरियाउं बंधए जीवो ॥ ४ ॥ उम्मग देसणाए, चरणं नासंति जिणवरिंदाणं " ॥ इत्यादि—

देखो—ऊपरकी गाथाओंका भावार्थ ऐसाहै कि-जो पुरुष जिनाज्ञा के अनुसार सत्य बातरूप शुद्धश्रद्धाका निषेध करके अपने मतपक्षकी झूंठी बातरूप मिथ्यात्वको अपने कुलमें याने-समुदायमें स्थापन करे, वह अपने समुदायकी सद्गतिका नाशकरके दुर्गतिमें डालनेका दोषी होताहै ॥ १ ॥ उत्सूत्र (शास्त्र विरुद्ध) प्ररूपणा करने वालेको बोधीबीज सम्यक्त्वका नाश होताहै और अनंत संसार बढताहै, इसलिये प्राण जानेपरभी जन्म मरणादि दुःखोंसे डरनेवाले धीरपुरुष कभी उत्सूत्रप्ररूपणा नहींकरते ॥२॥ उत्सूत्रप्ररूपणा करनेवाला अपने चिकने (गाढ मजबूत) कर्मोंका बंध करताहै, कपट सहित माया मृषा बोलताहै तथा संसार बढाताहै, ॥३॥ जिन आज्ञाके अनुसार सत्य बातको झूंठी बतलाकर निषेध करनेवाला और उन्मार्गकी अपनी कल्पित झूंठी बात को सत्य कहकर स्थापन करनेवाला गूढ कपटी अंतर मिथ्यात्वरूप शल्य सहित होनेसे तिर्यंच योनिके आयुष्यका बंध करताहै ॥४॥ और उन्मार्ग की बात जमानेसे जिनेश्वर भगवान्का कहाहुआ पंच महाव्रतरूप अपने चारित्र धर्मका नाश करताहै. इत्यादि बहुत बातें शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा करनेवाले के लिये लिखी हैं ।

और यहबात सर्वजैन समाजमें प्रसिद्धहै कि-कोईभी प्राणी शास्त्र का एकपद, एकअक्षर या काना-मात्र-बिंदुकीभी उत्थापना करे या अर्थ उलटा करे वा पहिलेका पाठ निकाल कर; नया दाखिल करके सूत्र को और अर्थको उलट पुलट करदेवे तो वह अपने सम्यक्त्वका और चारित्रका नाश करके मिथ्यादृष्टि अनंत संसारी होताहै ।

तथा सच्चे उपदेशसे एक जीवको सम्यक्त्वी बनानेसे वह जीव परंपरासे मोक्ष जाताहै, उससे ८४ लक्ष जीवायोनिके सर्वजीवोंको अभय दान देताहै, उसका लाभ सच्चा उपदेश देनेवालेको मिलताहै, और मिथ्या उपदेशसे किसी जीवको सम्यक्त्वसे भ्रष्ट करके मिथ्यात्वमें डालनेसे वह संसारमें रूलताहै, उससे ८४ लक्ष जीवायोनिकी घातकरताहै, उसका पाप मिथ्याउपदेश देनेवालेको लगताहै, इसलिये मिथ्याउपदेश देनेवाला ८४ लक्ष जीवायोनिका घातक महान्दोषी समझा जाताहै.

और जो कोई साधु होकरके भी कभी बडीजीवहिंसा करे, चोरी करे, किसी से व्याभिचार सेवे, धनादि परिग्रह रक्खे और रात्रिभोजन

करे तो उसके पापसे वह अकेलाही डूबताहै, उसपापसेभी मिथ्याउपदेश देनेवाला अपनी आत्माको व अपने सर्वभक्तोंको डुबाने वाला होनेसे अनंतगुणा अधिक पापी होताहै तथा मिथ्यात्वकी परंपरासे अनेक जीव डूबतेहैं और जीव हिंसादि सब पापकर्मोंकी आलोयणा (प्रायश्चित्त) हो सकती है उससे वह पापकर्म छूटभी सकतेहैं, परंतु मिथ्या उपदेश देनेवाले उत्सूत्र प्ररूपककी तो कोई आलोयणाभी नहीं होसकती, उसको तो 'गौशाले' की तरह संसारमें उसके विपाक भोगनेही पडतेहैं।

तथा शरणे आयेकी रक्षा करना यह उत्तम पुरुषका श्रेष्ठ धर्महै, परन्तु विश्वास जानकर शरणे आनेवालोंका नाश करनेवाला विश्वासघाती महापापी कहा जाताहै. तैसेही संसारी दुःखोंका नाश करनेके इरादेसे मोक्षमार्गका सच्चा रास्ता बतलानेके विश्वाससे सत्य धर्म उपदेश सुननेको आनेवाले भव्यजीवोंको जिनाज्ञा विरुद्ध होकर मिथ्या उपदेश देकर मिथ्यात्वमें डालनेवाला शरणेआयोंका शिरछेदन करनेवालेसे भी अधिक दोषी होता है।

ऐसे मिथ्या उपदेश देनेवालेको मानने-पूजने वाले, उसका वचन माननेवाले, संगकरने वाले अपने सम्यक्त्वको हानि पहुंचाते हुए मिथ्यात्वी बनतेहैं, जिनाज्ञाको उत्थापन करतेहैं, तथा अपना धर्म कर्म व्यर्थ गमाते हैं और संसार बढातेहैं. इसलिये मोक्षजानेकी चाहना करनेवाले आत्मार्थियोंको मिथ्याउपदेश देने वालोंका तथा मिथ्या बातका अवश्य त्याग करके जिनाज्ञानुसार सत्यबातका धर्मोपदेश देनेवालोंका संगकर के सत्यबातको ग्रहणकरके अपने धर्मकार्य-मनुष्यभवको सफल करना चाहिये तथा अपनी आत्माका कल्याण करना चाहिये।

और कभी अज्ञान दशासें अपनेसे उत्सूत्र प्ररूपणा होगई हो या अपनी परंपरासे चलीआती हो तो उसको समझनेपर त्याग करनेमें लोक लज्जा या गुरु परंपराका हठ न रखना चाहिये. जो प्राणी अपने गुरु के मोहसे, समुदायके मोहसे, बहुत वर्षोंके मतपक्षके वेषके मोहसे, दृष्टिरागी परिचयवाले भक्तोंके मोहसे या लोकपूजादि किसीभी कारण से उत्सूत्र प्ररूपणाकी झूंठीबातको नहीं छोडते, जीवें तबतक उसीकोही चलाया करतेहैं सो बहुत लोगोंके मिथ्यात्वका हेतु होनेसे अपने मनुष्यभवको तथा जैन धर्मको हारतेहैं और मिथ्यात्वसे संसार बढाते हैं

इसलिये भवभिरुयोंको ऐसे झूंठे हठ छोडनेमें कभी विलंब न करना चाहिये।

सम्यक्त्वीके लक्षण.

शुद्धश्रद्धावाले शुद्ध सम्यक्त्वी सच्चे जैनीका यही लक्षणहै कि-झूंठीप्रपंचबाजी, मायाचारी, हठाग्रह न करे. अपनीभूलको समझने या समझानेपर तत्काल सुधारलेवे झूंठीबातको त्याग करनेमें लोकलज्जा व गुरुपरंपराका हठ न रक्खे, वहतो जिनाज्ञानुसार चलकर कर्मविटंबनासे दूर होकर आत्मकल्याण करनेकी ही हमेशा चाहनाकरे और जबतक संसारमें रहे तबतक भवभवमें जिनाज्ञानुसार धर्मकार्य करनेकी भावना भावे. देखो-जिनाज्ञानुसार चलनेवाला शुद्ध सम्यक्त्वी थोड़ा तपकरे, थोड़ा जपकरे, थोडा ज्ञानपढे, थोडा चारित्रपाले या चारित्र लेनेकी भावना रक्खे, चारित्र धर्मपर; जिन आज्ञापर गाढ (दृढ) अनुराग रक्खे और जीवदया दान शीलादि यथा साध्य थोडे २ धर्मकार्य करे तो भी वो बडवृक्षके बीजकी तरह बहुत फलदेनेवाले होतेहैं. तथा सूर्यकी किरणोंकी तरह मिथ्यात्व-अज्ञानरूपी अंधकारका नाशकरके मोक्षनगर में जानेके लिये रास्तामें कर्मरूपी कीचडको सूखाकर मोक्षनगरका रास्ता साफ करतेहैं और सम्यग्ज्ञानका प्रकाश करनेवाले होतेहैं उससे श्रेणिक महाराज व कृष्ण वासुदेव वगैरह महानपुरुषोंकी तरह थोड़े धर्मकार्यभी निर्विघ्नतापूर्वक शीघ्र मोक्षदेनेवाले होतेहैं इसलिये शुद्ध श्रद्धासहित जिनाज्ञा मूजब थोड़े धर्म कार्य करने से भी आत्महित होता है, सर्व कर्मोंका नाश होताहै, जन्म-मरणादि दुःख विनाश होतेहैं और मोक्ष मिलनेसे अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है.

मिथ्यात्वीके लक्षण.

जोप्राणी पांच महाव्रत लेकर ऊपरसे साधुका वेषधारणकरले, परंतु उसके अंतरमें यदि मिथ्यात्वका वास होतो वह प्राणी हजारों सत्य बातोंको छोडकर किसीतरहके झूंठे आलंबन खडे करके सत्यबातको उत्थापन करताहै और झूंठीबातको स्थापन करनेके लिये बड़ापरिश्रम करताहै. अभिनिवेशिक मिथ्यात्वी होताहै वह अपने मनमें दूसरे सामनेवालेकी सत्यबातको न्यायपक्ष से समझने परभी सिर्फ लोकलज्जा व पूजा मान्यताका अभिमान तथा गुरुपरंपराके आग्रहसे जानबूझकर

अपना असत्यमत स्थापनकरनेके लिये न्यायमार्गको छोडकर उद्धताई से सत्यबातका निषेध करताहै अन्यायमार्गको ग्रहणकरताहै ऐसे प्राणी के लोकलज्जा पूजामान्यता गुरुपरंपरादि सब इसभवमें यहांही धरेरहते हैं और झूंठेहठाग्रहसे कर्मबंधन होतेहैं उसके विपाक गोष्टामाहिल, त्रैराशिक वगैरह निन्हवोंकी तरह संसारमें भोगने पड़तेहैं इसलिये हे जैनी नाम धारण करनेवाले भव्यजीवों झूंठेहठको छोडो और सत्यबातको ग्रहणकरो उससे तुम्हारे आत्माका कल्याण हो.

अनादि मर्यादाका उल्लंघन.

देखो अनादि प्रवाह मूजब जिनाज्ञानुसार अनेक गुणवाली सत्य बातके गंभीर आशयको गुरु गम्यतासे और विवेक बुद्धिसे समझे विना अपनी अल्पमतिकी कल्पनासे कोई कार्यमें यदि लाभ समझकरके भी किसी प्रकारसे नयीबात शुरू करें तोभी तत्वदृष्टिसे वह हानि की हेतु होतीहै तथा अगाडी जाते बडे अनर्थ करनेवाली होतीहै. देखिये जिनाज्ञानुसार अनादिकालसे सर्व जैनमुनियोंको हाथमें मुंहपत्ति रखकर बोलते समय मुंहकी यत्ना करके बोलनेकी प्रवृत्ति चली आतीहै तोभी अनुमान विक्रम सम्वत् १७०९ में प्रथमही 'लुंकेमत' के 'लवजी' साधु ने अपनी कल्पनासे एकनई युक्ति निकाली कि-खुलेमुंह बोलनेसे हिंसाहोती है, वार वार उपयोग रहता नहीं इसलिये मुंहपत्ति मुंहपर बांध लें तो उससे दया पलेगी, कभी खुलेमुंह न बोलना पडेगा- ऐसा विचार कर हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति बांधनेकी नईरीति चलाई परन्तु तत्वदृष्टिसे दयाके नामसे चलाई हुई यह रीति दयाकी जगह ज्यादाहिंसा करनेवाली होगई और मिथ्यात्व फैलनेरूप बड़ा अनर्थ करनेवाली हुई.

देखो अब लवजीकी परंपरावाले ढूंढिये कहतेहैं कि-'हमेशा मुंहपत्ति बांधनेवाले कहीं २ दूर दूर अनार्य देशोंमे चलेगये होंगे इसलिये लवजीका हमेशा मुंहपत्ति बांधना नवीन मालूम पड़ा' ढूंढियोंका यह कहना प्रत्यक्ष झूंठहै क्योंकि-गुजरात, काठियावाड, कच्छ, मारवाड़, मालवा, मेवाड, पूर्व, पंजाब, मध्यप्रांत, दक्षिण वगैरह देशोंमें लाखों जैनी रहते थे उन देशोंमें हजारों साधु-साध्वी विचरते थे परन्तु किसी भी देश में कोई भी जैन साधु हमेशा मुंहपत्ति बांधने वाला नहीं था और जैन समाज में बहुत से जैनी श्रावक लक्षाधिपति व क्रोडाधिपति व राज्य मान्य बड़े २ गृहस्थ मौजूद थे सो लाखों-करोडों रुपये दानादि धर्मकार्योंमें खर्च

करतेथे, जिन्होंके दानसे हजारों लाखों मनुष्योंका और पशुओंका पालन होताथा. ऐसे दातार धर्मी व गुरु भक्त जैनियोंके देशोंमें किसी जगह भी हमेशा मुंहपत्ति बांधनेवाला कोईभी साधु न मिला तोफिर दूर २ के अनार्य देशोंमें कैसे मिल सकताहै, कभी नहीं. और अनार्यदेशों में साधुको जाना कल्पता नहीं, वहां शुद्ध आहारादि मिलसकते नहीं तथा जैसा धर्म कार्यों के उपदेशका लाभ आर्यदेशोंमें मिलताहै वैसा लाभ अनार्य देशोंमें कभी नहीं मिलसकता, इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधने वाले साधु कहीं २ दूर २ अनार्य देशोंमें होनेका वहाना वतलाना सर्वथा झूंठ है.

फिरभी देखिये-इस देशमें पहिले बडे २ दुष्काल पडेथे. तोभी जैन साधुओंको आहार मिलताथा. आहारके अभावसे आर्यदेश छोडकर कोई भी जैनसाधु अनार्यदेशमें नहीं गयाथा और उसके बादभी इस देशमें लाखों जैनियोंमें व करोडों सनातनधर्म वालोंमें ढूंढियोंके पूर्वजोंको आहार नहीं मिला तथा कुछभी धर्म देखनेमें न आया इस लिये दूर २ के अनार्य म्लेच्छ देशोंमें जाना पडा, बडे अफसोसकी वातहै कि अपनी नईबातको प्राचीन ठहरानेके लिये जैनसमाजको व सनातनी उत्तम हिंदुओंको आहार न देनेका व कुछभी धर्म न होनेका कलंक रूप ऐसी २ कल्पित झूंठी बातें बनानेमें ढूंढियोंको कुछभी विचार नहीं आता इसलिये ऐसी प्रत्यक्ष झूठी गप्प चलाकर लवजीकी हमेशा मुंहपत्ति बांधनेकी बातको सच्ची साबित करना चाहते हैं सो कभी नहीं होसकती.

फिरभी देखिये विचार करिये-इस आर्य खंडमें भगवान्ने पंचमकाल में जैनशासनमें २१ हज़ार वर्ष तक अखंड परंपरासे साधु होते रहेनेका फरमायाहै जिसमें बहुतसे साधु शिथिलाचारी होंगे, थोडे आत्मार्थी शुद्ध संयमी होंगे ऐसा कहाहै परन्तु सर्व भ्रष्टाचारी होजावेगें, कोईभी शुद्धसाधु न रहेगा. इसप्रकार संयमी साधुओंका अभाव किसी समयभी नहीं बतलाया, जिसपर भी ढूंढिये लोग भगवान्के वचन विरुद्ध होकर सर्व साधुओंको भ्रष्टाचारी ठहरा कर इस आर्य खंडमें शुद्ध साधुओंका सर्वथा अभाव बतलाते हैं और हमेशा मुंहपत्ति बांधनेके नये मत वालों को शुद्ध साधु ठहरातेहैं यहभी प्रत्यक्ष उत्सूत्र प्ररूपणा है।

ढूंढिये कहतेहैं कि लवजीने आगम देखकर मुंहपत्ति बांधीहै उसीके अनुसार हमलोगभी आगमप्रमाण मूजब हमेशा मुंहपत्ति बांधतेहैं, यह भी

प्रत्यक्ष झूंठहै किसीभी आगममें हमेशामुंहपत्ति बांधीरखनेका नहीं लिखा. पाठकगण ढूंढियोंके आगम प्रमाणकी बातोंके थोडेसे नमूने देखेंः—

१ भगवतीसूत्रके १६ वें शतकके दूसरे उद्देशमें शक्रेंद्रके अधिकार में शक्रेंद्र अपने मुंहआगे हाथ या वस्त्र रखकर बोले तो निर्वद्यभाषा बोले, ऐसा भगवान्‌ने फरमायाहै. इसबातको आगेकरके ढूंढिये साधु अपने मुखपर हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहरातेहैं, सो उत्सूत्र प्ररूपणाहै, क्योंकि भगवान्‌ने जीवदयाके लियेही बोलनेके समय उसी वख्त मुंहआगे वस्त्ररखने की आज्ञादीहै सो इस आज्ञा मूजिब चलनेवालोंको बोलनेके समय अपने मुंहआगे वस्त्र रखना योग्यहै परन्तु इस आज्ञाके विरुद्ध होकर अपने मुंहपर हमेशा बांधनेका ठहरानेवाले भगवानकी आज्ञा उत्थापन करतेहैं. देखिये विचारकरिये-अगर भगवान् बांधनेमें लाभजानते तो मुंहआगे रखनेका कभी न बतलाते किन्तु बांधनेकाही बतलाते मगर हमेशा बांधनेमें अनेक दोष लगतेहैं इसलिये बांधनेकी आज्ञा न दी, जिसपरभी अपनी मति कल्पनासे हमेशा बांधनेका ठहराने वाले प्रत्यक्ष झूंठा हठाग्रह करतेहैं।

२ इन्द्र के अधिकारवाले पाठ से मुंहपर बांधने का अर्थ निकालोगे तो इन्द्रकेभी बांधनेका ठहरजावेगा. अतित-अनागत-वर्तमान कालमें अनंत इन्द्रहोगये वो सर्व तीर्थंकरमहाराजोंकी सेवाभक्तिमें हरसमय आतेहैं परन्तु किसीभी इन्द्रने अपना मुंह बांधा नहीं, इसलिये जैसे इन्द्र बोलते समय मुंहआगे वस्त्र रखताहै. वैसेही ढूंढियोंकोभी इन्द्रकी तरह बोलते समय अपने मुंहआगे वस्त्र रखना योग्य है. मुंहआगे वस्त्र रखनेका दृष्टांत बतलाकर फिर बाँधनेका ठहरानेवाले मायाचारीसे भोलेजीवों को उन्मार्ग में डालते हैं, और भगवती सूत्र के नामसे बडा अनर्थ करते हैं।

---

३ भगवतीसूत्रके ७ वें शतक के ३३ वें उद्देशमें 'जमाली' के दीक्षा के अधिकारमें तथा ज्ञाताजीसूत्रके प्रथम अध्ययनमें 'मेघकुमार' के दीक्षाके अधिकारमें जमालि-मेघकुमारके दीक्षासमय लोचकरने योग्य चारअंगुल केशरखकर बाकीके शिरके केश काटनेके समय राजकुमारोंको अपने नाककी दुर्गंधि न लगने पावे इसलिये गृहस्थी नाईयोंने धनके लोभ व राजाओंकी आज्ञासे धोती-दुपट्टे जैसे वस्त्रके मुखकोशसे थोडीदेरके लिये नाक और मुंह दोनोंबांधकर राज्यकुमारोंके केश काटेथे, इस प्रमाण को आगे करके ढूंढिये साधुपनेमें हमेशा मुंहपत्ति बांधीरखनेका ठहराते

हैं यहभी प्रत्यक्ष उत्सूत्र प्ररूपणाही है क्योंकि दीक्षालेकर राजकुमार मुनियोंने मुंहपत्तिसे मुंह बांधा नहीं था इसलिये गृहस्थ नाईके मुंहबांधनेकी बातको आगेकरके भोले जीवोंको भ्रममें डालकर हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका मत स्थापन करना बड़ी भूलहै। अगर गृहस्थ नाईकी तरह ढूंढिये मुंह बांधना मानते होवें तब तो मुखकोश जैसा लंबा वस्त्र लेकर नाक मुंह दोनों बांधने चाहिये, जिसके बदले नाक खुला रखकर अकेला मुंहबांधनेका ठहराना सर्वथा अनुचित है।

---

४. विपाकसूत्रके प्रथम अध्ययनमें गौतमस्वामी मृगाराणीके जन्मांध बहुत दुःखी और रोगीष्ट मृगापुत्रको देखनेके लिये गये, तब मृगापुत्रके ठहरनेके दुर्गंधी वाले भूमिघरका दरवाजा खोलनेके समय मृगाराणीने वस्त्रसे पहिले अपना मुंहबांधा और दुर्गंधीका बचाव करनेकेलिये गौतमस्वामीको भी कहा कि आपभी अपनी मुंहपत्तिसे मुंह बांध लें. इस बातसे साबित होताहै कि गौतमस्वामीके मुंहपर मुंहपत्ति पहिले बांधी हुई नहीं थी, किंतु हाथमें थी. इसलिये मृगाराणीने दुर्गंधीका बचाव करने के लिये मुंहपर बांधनेका कहा, यदि पहिलेसे बांधी हुई होती तो फिर दूसरी बार बांधनेका कभी नहीं कहती, यह बात अल्पमति वाले भी अच्छी तरहसे समझ सकते हैं, तोभी ढूंढिये लोग इस सत्य बातको उडानेके लिये और अपनी कल्पित बात को स्थापन करनेके लिये कहतेहैं कि मृगाराणीने नाक बांधनेका कहाहै, ऐसा ढूंढियोंका कहना सर्वथा झूठहै "मुहपोत्तीयाए मुह बंधेह" मुंहपत्तिसे मुख बांधो, ऐसा मूल पाठ होने परभी नाक बांधनेका कहना प्रत्यक्ष झूठहै और गौतमस्वामी के तथा मृगाराणी के लिये दुर्गंधीका बचाव करने संबंधी एकही अधिकारमें एकही समान पाठ होनेसे यदि गौतमस्वामीका पहिलेसे मुंहबंधा हुआ मानोंगे तो मृगाराणीकाभी मुंह पहिलेसे बंधा हुआ ठहर जावेगा और मृगाराणीका मुंह खुला मानोंगे तो गौतमस्वामीका भी मुंह खुला मानना पडेगा. एकही बात में, एकही संबंध में दोनोंके लिये मुंह बांधनेका समान पाठ होनेपरभी मृगाराणीका मुंह खुला और गौतमस्वामीका मुंह बंधा हुआ ऐसा पूर्वापर विरोधी (विसंवादी) उलट पुलट अर्थ कभी नहीं होसकता इसलिये गौतमस्वामीका पहिलेसे ही मुंहबंधा हुआ ठहराना बडी भूल है।

५. फिरभी देखिये यह बात प्रत्यक्ष अनुभव सिद्धहै कि ढूंढिये साधु हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखतेहैं वह लोग कभी दुर्गंधी वाले रास्ते होकर जावें तो उन्होंको कोईभी दूसरे लोग मुंहपत्तिसे मुंह बांधनेका नहीं कह सकते और जिन्होंके मुंह खुले होंगे उन्होंको दुर्गंधीकी जगह मुंह बाधनेका कह सकतेहैं इसी तरहसे गौतमस्वामीकेभी पहिलेसे मुंह बंधा हुआ नहींथा इसलिये मृगाराणीने मुंहपत्ति से मुंह बांधनेका कहाहै. अगर कहा जाय कि दुर्गंधी तो नाकसे आतीहै परंतु मुंहसे नहीं. यहभी अनसमझ की बातहै, क्योंकि उबासी वगैरह करते समय या बातें करते समय नाक-मुंह दोनोंसे श्वासोश्वास आताहै और दुर्गंधभी नाक-मुंह दोनों से पेटमें जातीहै इसलिये मुंहबांधो ऐसा कहनेसे नैगमनयके मतसे सामान्यपने नाक-मुंह दोनों बांधनेका अर्थहोताहै। इसलिये अतीवगहन आशय वाले आगम वचनोंका भावार्थ समझे विना मुंहसे पेटमें दुर्गंधी जानेका निषेध करना और गौतमस्वामीके पहिलेसेही मुंहबंधा ठहराने बाबत कुयुक्तियें करना प्रत्यक्ष उत्सूत्र प्ररूपणाहै।

---

६. निरयावली सूत्रमें सोमिलतापसने अपने मुंहपर काष्टमुद्रा याने-लकड़ेकी पटड़ी बांधीथी, ऐसा अधिकारहै. उसको देखकर ढूंढिये लोग जैनसाधुको हमेशा अपनेमुंहपर मुंहपत्ति बांधीरखनेका ठहराते हैं सो सर्वथा उत्सूत्र प्ररूपणाहै. क्योंकि सोमिल ब्राह्मणने पहिले श्रीपार्श्वनाथस्वामीके पास सम्यक्त्वमूल श्रावकके बारह व्रत लियेथे, श्रावक धर्म पालनकरताथा परंतु पीछेसे साधुओंकी संगतके अभावसे सम्यक्त्व से और श्रावक धर्मसे पीछा गिरगया, मिथ्यात्वी धर्म करने लगा तथा कंदमूल खानेवाले गंगानदीमें स्नान करनेवाले दिशापोषक तापसोंके पास तापसी दीक्षा ली और अपने मुंहपर काष्टमुद्रा बांधकर मौन रहनेका नियमलिया, यह सब मिथ्यात्वीपनेकी क्रियाथी इसलिये पार्श्वनाथ स्वामीके एक भक्त देवताने सोमिल तापसको पांच रात्रितक बार-बार उपदेश देकर काष्ट मुद्रादि मिथ्यात्वी क्रिया छुड़वाकर सम्यक्त्व सहित श्रावकके १२ व्रत अंगीकार करवाये तब सोमिल तापस श्रावकधर्म पालन करने लगा परंतु पहिले जो काष्टमुद्रादि मिथ्यात्वी क्रिया की थी उस क्रियाकी आलोयणा न ली, उससे विराधक हुआ और आयुः पूर्ण करके शुक्रनामा ग्रहपनेमें उत्पन्न हुआ. यदि काष्ट मुद्रादि मिथ्यात्वी

क्रियाकी आलोयणा करलेता तो आराधक होकर वैमानिक देवलोकमें अवश्यही उत्पन्न होता. इसलिये सोमिल तापसके काष्टमुद्रासे मुंहबांधनेका दृष्टांत बतलाकर ढूंढियेलोग हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराते हैं. सो प्रत्यक्ष ही श्रीजिनेश्वर भगवान् की आज्ञाकी विराधना करके मिथ्यात्वी बनतेहैं।

७. फिरभी देखिये जैसे उस देवताने सोमिलको मिथ्यात्वी क्रियासे छुड़वाकर सम्यग्धर्ममें पीछा स्थापन किया. इसी तरहसे जिनेश्वर भगवान् के भक्त सर्व जैनियोंका यही कर्तव्यहै कि- सोमिलकी तरह हमेशा मुंहपत्ति बांधने वाले ढूंढियोंकी इस मिथ्यात्वी क्रियाको किसी भी तरह छुड़वाकर उन्होंको जिनाज्ञानुसार सम्यग्धर्ममें स्थापन करें, आराधक बनावें तो बड़ा लाभ होगा।

---

८. ढूंढिये कहतेहैं कि- "महा निशीथ" सूत्रके ७ वें अध्ययनमें लिखाहै कि- मुंहपत्ति बांधेबिना प्रतिक्रमण करे, वाचना देवे-लेवे, वांदणा देवे या इरियावही करे तो पुरिमड्ढंका प्रायश्चित्त आवे. ऐसा कहकर हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहरातेहैं सोभी प्रत्यक्ष झूठहै, क्योंकि 'महानिशीथ' सूत्रके ७ वें अध्ययनमें आलोयणाके अधिकारमें मुंहपत्तिको अपने मुंहके आगे रक्खे बिना साधु प्रतिक्रमणादि क्रिया करे तो उसको पुरिमड्ढंका प्रायश्चित्त आवे मगर मुंहआगे रखकर उपयोगसे कार्य करे तो दोष नहीं. इससे हमेशा बांधना नहीं ठहर सकता. और "कन्नेठियाए वा मुहणंतगेण वा विणा इरियंपडिक्कमे मिच्छुक्कडं पुरिमड्ढं च" इस वाक्य का भावार्थ ऐसा होताहै कि-गौचरी जाकर पीछे उपाश्रयमें आये बाद गमनागमन की आलोयणा करनेके लिये इरियावही करने वाला साधु प्रमादवश मुंहपत्तिको मुंह के आगे आड़ी डालकर कानोंपर रखकर इरियावही करे तो उस को मिच्छामिदुक्कडंका प्रायश्चित्त आवे और सर्वथा मुंहके आगे रक्खे बिना इरियावही करे तो उसको पुरिमड्ढंका प्रायश्चित्त आवे. इसतरहसे दोनों बातोंके लिये दो तरहके अलग २ प्रायश्चित कहे हैं सो इसका भावार्थ समझे बिना और आगे पीछेके पूर्वापर संबंधवाले पाठको छोड़कर बिना संबंध का थोड़ासा अधूरा पाठ भोले लोगोंको बतलाकर 'कानोंमें मुंहपत्ति डाले बिना इरियावही करे तो मिच्छामि दुक्कडंका या पुरिमड्ढंका प्रायश्चित आवे'

ऐसा उल्टा अर्थ करतेहैं और इस वाक्यके प्रमाणसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहरातेहैं सो यहभी उत्सूत्र प्ररूपणाहै क्योंकि- देखो विचार करो, गौचरी जाकर पीछे उपाश्रयमें आये बाद इरियावही करनेवाला साधु कानोंमें मुंहपत्ति डाले बिना इरियावही करे तो प्रायश्चित्त आवे ऐसा अर्थ ढूंढिये करतेहैं इससे तो यही सिद्ध हुआ कि- जब साधु गौचरी गयाथा तब उसके मुंहपर मुंहपत्ति बांधी हुई नहींथी यदि पहिलेसेही मुंहपत्ति बांधी हुई होती तो उपाश्रयमें आये बाद इरियावही करनेके लिये कानोंमे मुंहपत्ति डालनेका कभी नहीं कहसकते, इसलिये "कन्नेठियाए" इत्यादि यह पाठ कानोंमें मुंहपत्ति डालने का निषेध करताहै और कानोंमें डालने वालेको प्रायश्चित्त बतलाताहै इससे ढूंढियोंकेलिये यह पाठ मुंहपत्ति बांधनेका साधक नहीं, किंतु बाधकहै इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका झूंठा हठाग्रह आत्मार्थियों को छोड़नाही योग्य है।

(गौतमस्वामीका और अईमत्ता कुमारका विचार)

९. ढूंढिये कहतेहैं कि गौतमस्वामी पौलाशपुरी नगरीमें गौचरी गयेथे तब अइमत्ता कुमारने गौतमस्वामीके जीमने हाथकी अंगुली पकड़ली और रास्तेमें बातें करते हुए आहार वहोरानेके लिये अपने राज महलमें लेगयाथा, उस वख्त गौतमस्वामीके मुंहपर मुंहपत्ति बांधीहुईथी, ढूंढियोंका ऐसाकहना प्रत्यक्ष झूंठहै, रास्तेमें बातें करते हुए चले थे, ऐसा "अन्तगड़दशा" सूत्रमें नहीं लिखा. और साधुको रास्तेमें चलते हुए बातें करना कल्पताभी नहींहै, तोभी जैसे छींक वगैरह आवें तो खड़े रहकर नाक और मुंह दोनोंकी यत्ना करतेहैं, इसी तरह रास्तेमें चलते हुए यदि खास जरूरी बातें करने का काम पड़जावे तो खड़े रहकर मुंहपत्तिसे या चद्दरादि अन्य वस्त्रसे अथवा जिसतरह कई गृहस्थी लोग मुंहआगे दुपट्टेको खंधेपरसे आडा डालकर बातें करते हैं तैसेही साधुके डावे खंधेपर जो कंबली रहतीहै उसको मुंहआगे जीमने खंभेपर डालकर मुंहकी यत्ना करके गौतमस्वामी बातें कर सकते थे, इसमें हमेशा मुंह बंधा रखनेका किसीतरहसे साबित नहीं हो सकता। इसलिये गौतमस्वामी के और अइमत्ता कुमार के दृष्टांत बतलाकर. हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराने वालोंकी बड़ी अज्ञानताहै।

(मुंहपत्ति हाथपत्ति का विचार)

१०. ढूंढिये कहतेहैं कि 'मुंहपर बांधे सो मुंहपत्ति और हाथमें रक्खे सो हाथपत्ति' ऐसी ऐसी कुयुक्तियें लगाकर भोले जीवों को भ्रम में डालतेहैं सोभी उत्सूत्र प्ररूपणा ही है क्योंकि देखोः–रजको दूर करने के काममें आनेवालेको रजोहरण कहतेहैं उसको वगलमें रक्खे तो भी रजोहरण ही कहेंगे परंतु वगल पुंछ कभी नहीं कहसकते. वैसेही मुंह-आगे रखनेके वस्त्रको हाथमें रखनेसे भी हाथपत्ति कभी नहीं कह सकते किंतु मुंहपत्ति ही कहेंगे। ढूंढिये भी आहार करने के समय मुंहपत्तिको गोडे पर या आसन पर रखतेहैं तो भी उसको मुंहपत्ति ही कहतेहैं परंतु गोडापट्टी या आसनपट्टी नहींकहते इसी तरहसे मुंहपत्तिको हाथमें रखने से भी हाथपत्ति कभी नहीं कहसकते किंतु मुंहपत्ति ही कहेंगे। और नैगम–संग्रह–व्यवहार नय के मतसे साधू मुंहपत्तिके लिये वस्त्रकी याचना करनेको जावे या याचना करे तथा वस्त्र ले, उसको भी मुंहपत्ति कहतेहैं उस मुंहपत्तिको उपयोग पूर्वक मुंहआगे रखकर यत्ना से बोलने वालों को हाथपत्ति कहकर मुंहपत्तिका निषेध करते हैं सो सर्वज्ञ शासन में नयवादका भंगकरके जिनाज्ञाकी उत्थापना करने वाले महान् दोषी बनतेहैं।

११. फिरभी देखिये–सर्वज्ञ भगवान् निष्फल क्रिया का उपदेश कभी नहीं देते तो भी ढूंढिये मुंहपत्ति को हमेशा मुंहपर बांधी रखतेहैं सो निष्फल क्रियाहै क्योंकि जब साधू दिनमें या रात्रिमें मौनपने काउसग्ग ध्यानकरे अथवा महीना दो महीना वर्ष छः महीना काउसग्ग ध्यानमें खडारहे उस वक्त बोलनेका सर्वथा त्यागहोताहै तबभी हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेका ढूंढिये कहतेहैं सो निष्फल क्रियाकी प्ररूपणा करतेहैं और उपासकदशा, अंतगडदशा, अनुत्तरो ववाई, उत्तराध्ययन, निशीथादि आगमोमें मुंहपत्ति शब्द देखकर उसका भावार्थ समझे विना मुंहपत्ति शब्द से हमेशा मुंहपर बांधनेका अर्थ करते हैं सो सर्वज्ञ शासनके विरुद्ध होनेसे उत्सूत्र प्ररूपणा ही है।

(एक मायाचारी की कुतर्क देखो)

१२. कोई २ ढूंढिये ऐसी भी कुतर्क करतेहैं कि सूत्रोंमें मुंहपत्ति चलीहै परंतु बांधने का नहीं लिखा वैसेही हाथमें रखनाभी नहीं लिखा, यहभी ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठहै. क्योंकि देखो प्रथम तो शक्रेंद्रके

अधिकारमें भगवती सूत्रमें मुहआगे वस्त्र रखकर बोलेतो निर्वद्य भाषा-बोले ऐसा अधिकारहै इसबातको ढूंढिये बहुत दृढता के साथ स्वीकार करते हैं और अपनी पुस्तकों में छपवातेहैं इसबात मुजब जब साधु हाथ में मुंहपत्ति रखेगा तभी बोलने के समय मुंहआगे रखकर बोल सकेगा इसलिये ढूंढियोंके माने हुए इस पाठके अनुसार भगवतीसूत्रके मूलपाठ मुजब हाथमें मुंहपत्ति रखना सिद्ध होता है।

१३. फिरभी देखो आचारांग सूत्रमें साधु को खांसी, उबासी, छींक करते समय अपना मुखढांक लेने का कहा है इसी से भी मुंहपत्ति हाथमें रखना ठहरताहै इसलिये जब छींकादि आवें तब नाक और मुंह दोनोंकी (मुंहपत्ति से) यत्ना हो सकतीहै यदि मुंहपत्ति बांधी हुई होवे तो खांसी-छींकादि करते समय मुखढकनेका सूत्रकार कभी नहीं कहते इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखना सर्वथा सूत्र विरुद्धहै और भगवती, आवश्यक,निशीथ,विपाक,आचारांगादि आगमानुसार मुंहपत्ति हाथमें रखकर कामपडे तब मुखकी यत्ना करना यह बात प्रत्यक्ष सिद्धहै जिस परभी हाथमें मुंहपत्ति रखना नहीं लिखा ऐसा कहनेवाले मायासहित झूठ बोलकर भोलेंजीवोंको व्यर्थ भ्रममें डालतेहैं।

१४. फिरभी देखिये विवेक बुद्धिसे विचार करिये, रजोहरण और मुंहपत्ति यह दोनों उपकरण जीवोंकी रक्षा करनेके लिये ही साधु रखतेहैं इस बातसेही हाथ में रखना स्वयं सिद्धहै तोभी उसको 'हाथमें रखना नहीं लिखा' ऐसी कुतर्क करनेवालोंको अज्ञानी समझना चाहिये क्योंकि जब २ कार्य होवे तब तब रजोहरण और मुंहपत्ति हाथमें लिये बिनातो जीवोंकी रक्षा ही नहीं होसकती इसलिये ऐसी २ कुतर्क करके जिनाज्ञाको उत्थापन करना योग्य नहीं है।

१५. फिरभी देखो-हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखने से सर्वज्ञ शासन में अनूरीक्रिया करनेका दोषआताहै क्योंकि जब साधुको छींकादि आवे तब मुंह आगे मुंहपत्ति रख कर नाक मुंह दोनोंकी यत्ना करनी पडतीहै तथा नाक कान आंख आदि छोटे २ स्थानोंके उपर सचित्त रज वगैरह गिरजावें तो मुंहपत्ति से उसका प्रमार्जन करनेमें आता है और कभी दुर्गंधीकी जगह होकर जाना पडेतो मुंहपत्तिसे नाकमुंह दोनों ढक सकते हैं या बांधभी सकतेहैं इसलिये मुंहपत्ति हाथमें होवेतो जैसे बोलते समय मुंहकी यत्ना होतीहै वैसेही छींकादि करते समय या दुर्गंधी की जगह

नाक मुंह दोनोंकी यत्ना हो सकती है और मुंह परसे सचित्त रज वगैरह की प्रमार्जनाभी हो सकतीहै अगर बांधी हुई होवे तो यह सब कार्य नहीं बन सकते इसलिये मुंहपत्ति हमेशा बांधी रखनसे मुंहपत्तिसे करने योग्य सर्व कार्य अधूरे रहतेहैं, उस से मुंहपत्ति रखनेका पूराफल नहीं होसकता इसलिये सूत्र विरुद्ध होकर अधूरी क्रिया करने रूप हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखना योग्य नहीं है।

(देखो हलाहल झूंठ का नमूना)

१६. प्रवचनसारोद्धार (प्रकरण रत्नाकर भाग तीसरा), आचार दिनकर, ओघनिर्युक्ति, आवश्यक वृहद्वृत्ति, यतिदिनचर्य्या, योग शास्त्र वृत्ति, आदि सर्व प्राचीनशास्त्रोंमें तथा साधुविधि प्रकाश आदि सर्व आधुनिक शास्त्रोंमें "सम्पातिमा जीवा मक्षिका मशकादयस्तेषां रक्षणार्थं भाषमाणै मुखे मुखवस्त्रिका दीयते" तथा "मुखवस्त्रिका कराभ्यां मुखाग्रे धृत्वा" इत्यादि, इस प्रकार मुंहपत्ति हाथमें रखना तथा बोलते समय मुंहआगे रखकर बोलना और प्रतिक्रमणादि धर्मक्रिया करनी ऐसा खुलासा पूर्वक स्पष्ट लिखाहै तो भी ढूंढिये इन सर्वशास्त्रोंके नामसे हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति बांधनेका ठहरातेहैं सो प्रत्यक्ष हलाहल झूठ बोल कर उत्सूत्र प्ररुपणा से उन्मार्ग वढाते हैं। वडे २ प्राचीन शास्त्रोंके नामसे भोले लोगों को भ्रममें डालनेमें ही ढूंढियोंने अपनी बहादुरी समझ रक्खी है, परन्तु ऐसी झूंठीप्रपंच बाजी करनेसे कर्म बंधन होनेका भय होता तो ऐसा अनर्थ कभी न करते आत्मार्थी भव्यजीवों को ऐसे झूठे प्रपंच को त्याग करना ही हितकारी है।

(थूंक में असंख्य जीवों की उत्पत्ति)

१७. हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखने से बोलते समय मुंहपत्तिके थूंक लगताहै मुंहपत्ति गीली होती है, उस में समय २ असंख्य पंचेंद्रीय संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं और मरते हैं, यह पंचेंद्रीय जीवोंकी हिंसा का दोष हमेशा मुंहपत्ति बांधने वाले ढूंढियों को लगताहै जिस पर भी उस का झूठा बचाव करने के लिये ढूंढिये कहते हैं कि संमूर्च्छिम जीवों की उत्पत्ति के १४ स्थान बतलाये हैं उस में थूंक का १५ वां स्थान नहीं बतलाया इसलिये थूंकमें जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती यह भी ढूंढियों का कहना सर्वथा सूत्र विरुद्ध है क्योंकि देखो १४ स्थानों में मुख के मैलमें तथा सर्व अशुचि पदार्थोंमें जीवोंकी उत्पत्ति होना बतलायाहै

सो थूंक मुखका मैलहै और अशुचि पदार्थ भीहै यह बात सर्व जगत प्रसिद्ध प्रत्यक्ष अनुभव सिद्ध है इस लिये थूंक में जीवों की उत्पत्ति होती है तथा १४ स्थानों के अन्दर ही है तिस पर भी ढूंढिये लोग थूंक को १४ स्थानों में और अशुचि प्रदार्थ में नहीं मानते यह बडी भूल है, सूत्र विरुद्ध है और जगत विरुद्ध भी है।

१८. फिर भी देखिये- बडे तपस्वी लब्धिवाले मुनि का थूंक लगाने से कुष्टादि रोग चले जाते हैं, यह बात जैन समाज में प्रसिद्ध है तथा "उववाई" आदि मूल आगमों में "खेलोसही पत्ताणं" इस पाठ की व्याख्या में प्रकटपने कही है और जैसे नाककी लाल, नाक का जल, व नाक का श्लेषम (सेडा) यह सब नाक के मैल के अंतरगत अशुचि में गिने जाते हैं, उन में जीवों की उत्पत्ति मानी है वैसे ही मुखकी लाल, मुख का जल, मुख का थूंक, मुख का झाग व कफ यह सब मुख के मैल के अंतरगत अशुचि में गिने जाते हैं इस लिये थूंक में असंख्य संमूर्च्छिम पंचेंद्रीय मनुष्यों की उत्पत्ति अवश्य होती है और उस की हिंसा का दोष थूंक की गलिी मुंहपत्ति को मुंहपर बांधी रखने वाले सर्व ढूंढियों को जरूर लगता है. चाहे जितनी कुयुक्तियें करें तो भी इस हिंसा का बचाव किसी तरह से कभी नहीं हो सकता. इसलिये जिस आत्मार्थी भव्य जीव को इस हिंसा का बचाव करने की इच्छा होवे तो हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखने का झूठा ढोंग छोडना ही हितकारी है।

(संवेगियोंकी बेदरकारी और ढूंढियोंका झूठा प्रपंच.)

१९. "सम्यक्त्वमूल बारह व्रतकी टीप" नामा पुस्तक में मुंहपत्ति बांधने का लिखाहै ऐसा ढूंढियों का कहना प्रत्यक्ष झूठ है क्यों कि "सम्यक्त्वमूल बारहव्रतकी टीप" प्रथमावृत्ति संवत् १९२८ में मुंबई ग्रंथसागर छापाखाना में छपी है उस में सामायिक व्रत के अधिकार में श्रावक को शास्त्र वांचते समय "त्रीजोचल दृष्टि दोष ते सामायक लिधां पछे दृष्टि नासिका ऊपर राखने मनमा सुद्ध उपयोग राखे मौनपणे ध्यान करे अने सामायकमां शास्त्र अभ्यास करवुं होयतो जयणा युक्त मुखे मुंहपत्ती देई दृष्टि पुस्तक ऊपर राखीने भणे तथा सांभले" इसलेखमें मुंहपत्ति हाथमें रखना लिखाहै सो पुस्तक पढने के समय मुंहपत्ति मुंहके आगे रखकर पढे, ऐसा स्पष्ट लेख होनेपरभी गुजराती भाषांतर करके संवत् १९३६ में केशवजी रामजी ने छपवाया उसमें

"मुखे मुंहपत्ती देई" इस लेखको बदलाकर "मुंहपत्ती मुखे बांधी" ऐसा झूंठा छपवा दियां उसके बाद फिर भी संवत् १९५४ में भीमासिंह माणेकने भी भूलसे वैसाही छपवादिया, प्रूफ सुधारने वाला ढूंढक श्रावक नौकरथा उसने पुस्तक छपवाते समय ऐसा अदल बदल करने का अनर्थ करादिया, इतने वर्ष होगये हजारों पुस्तकें फैल गईं परन्तु किसी भी साधु श्रावक ने इस बात का ध्यान न दिया और ढूंढिये ऐसे २ झूठे बनावटी लेख आगे करके भोले जीवों को बतला कर व्यर्थ उन्मार्ग स्थापन करके मिथ्यात्व बढाते हैं उनोंको अपनी भूल का शुद्ध भावसे मिच्छामि दुक्कडं देना चाहिये।

(ढूंढिये भ्रम में पडकर भूलते हैं)

२०. प्रश्न व्याकरण, महानिशीथ ओघनिर्युक्ति आदि प्राचीन शास्त्रोंमें "मुहणंतगेण" शब्द आयाहै इसका अर्थ 'मुखानंतकं' मुख-वस्त्रिका, मुंहपत्ति ऐसा होताहै, तोभी ढूंढियों की समझमें नहीं आया इस लिये "मुहणंतगेण" शब्द देखकर मुंहपत्तिका 'दोरा' ऐसा गमारी अर्थ करके महानिशीथ, ओघनिर्युक्ति की चूर्णि आदि शास्त्रोंके नामसे दोरा डालकर मुंहपत्ति बांधनेका समझ बैठे हैं सो निष्केवल भ्रममें पडकर भूलतेहैं। "मुहणंतगेण" का अर्थ मुखवस्त्रिका है इसलिये दोरा का अर्थ कभी नहीं होसकता और ओघनिर्युक्ति आदि शास्त्रकारोंने 'बोलनेका कामपडे तब मुंहआगे मुंहपत्ति रखकर बोलना' ऐसा अर्थ स्पष्ट खुलासा सहित लिखदियाहै जिसपर भी प्रत्यक्ष शास्त्रकारोंके विरुद्ध होकर अपनी अज्ञान कल्पनासे ओघनिर्युक्ति आदि के नाम से हमेशा मुंहपर बांधनेका ठहराने वाले व्यर्थ ही बालचेष्टा जैसा हठाग्रहसे उन्मार्ग बढातेहैं।

(भुवनभानु केवलि आदि रासोंमें हमेशा मुंहपत्ति बांधना नहीं लिखा)

२१. ढूंढिये कहतेहैं कि भुवनभानु केवलि के रासमें हमेशा मुंहपत्ति बांधना लिखाहै यहभी झूठहै, क्योंकि इस रासमें रोहिणी नामा एक सार्थवाहकी लडकी को निंदा विकथा करनेका स्वभाव पडगया था सो अच्छी हित शिक्षा देने वालोंको भी उल्टा जवाब देती थी, जिन मंदिरमें देवदर्शन करनेको और उपाश्रयमें व्याख्यान सुननेको जावे

तबभी विकथा करने लगे. जब साध्वीजी ने रोहिणी को विकथा छोड़कर स्वाध्यायादि धर्म कार्य करनेका उपदेश दिया तब रोहिणी साध्वी के ऊपर नारज होकर क्रोधसे कहने लगी कि "मुंह मरड़ी तव ते कहेरे, साध्वीजी सुनो वात॥ साधु जनने पण सर्वथारे, विकथा न वरजी जात ॥ १ ॥ गुरुणीजी मलि मलि म करो मांड ॥ न गमे मुजने पाखंड ॥ गुरुणीजी ॥ न तजाये अनर्थ दंड, जो जीभ थाय शतखंड ॥ गुरुणीजी ॥ २ ॥ मुंहपत्तिए मुख बांधीनेरे, तुमे बेशोछो जेम ॥ गुरुणीजी ॥ तीम मुखे डुचो देहीनेरे, बीजे बेसाय केम ॥ गुरुणीजी ॥ ३ ॥" ऐसे २ वक्रोक्तिके वाक्योंमें यहां मुंहपत्ति बांधने का अर्थ नहीं है किंतु मौन रखने का अर्थ होताहै. देखो मूलचरित्र में ऐसा पाठ है "बद्ध मुखमत्र तिष्ठंतं न कंचित्पश्यामः" तथा ३००।४०० वर्ष की पुराणी भाषामें भी "कोई मुंह बांधी बइसी रह्यउ न देख्यां" ऐसा लेखहै इसका भावार्थ यही है कि यहां पर मुंहबांधकर कोई नहीं बैठे, अर्थात्-सब लोग यहां बातें करतेहैं कोई मौन होकर नहीं बैठा और जिसतरह से तुम दूसरोंकी निंदा विकथा करने में मौन हो वैसेही (तिम मुखे डुचो देहीनेरे, बीजे बेसाय केम) हमारेसे मौन नहीं रहाजाता ऐसा आशयहै इस लिये रास बनानेवाले का पूरा पाठ छोडकर थोडे से अधूरे वाक्य भोले लोगों को बतला कर उलटा अर्थ का अनर्थ करके 'भुवनभानुकेवलिकेरास' के नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहरानेवाले मायाचारी की प्रपंच बाजीसे व्यर्थ अपने कर्म बांधतेहैं और दूसरोंको बंधवाते हैं।

---

२२. हरिबल मच्छी के रासमें हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका लिखा है यहभी ढूंढियोंका कहना झूठहै क्योंकि यह रास छपवानेवाले भीमसिंह माणेकने बंबई से मेरेको पत्र भेजाहै उसमें लिखाहै कि "सुलभ बोधी जीवडा, मांडे निज खट कर्म ॥ साधुजन मुख मुमती, बांधीहै जिन धर्म ॥ १ ॥" यह वाक्य भूलसे उलटा छपगयाहै सो दूसरी आवृत्तिमें सुधारनेमें आवेगा. इस लिये भूलसे छपेहुए वाक्य को आगे करके हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका आग्रह करना बडी भूलहै।

२३. सुरतमें श्रीमान् मोहनलालजीके ज्ञानभंडारमें तथा बडोदे में प्रवर्तक श्रीमान् कांतिविजयजी संग्रहीत ज्ञानभंडारमें हरिबलमच्छी के रासकी लिखी हुई ५—६ प्रतियें मौजूद हैं उन्होंमें "सुलभ बोधी

जीवडा मांडे निजखट कर्म ॥ साधुजन मुख मुमती बांधी कहे ? जिन धर्म ॥ १ ॥" ऐसा लेख है इसका भावार्थ यहहै कि फजर में उठकर श्रद्धावान् भव्यजीव जिनमन्दिर में जिनराजकी पूजा करें, गुरुकी सेवा करें, स्वाध्यायादि ६ धर्मकार्य करें. अब विचार करना चाहिये कि जैसे पर्युषणापर्व में अमारी घोषणाकी व्याख्या करनेके प्रसंगमें बकरीदकी व पशुबलिकी रौद्र हिंसाकी पुष्टि कभी नहीं होसकती वैसेही जिन मंदिरमें पूजा करनेके प्रसंगकी व्याख्या करनेमें प्रत्यक्ष मिथ्यात्वका हेतु रूप हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेका लेख कभी नहीं लिखा जासकता परंतु विपरीत बातका अतिशयोक्ति से प्रसंगवश उपहास कर सकते हैं. वैसेही हरिबलमच्छी के रास बनाने वालेने जिनपूजा, गुरुसेवा के प्रसंगसे अतिशयोक्ति में "साधुजन मुख मुमती बांधी कहे? जिन धर्म". यह वाक्य कहेहैं याने-ढूंढियेलोग मुंहपर मुंहपत्ति हमेशा बांधी रखने का कहतेहैं सो जैनधर्म विरुद्ध है ऐसा गंभीराशयसे मीठे वाक्य से उपहास कियाहै और लिखीत प्रतोंमें '(कहे ?) यह शब्द वक्रोक्तिवाचक था परंतु रास छपवानेके समय (क) अक्षर भूलसे रहगया होगा. या "सम्यक्त्वमूल वाहर व्रतकी टीपकी" तरह किसी ढूंढक अनुयाई लेखकने जानबूझ कर 'क' अक्षर निकाल दिया होगा और 'हे' की जगह 'है' करके गुजराती भाषा बिगाड कर हिंदी भाषा बनाडाली, भूल से वैसा ही छपकर प्रकट हो गया उसको देखकर सब ढूंढिये भ्रममें पडगये हैं। इस लिये हरिबल मच्छी के रासके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराना सर्वथा झूठहै।

---

२४. ढूंढिये कहतेहैं कि हितशिक्षाके रासमें हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका लिखाहै यहभी झूठहै क्योंकि देखो ढूंढिये साधु कभी दवाई लेनेके लिये, जल पीनेके लिये या कफ आदि थूकने के लिये नाटक के परदेकी तरह मुंहपत्तिको किसी समय नीचेके होटपर हटालेतेहैं, कभी डाढीपर खींच लेतेहैं, कभी एक कानपर से दोरेको हटा लेतेहैं उससे दूसरे कानपर ध्वजकी तरह मुंहपत्ति लटकने लगतीहै और कभी गाडी के बैलके जोतर (भूसर) की तरह गलेमें खींच लेते हैं इस लिये हित शिक्षा के रासके लेखकने ढूंढियोंको मुंहपत्ति की ऐसी विटंबना न करनेकेलिये "मुखे बांधीते मुंहपत्ति, हेठे पाटो धारी ॥ अति हेठी दाढीथई

जोतर गले निवारी ॥ १ ॥ एककाने धज सम कही" इत्यादि उपहासके वाक्य लिखेहैं उसका आशय समझे बिना ऐसे २ प्रमाण आगे करके ढूंढिये लोग हमेशा मुंहपत्ति बांधना ठहरातेहैं पुष्ट करते हैं और बडी खुशी मनातेहैं यही बडी अनसमझ की बातहै।

(शिवपुराणादिमेंभी हमेशा मुंहपत्ति बांधना नहींलिखा)

२५. ढूंढिये कहते हैं कि 'शिवपुराण' में "हस्ते पात्र दधानश्च तुंडे वस्त्रस्य धारकाः" इस वाक्यमें हमेशा मुंहपत्ति बांधना लिखाहै ऐसा कहते हैं सोभी झूठहै क्योंकि इस वाक्यमें हाथमें पात्र रखनेवाले और मुंहपर वस्त्र रखने वाले लिखेहैं। इसका भावार्थ ढूंढियोंकी समझमें नहीं आया इसलिये हमेशा मुंह बांधनेका ले बैठे हैं देखो-हाथमें पात्र कहनेसे आठोही प्रहर रात्रि-दिन हमेशा हाथ में पात्र नहीं लियाजाता किंतु जब आहार आदि कार्य होवें तब उस प्रयोजन के लिये लियाजाताहै. वैसेही मुंहपर मुंहपत्ति कहने से जब बोलनेका कार्य होवे तब मुंहपर मुंहपत्ति रखनेमें आती है परन्तु हमेशा बांधनेका नहीं ठहर सकता. जिसपर भी हमेशा बांधने का हठ करने वाले ढूंढियोंको मुंहपत्तिकी तरह सोते, बैठते, सूत्रपढते, व्याख्या बांचते वगैरह सर्व कार्योंमें हमेशा हाथमें पात्र भी रखना चाहिये और हमेशा हाथमें पात्र रखना मंजूर न करें तो हमेशा मुंहपत्ति बांधनेकी अज्ञानता का हठाग्रहको छोडदेना योग्य है।

(नाभा में भी ढूंढिये हारगये थे)

२६. पंजाब देशमें 'नाभा' में मुंहपत्तिकी चर्चामें ढूंढियोंने हमेशा मुंहपत्ति बांधने बाबत 'शिवपुराण' का वाक्य आगे कियाथा उसपर वहांके मध्यस्थ विद्वानों ने अपने फैसलेमें ऐसे लिखाहै कि "आपके प्रतिवादीके हठके कारण और उनके कथनानुसार हमें शिवपुराणके अवलोकनकी इच्छा हुई. बस इस विषयमें उसके देखने की कोई आवश्यकता नहीं थी. ईश्वरेच्छासें उसके लेखसे भी यही बात प्रकट हुई कि वस्त्रवाले हाथको सदा मुखपर फैंकता है इससे भी प्रतीत होताहै कि सर्व काल मुखवस्त्र के मुखपर बांधे रहने की आवश्यकता नहीं है किंतु वार्तालापके समय पर वस्त्रका मुखपर होना जरूरीहै" इस लेखमें हाथमें मुंहपत्ति रखना ठहरायाहै इस लिये 'नाभा' की चर्चा के नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधने का ठहराने वाले मायाचारी सहित प्रत्यक्ष मिथ्यावादीहैं।

(ढूंढिये अपनी थोडी सी अकल खर्च करें)

२७. देखो ढूंढिये लोग संवेगी साधुओंको दंडी २ कहा करते हैं परन्तु संवेगी साधु हमेशा हर समय हाथमें दंडा नहीं रखते किन्तु आहार वगैरह के लिये बाहिर जाना पडे तब हाथमें धारण करतेहैं नहींतो उपाश्रयमें पडारहताहै। इसी तरहसे ढूंढियोंको अपने कथन मूजिब थोडीसी अकल खर्च करके विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये कि बोलनेके समय मुंहआगे मुंहपत्ति रखने वालोंको मुखपर वस्त्र धारण करने वाले कहेजाते हैं उससे ढूंढियोंके ही दंडी २ कहनेके न्यायकी तरह हमेशा मुंहपर वस्त्र बांधा रखना नहीं ठहर सकता इसलिये हमेशा बांधने का हठकरने वालों की अनसमझहै। और श्रीमालपुराणमें भी जैनसाधुको हाथमें दंडा, मुखपर वस्त्र, बगलमें रजोहरण धारण करनेवाले लिखे हैं. सो यह तीनों वस्तु जब काम पडे तब उस २ कार्य के उपयोगमें ली जातीहैं नहीं तो पास में पडी रहतीहैं, इस बातसे भी यह तीनों वस्तु हमेशा बांधी रखनेका नहीं ठहर सकता। इसी तरह से 'अवतारचरित्र' में भी मुंहपत्ति शद्बका पर्याय मुखपट्टी नामामात्र लिखाहै उसको देखकर हमेशा बांधने का ठहराना बडी भूलहै।

(नाक और मुंह दोनों से जीव मरते हैं)

२८. ढूंढिये कहते हैं नाककी श्वास (हवा) से जीव नहीं मरते इस लिये हम नाक खुला रखते हैं, यहभी झूठ है क्योंकि नाकके श्वासोश्वासके झपाटे से छोटे २ जीवों की हिंसाका कहनाही क्या परन्तु डांस-मच्छर-मक्खी आदि भी नाकमें घुस जाते हैं और मरभी जाते हैं यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै इसलिये नाककी गरम श्वाससे त्रस-स्थावर दोनों प्रकारके जीवोंकी अवश्य हानि होतीहै तथा बोलते समय मुंहकी श्वास बाहर निकलते ही फैलकर जल्दी ठंडी होजातीहै और नाककी श्वासतो १०-१५ अंगुल तक जोर से धमणी की तरह गरम २ चली जातीहै इसलिये मुंहकी श्वाससे भी नाककी श्वाससे जीवों को पीडा विशेष ज्यादे होती है और दिनभरके २४ घंटों में १-२ घंटे बोले तब मुंहसे जीवोंको पीडा होगी परन्तु नाकसे तो २४ घंटे हमेशा जीवों को पीडा होतीहै इसलिये ढूंढियोंकी सच्ची जीवदया तबही समझी जावे जब कि मुंहकी तरह नाक भी हमेशा बांधा रक्खें, नहीं तो दयाके नामसे भोले लोगोंको भ्रममें डालने का ढोंगही समझना चाहिये।

(मुंहपत्ति में दोरा डाल कर बांधना नहीं लिखा.)

२९. जब ढूंढियों को पूछने में आता है कि मुंहपत्ति में दोरा डाल कर बांधना किसी सूत्र में नहीं लिखा जिस पर भी दोरा क्यों डालते हो इसपर ढूंढिये कहते हैं कि जैसे साध्वीके साडेमें दोराडालने का नहीं लिखा तोभी दोरा डाला जाताहै वैसेही मुंहपत्तिमें दोरा डालने का नहीं लिखा तोभी समझ लेनाचाहिये ऐसा कहकर मुंहपत्तिमें दोरा डालना ठहरातेहैं, सोभी अनुचितहै क्योंकि देखो-साध्वीके साडेमें तो लज्जा ढकनेके लिये दोरा डालने में आता है परंतु मनुष्योंका मुंह लज्जनीय नहीं है इसलिये गुह्य और लज्जनीय स्थान बांधनेका दृष्टान्त बतलाकर जगतमें प्रकट और शोभनीय मुंह बांधनेका दोरा साबित करना बडी भारी निर्विवेकता है। दूसरी बात यहभी है कि जब कभी दुर्गंधी की जगह जाना पडे या उपाश्रय की प्रमार्जना करने के समय सूक्ष्म रजकण मुंहमें न जाने पावे इसलिये दोरा डाले बिनाही मुंहपत्तिको त्रिकोणी करके मस्तक के पीछेके भागमें गांठ आसके वैसी रीतिसे थोडी देरके लिये नाक-मुंह दोनों बांधनेकी मर्यादा बतलाई है उसरीति को छोडकर अपनी कल्पनासे दोरा डालनेका तथा नाक खुला रखकर अकेला मुंहको हमेशा बांधनेका नया ढोंग चला कर सर्वज्ञ शासनकी हीलना करवाना सर्वथा अयोग्य है।

(बोलनेमें कभी उपयोग न रहे तोभी हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखना बहुत बुरा है)

३०. ढूंढिये कहतेहैं कि बोलते समय मुंहकी यत्ना करनेका कभी उपयोग न रहे तो दोष लगे जिससे हमेशा बांधी रखना अच्छा ही है उससे कभी उघाडे मुख बोलनेका दोष न लगे. यह भी ढूंढियों का कहना अनसमझका है क्योंकि साधुका धर्म ही उपयोगमें है, जिस को शुद्ध उपयोग नहींहै उससे शुद्ध संयम धर्म कभी नहीं पल सकता. देखोः- किसी को उपयोग न रहा भूलसे स्त्रीका रूप देखने लगगया उससे उसके आंखों पर हमेशा पाटा बांधा रखना कोई अच्छा नहीं मान सकता तथा किसी साधु को कभी चलनेमें उपयोग न रहा उस से कीडी-मेंडक वगैरह जीवोंकी हानि होगई जिससे चलनेकाही बंध करके एक जगह पडे रहना कोई भी अच्छा नहीं कहसकता किंतु उप-

योग रखकर चलने को ही अच्छा माना जावेगा. इसी तरह से कभी बोलते समय मुंहकी यत्ना करनेका उपयोग न रहे उससे हमेशा मुंह बांधा रखना कभी अच्छा नहीं ठहर सकता किंतु उपयोगसे यत्नापूर्वक बोलनाही अच्छा माना जावेगा।

३१. फिरभी देखोः- बोलनेमें मुंहकी यत्ना करनेका कभी उपयोग न रहने से हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ढूंढिये कहते हैं, उसी तरह कभी छींक करते समय नाक की यत्ना करनेका उपयोग न रहे तो मुंहकी तरह ढूंढियोंको नाकभी हमेशा बांधा रखना चाहिये तथा चलने में उपयोग न रहनेसे दोनों पैरोंके दो पूंजनी भी हमेशा बांधी रखनी चाहिये और प्रतिलेखना करनी, गौचरी जाना, उपाश्रयकी प्रमार्जना करनी, प्रतिक्रमण करने में उठ-बैठ करना और जिनेश्वर भगवान्को, गुरुमहाराज को वंदन करनेको जाना इत्यादि धर्म क्रिया करनेमें कभी उपयोग न रहे तो यह धर्मकार्य करने छोड देने चाहिये। और जिस तरह श्रीआदीश्वर भगवान्के समय 'मरीचि' ने अपनेसे शुद्ध संयम धर्मका पालन करना नहीं वनसका तब साधुका वेष छोडकर नया वेष बनाया. उसी तरह यदि ढूंढिये साधुओं से भी विवेक पूर्वक उपयोग सहित शुद्ध संयम धर्मका पालन करना नहीं बन सकता हो तो कपट छोडकर साफ २ सत्य २ कथन करें, शुद्ध साधु न कहलावें, मूलसूत्र, प्राचीन शास्त्रादिके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका न ठहरावें, 'जिनवरने मुंहपत्ति बांधने का फरमायाहै' ऐसी २ झूठी २ बातें बनाकर तीर्थंकर परमात्माके ऊपर झूठा आरोप न लगावें, जैन साधु कहलाना छोडदें और नाक पर भी हमेशा वस्त्र बंधारक्खे तथा दोनों पैरोंके दो पूंजनी बांधकर 'मरीचि' की तरह एक नया अजब वेष बना कर पूरे २ दयालु बननेका जगत्को दिखलादें तबतो मुंहकी यत्ना करनेका उपयोग न रहने से मुंह बांधनेका ढूंढियोंका कथन सत्य समझा जावे नहींतो भोले जीवों को बहकाने के लिये उपयोग न रहने के नामसे सर्वज्ञ शासनमें माया प्रपंच रचनेका कलयुगी झूठा ढोंगही समझना चाहिये।

(ढूंढियों की विचित्र लीला का नमूना देखो)

३२. ढूंढिये एक जगह लिखतेहैं कि भगवान्ने भगवती आदि आगमोंमें हमेशा मुंहपत्ति बांधना कहाहै। दूसरी जगह लिखतेहैं भगवान्ने आगमोंमें बांधना नहीं कहा परंतु संवेगियोंके आचार दिनकर, ओघनि-

युक्ति आदि प्राचीन शास्त्रोंमें लिखाहै। तीसरी जगह लिखतेहैं प्राचीन शास्त्रोंमें हमेशा बांधना नहीं लिखा किंतु भुवनभानु केवलि आदिके रासोंमें लिखाहै। चौथी जगह लिखतेहैं जैन शास्त्रोंमें नहीं लिखा परंतु अन्य दर्शनियोंके शिवपुराणादि में तो लिखाहै। पांचवीं जगह लिखतेहैं सोमिल तापसने अपने मुंहपर काष्टकी पटडी बांधीथी उसीतरह हमभी हमेशा मुंहपत्ति बांधतेहैं। छठी जगह लिखतेहैं पैरोंका भूषण पैरोंमें शोभे, वैसेही हमारे मुंहपर बांधीहुई मुंहपत्ति शोभतीहै। सातवीं जगह लिखतेहैं किसी शास्त्रमें हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेका स्पष्ट लेख नहींहै परंतु मुंहपत्ति शब्दसे मुंहपर बांधना मानतेहैं। आठवीं जगह लिखतेहैं बोलते समय मुंहपत्तिके थूंक लगताहै मुंहपत्ति गीली होतीहै परंतु संमूर्च्छिम जीवों की उत्पत्ति हानि नहीं होती, थूक अशुचि पदार्थ नहींहै। नवमी जगह लिखते हैं नाकके श्वासोश्वाससे किसी जीवकी हानि नहीं होती इसलिये हम नाक खुली रखतेहैं। दशवीं जगह लिखतेहैं वायुकाय के जीवोंकी दया पालन करनेके लिये मुंहपत्ति बांधी रखतेहैं। ग्यारहवीं जगह लिखते हैं विष्टाआदि अशुद्ध जगह की मक्खी अपने मुंहपर बैठने न पावे इस लिये मुंहपत्ति बांधी रखतेहैं। बारहवीं जगह लिखतेहैं जगतमें अच्छी २ वस्तु ढकी जाती हैं वैसेही हमारा अच्छा मुंह हमेशा ढका रहताहै। तेरहवीं जगह लिखतेहैं जैसे साध्वीके साडा दोरेसे बांधा जाताहै, वैसे ही हमारी मुंहपत्ति भी दोरेसे बांधनेमें आतीहै। चौदहवीं जगह लिखतेहैं मुंहपत्ति बांधने वाले तीसरे भवमें सब कर्मों से छुटकर मोक्ष जाते हैं। पंदरहवीं जगह लिखतेहैं मूलसूत्रोंमें हमेशा मुंहपत्ति बांधना नहीं लिखा परंतु बोलते समय हमारेसे वारबार उपयोग नहीं रहता इसलिये प्रमाद के कारण बांधी रखतेहैं। इत्यादि तरह २ की पूर्वापर विरोधी मनमानी झूंठी २ बातें लिखकर भोले लोगोंको बहकातेहैं और कुयुक्तियोंसे सर्वज्ञ शासनमें हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेरूप मिथ्यात्व फैलाते हैं. जिसमें कितनीक बातोंका थोडासा दिग्दर्शन मात्र समाधान इस "जाहिरउद्घोषणा" के ऊपर के लेखों में बतलाया है और अन्य सब शंकाओंका व मुंहपत्ति संबंधी ढूंढियोंकी तरफसे आजतक छपी हुई सब पुस्तकों के लेखोंका विस्तारपूर्वक निर्णय आगमादि शास्त्र पाठों के साथ "आगमानुसार मुंहपत्तिका निर्णय" नामा ग्रंथमें लिखाहै, सबसंघको विनादाम भेट मिलताहै, पाठक गण मंगवाकर पूरा २ पढ कर सत्य ग्रहण करें।

॥ ॐ श्री जिनाय नमः ॥

जाहिर उद्घोषणा. नम्बर २.

(झूंठको छोडो और सत्यको ग्रहण करो)

॥ इसको भी पूरा २ अवश्य ही पढिये ॥

(हमेशा मुंहपत्ति बाधी रखनेमें ३६ दोषोंकी प्राप्ति)

३३. देखिये अपनेसे किसी कार्यमें पूरा २ उपयोग न रहे कुछ भूल होजावे, दोषलगे तो पश्चाताप करके प्रायश्चित्त लेनेसे शुद्धहोतेहैं इसीलिये प्रतिक्रमणादि क्रियाएँ शास्त्रोंमें बतलायीहैं । परंतु अपनी प्रमाद दशाकी थोडीसी भूलको आगे करके अनादि सच्ची मर्यादाका उत्थापन करनेसे बडा अनर्थ होताहै । इसी तरहसे ढूंढियोंने उपयोग न रहनेसे मुंहपत्ति बांधी रखनेका नया रिवाज चलाया किंतु अब इस बातमें अनेक दोषोंका सेवन करना पड़ताहै, सो नीचे बतलातेहैं:—

१. अनादि कालके सर्व साधुओंको हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखने का झूंठा दोष लगाते हैं ।

२. आगमादि शास्त्रोंके नामसे प्रत्यक्ष झूंठ बोलकर हमेशा मुंह-पत्ति बांधी रखनेका ठहरातेहैं ।

३. भगवती सूत्रमें तथा ज्ञाताजी सूत्रमें हजामत करनेवाले गृ-हस्थ नाइयोंने राजकुमारोंके केश काटनेके लिये थोड़ी देर नाक मुंह बांधेथे ऐसा अधिकार है, उस बातको आगे करके ढूंढिये साधुपनेमें हमेशा मुंह बांधनेका ठहराने वाले अपनी हंसी करवातेहैं ।

४. निरयावली सूत्रमें अन्यलिंगी सोमिल तापसने मिथ्यात्व दशा में अपने मुंहपर काष्टमुद्रा बांधीथी, उसी प्रमाणको आगेकरके ढूंढिये भी अपना मुंह हमेशा बाधा रखकर प्रकटपने अन्यलिंगी मिथ्यात्वी बनते हैं ।

५. थूंककी गीली मुंहपत्ति चौमासेमें सुखाने परभी १–२ रोज तक नहीं सूखती, उसमें समय २ असंख्य संमुर्च्छिम पंचेंद्रीय मनुष्यों की उत्पत्ति और हानि होनेका पाप बांधतेहैं ।

६. वर्षा चौमासेमें थूंककी गीली मुंहपत्ति रात्रिमें मुंहपरसे अलग रखतेहैं, उसमें नीलण-फुलणकी उत्पत्ति होनेसे अनंत जीवोंकी हिंसाका दोष लगता है।

७. थूंककी गीली मुंहपत्तिको हर समय मुंहपर बांधी रखनेसे मुंह झूठा रहताहै, झूठे मुंहसे सूत्र पढतेहैं, व्याख्यान बांचतेहैं यहभी ज्ञानावर्णीय कर्म बंध का हेतुहै।

८. बादीवालेको व्याख्यान बांचते समय मुंहमेंसे बहुत थूंक उडताहै, इसलिये मुंहपत्तिके अंदर कपड़ेका दूसरा टुकड़ा (छोटी मुंहपत्ति) रखनेकी विटंबना करनी पड़तीहै।

९ मौन रहने परभी हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेसे बाल चेष्टा जैसी निष्फल क्रिया होनेका दोष लगताहै।

१०. मुंहपर मुंहपत्ति बांधी रखनेसे नाक कान आंख ललाट मस्तक वगैरह छोटे २ स्थानोंपर कोई सूक्ष्मजीव या सचित्त रजादि गिरजावे तो मुंहपत्तिसे उसकी प्रमार्जना नहीं होसकती तथा छींक करते समय और दुर्गंधिकी जगह मुंहपत्तिसे नाककी यत्ना भी नहीं होसकती यह अधूरी क्रियाका दोष लगताहै।

११. ढूंढिये साधु दवाई लेनेके समय या थूंकनेके समय मुंहपत्तिको बार बार उंची नीची करके नाटकके परदेकी तरह मुंहपत्तिकी बड़ी विटंबना करतेहैं।

१२. होठोंके उपर हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेसे बोलते समय, छींक-उबासी-डकार-खांसी करते समय मुंहके श्वासोश्वास द्वारा पेटमेंसे दुर्गंधयुक्त अशुद्ध पुद्गल बाहिर निकलतेहैं, वह सब मुंहपत्ति के चिपकजातेहैं और पीछेही पेटमें जातेहैं, जिससे पेटमें रोगकी उत्पत्ति होतीहै तथा मुंहमें दुर्गंध होतीहै इसलिये अनुभवी वैद्य और डाक्टर लोग हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेमें अनेक नुकसान बतलातेहैं।

१३. विपाक सूत्रमें तथा ओघनिर्युक्ति आदि शास्त्रोंमें कभी दुर्गंधिकी जगह पर या उपाश्रयकी प्रमार्जना करनेके समय मुंहपत्तिको नाक-मुंह दोनोंके उपर थोडीदेर बांधनेका कहाहै, जिसपरभी ढूंढिये नाकपर नहीं बांधते यहभी सूत्रकी आज्ञा लोपन करनेका दोष लगताहै।

१४. एकवेंत चारअंगुल (१६ अंगुल) समचौरस या अपने २ मुंह प्रमाणे समचौरस मुंहपत्ति रखनेकी मर्यादाहै परंतु ढूंढिये एक कपड़ेकी लंबी चीरी लेकर लपेट कर बांधतेहैं यहभी शास्त्र विरुद्धहै।

१५. "मुहणंतगेण" पाठका मुखवस्त्रिका अर्थहै, जिसपरभी मुंहपत्तिमें दोरा डालनेका झूंठा अर्थ करतेहैं यहभी उत्सूत्र प्ररूपणाका दोष लगताहै।

१६. धूपके दिनोंमें पसीनासे मुंहपत्तिके उपर मैलके दाग पड-जातेहैं, कभी २ दिनभरमें नयी नयी २-३ मुंहपत्ति बदलनी पडतीहैं नहींतो वास आने लगताहै।

१७. कभी छींक करते समय या श्लेषमके समय नाकका मैल मुंहपत्तिके उपर लग जाताहै तो बहुत बुरा लगताहै, यहभी विटंबनाहीहै।

१८. होठोंके उपर मुंहपत्ति बांधी रहनेसे जोरसे बोलने परभी बहुत साधुओंकी आवाज रुक जातीहै, गुंगेके जैसा स्वर भंग हो जाताहै, जिससे धर्मका उपदेश सुनने वालोंको साफ २ समझमें नहीं आताहै।

१९. बेरुपियोंकी तरह मुंहका रूप बिगडताहै इसलियें अन्य दर्शनीय लोग मुंहबंधे मुंहबंधे कहकर जैन साधुकी हंसी करतेहैं, जिससे जगत् मान्य सर्वज्ञ शासनकी अवज्ञा होतीहै, उससे उन लोगोंके कर्म बंधन होतेहैं और हमेशा मुंह बांधकर शासनकी अवज्ञा करवाने वाले दुर्लभ बोधी होतेहैं।

२०. दशवैकालिकमें 'जयं भुंजंतो भासंतो' इसपाठमें मुंहकीयत्ना करके बोलनेका कहाहै, सो हाथ में मुंहपत्ति रखकर मुंहकी यत्ना करके बोलने वालोंको जब १-२ घंटे तक बोलनेका कामपडे तब हाथको बडा कष्ट होताहै, उससे उपयोगभी विशेष शुद्ध रहताहै परंतु हमेशा बांधी रखने वालो को मुंहकी यत्ना करनेकी जरूरत नहीं रहती, जिससे हाथके कुछभी कष्ट नहींहोता, उपयोगभी शुद्ध नहीं रहताहै इसलिये दशवका. ऽक सूत्रकी आज्ञा उत्थापन होतीहै तथा उपयोग शुन्य बोलनेका दोष आताहै।

२१. शास्त्रोंमें त्रस और स्थावर दोनों प्रकारके जीवोंकी रक्षा करनेके लिये मुंहपत्ति रखनेका कहाहै ताभी ढूंढिये एक वायुकायकी रक्षा करनेकेलिये मुंहपत्ति रखनेका कहतेहैं सोभी शास्त्र विरुद्ध बोलतेहैं।

२२. मुंहपत्तिसे नाक और मुंह दोनोंकी यत्नाकरनेका सूत्रोंमें कहाहै, तोभी ढूंढिये मुंहपत्तिसे नाककी यत्ना नहीं करनेका कहतेहैं और नाकके श्वासोश्वाससे जीवोंकी हानि नहीं होती, ऐसा कहतेहैं यहभी सूत्र विरुद्ध होकर प्रत्यक्ष झूंठ बोलतेहैं।

२३. बीमार साधुको और संथारा किये हुये साधु-श्रावकको

अंतसमयतक मुंहपत्ति बांधीहुई रखवातेहैं यहभी हठाग्रहकी बडीभूलहै।

२४. कई २ ढूंढिये श्रावक कभी मस्तकपर पगडी तथा अंगपर अंगरखी और पायजामा पहीने हुएभी अपने मुंहपर मुंहपत्ति बांधकर आनुपूर्वी या नवकरवाली (माला) फैरने बैठ जातेहैं, यहभी सर्वज्ञ शासन में नाटक जैसा सांगहै ।

२५. पढे लिखे समझदार नवयुवकोंकी व प्रतिष्ठितलोगोंकी मुंहपत्ति बांधनेकी श्रद्धा नहींहै और बांधनेमेंभी वे शर्मी समझतेहैं, इसलिये सामायिक आदि करते समय केवल मतपक्षकी शर्मसे हाथमें मुंहपत्ति रखकर मुंहकी यत्ना नहीं करते और धोती दुपट्टेको अपने मुंहपर लपेट लेतेहैं यहभी ढोंगहै ।

२६. जैन शासनमें आनंद–कामदेवादि अनेक श्रावक होगये हैं, परंतु ढूंढियोंकी तरह किसीभी श्रावकने अपने मुंहपर मुंहपत्ति कभी नहीं बांधी, तिसपरभी इन लोगोंने विचारे भोले लोगोंको मुंहपत्ति बंधवाकर जिनेश्वर भगवान्की आज्ञा उत्थापन करनेवाले बनायेहैं ।

२७. मारवाड आदि देशोंमें ढूंढक, तेरहापंथी श्राविकाओंकी मुंहपत्तिके उपर गोटा या मोती वगैरह जौहरात लगा हुआ रहताहै, यह भी बडी भूल है ।

२८. बाईस टोलेवाले सब ढूंढियोंकी और तेरहपंथियोंकी मुंहपत्तिमें लंबाई चौडाई छोटी मोटी वगैरह तरह २ की विचित्र प्रकारकी भिन्नताहै, परंतु एक प्रमाण नहींहै, यहभी प्रत्यक्ष शास्त्र विरुद्धहै ।

२९. सूत्रोंमें शुद्ध ज्ञान क्रियासे मुक्तिहोना बतलायाहै परंतु वेषलेने मात्रसे मुक्तिहोना नहीं बतलाया तोभी ढूंढिये भोले जीवोंको बहकानेके लिये मुंहपत्ति बांधनेसे तीसरे भवमें मुक्तिहोनेका बतलाते हैं यहभी उत्सूत्र प्ररूपणाहै ।

३०. जगतमें यह बात प्रसिद्धहै कि चौर डाकू निंदक वगैरह अपने मुंह छुपाते हुए फिरतेहैं । इसी तरह ढूंढियेभी जिनप्रतिमाकी तथा पूर्वाचार्योंकी झूठी २ निंदा करने वाले और सूत्रोंके पाठोंको व अर्थोंको चौरने वालेहैं (इस बातका प्रत्यक्ष प्रमाण चैत्य–जिनप्रतिमा संबंधी आगेके लेखमें बतलानेमें आवेगा) इसलिये इनोंकी मुंह बांधकर मुंह छुपानेकी दुर बुद्धि हुईहै ।

३१. निशीथसूत्रमें साधुको अपने मुखकी शोभाकेलिये दांतोंके

और होठोंको साफ करना, रंग लगाना या वडेहोठको कटवाकर सुधराना इत्यादि कार्यकरने वालेको दोष बतलायाहै, यह बात खुला मुंह हो तब शोभाके लिये की जातीहै, परंतु बांधा हुआ हो तो नहीं, यदि खुला मुंह हो तो लोकलज्जासेभी साधु होठोंको रंगना वगैरह दोष न लगा सके परंतु बंधाहुआ होतो गुप्तदोष लगा सकताहै, इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेसे निशीथसूत्रकी आज्ञा उत्थापन होतीहै और दांत होठ रंगने वगैरह का गुप्तदोष लगानेकी मायाचारी भी कर सकताहै ।

३२. भाषा बोलनेके लिये पुद्गल ग्रहण करने तथा भाषा बोलनी और आगे बोलनेमें आवे, यह सब भाषावर्गणा कही जातीहै, "पन्नवणा" सूत्रमें इस भाषा वर्गणामें नियमा शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष यह चार स्पर्श बतलायेहैं, परंतु भाषा बोलेबाद गुरु (भारी) वगैरह आठस्पर्श होनेका नहीं बतलाया, जिसपरभी ढूंढियेलोग " पन्नवणा " सूत्रके नामसे भाषा वर्गणामें आठस्पर्श होनेका कहकर वायुकायके जीवोंकी हानि करनेका ठहरातेह, यहभी सर्वथा सूत्र विरुद्धहै ।

३३. उववाई, भगवती, ज्ञाताजी आदिसूत्रोंमे श्रावकोंको दुपट्टेका उत्तरासन रखनेका जगह २ अधिकार आयाहै, यह उत्तरासन ब्राह्मणोंकी जनोईकी तरह रखा जाताहै, कभी काम पडे तब उसका छेडा मुंहके आगे रख सकतेहैं, उससे नाक मुंह दोनोंकी यत्ना होतीहै यह बात प्रत्यक्ष अनुभवसे सिद्ध है, जिसपरभी ढूंढियेलोग उत्तरासनका अर्थ मुखकोशकी तरह मुंह बांधना करतेहैं, यहभी सूत्र विरुद्ध होनेसे उत्सूत्र प्ररूपणाहीहै ।

३४. जब डाक्टर लोग चीराफाडीका काम करतेहैं तब दुर्गंधिका और राज्य युद्धमें जहरी धुंआका बचाव करनेके लिये नाक-मुंह दोनों ढक लेतेहैं तथा विवाह शादी, राजदरबार, जाहिर सभा वगैरहमें कई लोग अपने मुंहके आगे उत्तरासनका छेडा या रुमाल आदि रखतेहैं, यह श्रेष्ठ व्यवहारहै, परंतु इन बातोंसे नाक खुला रखकर अकेला मुंह बांधा रखनेका साबित नहीं होसकता, जिसपरभी ढूंढियेलोग भोलेजीवोंको उपरकी बातें बतलाकर हमेशा मुंह बांधनेका ठहरातेहैं, यहभी प्रत्यक्ष झूंठा मायाचारीका प्रपंचहै ।

३५. जिनेश्वर भगवान् ने मुंहके आगे वस्त्रादि रखकर उपयोगसे बोलने वाले की भाषा को निर्दोष कहाहै और ढूंढिये इस बात के

विरुद्ध होकर मुंहपति बांध कर बोलने वाले की भाषा को निर्दोष कहते है, इसलिये जिन आज्ञा के उत्थापन करने वाले वनते हैं। एक जिनराज की आज्ञा उत्थापन करने वालों को अतित, अनागत और वर्तमान काल के अनंत तीर्थंकर महाराजों की आज्ञा उत्थापन करने का दोष आता है, उससे अनंत संसार वढता है।

३६. ऊपर मुजव जिनाज्ञा विरुद्ध होकर हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखकर फिरनेसे जैनलिंग बदल जाता है, जैनलिंग वदल जानेसे, द्रव्य मुनिधर्म चला जाता है, द्रव्य मुनिधर्म जानेसे, अन्यलिंग हुआ, अन्य लिंगको जैनलिंग कहनेसे, श्रद्धारखनेसे और गुरु माननेसे, सम्यग् दर्शन जाताहै, सम्यग् दर्शन जानेसे सम्यग् ज्ञान जाता है, सम्यग् ज्ञान जानसे सम्यग् चारित्र जाता है, इस तरहसे खास मोक्षके हेतु सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्रके जानेसे मिथ्यात्व आताहै, मिथ्यात्व आनेसे द्रव्य और भाव दोनों प्रकारका साधुका धर्म चला गया, द्रव्य-भावसे साधुका धर्म जानेपरभी शुद्ध साधु कहलानेसे झूठा ढोंगहुआ, झूठे ढोंग में जैन शासनके नामसे भोलेलोगोंको फँसानेसे सच्चेमोक्ष मार्ग का उत्थापन हुआ, सच्चे मोक्षमार्गका उत्थापन होनेसे संसार भ्रमणका फल हुआ, संसार भ्रमण करनेसे ८४ लक्ष जीवायोनिकी घात हानेका दोष आया, इस प्रकार हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराने में जिनाज्ञाकी उत्थापना, मिथ्यात्वकी प्राप्ति और संसार भ्रमणादि अनेक दोषोंका सेवन करना पडता है परंतु तत्त्व द्रष्टिसे कुछभी लाभनहीं है, जिसपरभी ढूंढिये लोग 'जिनवर फुरमाया, मुंहपत्ति बांधो मुख उपरे' ऐसी २ जिनराजके नामसे रागबनाकर हजारों पुस्तकें छपवाकर बडे २ शास्त्रोंके नामसे झूठी धोखा बाजी करके हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराकर आप डूबतेहैं और अपने भक्तोंकोभी डूबाते हैं (इसका पूरा २ विशेष निर्णय मूल ग्रंथमें देखो) इस प्रकार हमेशा मुंहपत्ति बांधना अनर्थका मूल होनेसे इस ग्रंथको पढे बाद ढूंढिये व तेरहापंथी साधु-साध्वी-श्रावक और श्राविका अबतो कोई भी सम्क्त्वा इसबातका आग्रह कभी न करेंगे, इतनेरोज अंधरूढिसे बांधी या बांधनेकी पुष्टिकी उसका प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होकर बांधने का त्याग करके सत्य बात अवश्य ग्रहण करेंगे, यही परम हितकारी है।

(वायुकायकी दया पालन करनेके लिये मुंहपत्ति बांधने वालोंको तथा दया २ का नाम रटने वालोंको नीचे लिखे प्रमाणे हिंसाके कार्य त्याग करने योग्यहैं)

१. ढूंढिये साधु लंबा ओघा रखते हैं, जिससे चलते समय नीचे लटकता रहता है, उससे समय २ वायुकाय के असंख्य जीवोंकी हानि होती है अतएव लंबा ओघा छोडकर संवेगी साधुओंकी तरह शास्त्र प्रमाणके अनुसार ३२ अंगुल प्रमाणे और चद्दरके अंदरढका हुआ रहसके वैसा छोटा ओघा रखना योग्य है।

२. ढूंढिये ओढनेकी चद्दरको गांठ बांधते हैं जिससे चलते समय सामनेकी हवा आनेसे नावके पालकी तरह चद्दरमें हवा भर जाती है उससे पीठके पीछे ढोलकी तरह चद्दर उंची होजाती है, उसमें भी वायुकायके जीवोंकी हानि होती है अतएव गमारोंकी तरह चद्दरके गाती बांधना छोडकर संवेगीसाधुओंकी तरह खुली चद्दर ओढना योग्य है।

३. ढूंढिये साधु उपरसे मुंहपत्ति बांध लेतेहैं परंतु नीचे से खुली रखते हैं, जिससे हिलती रहती है, उसमें भी समय २ वायुकायकी हिंसा होती है अतएव यदि पूरी २ दया पालन करना होतो मुंहपत्तिको नीचेसे भी बांध लेना चाहिये या ऊपर मुजब अनेक दोष समझकर हमेशा बांधनेका त्याग करना योग्य है।

४. ढूंढिये साधुओंको बाजारमें व्याख्यान बांचनके लिये प्रत्येक गांव २ में कहीं २ तंबु सामीयाने खडे किये जाते हैं, पाल वगैरह बांधे जाते हैं तथा चौमासेमें टीनकी चद्दरें डलवाकर छायाकी बैठक की जाती है और तपस्या के पुरके उत्सवपर खास मंडप बनवाकर ध्वजा पताकायें लगवाई जाती हैं, उसमें स्थंभ व खीली गाडने वगैरहमें पृथ्वी कायकी, पाल, सामीयाना, ध्वजा, पताका आदिसे वायुकायकी और चौमासेमें अपकाय, नीलण फुलण आदि छ कायके अनंत जीवोंकी हिंसा होती है, यहभी त्याग करना योग्य है। यदि ढूंढिये साधु अपने भक्तोंको ऐसे हिंसाके कार्य करनेकी व आप उसमें जाकर बैठने की मनाई कर दें तो इस हिंसाका बचाव सहजमें हो सकता है।

५. ढूंढिये साधु अपनी शोभाके लिये भक्तोंकी मारफत चौमासी पत्रिका, क्षामणा पत्रिका, तपस्या के पुरकी पत्रिका छपवानेमें और गांव

गांव में भिजवाने में अनंत हिंसा करवाते हैं, (क्षामणा पत्रिका का रिवाज सब जैनियोंमें चलताहै यह अनर्थ दंडका हेतु सुधरानेकी खास आवश्यकता है) यह भी त्याग करने योग्य है।

६. वर्षा चौमासे में साधु को विहार करने की मनाई है, विवेकवान् धर्मी श्रावकभी अपना गांव छोडकर दूसरे गांव नहीं जाते, तिसपरभी ढूंढिये साधु सिर्फ अपनी महिमा बढाने के लिये वंदनाके नामसे और तपस्याके पूरके नामसे पत्र लिखवाकर या पत्रिका छपवाकर हजारों लोगों को बुलवाते हैं, आनेवाले लोग गाडी, घोडे आदिकी सवारी से या पैदल आतेहैं, उसमें त्रस स्थावर अनंत जीवों की यावत् मेंडक आदि पंचेंद्रीय जीवोंकी हिंसा होती है, रेलवे की महान् क्रिया लगती है, अवावर मकानोंमें ठहरने से झाडु, दीपक, स्नानादिमें व भट्टी खाने में तथा आटा, दाल, चावल, शकर, मसाले वगैरह जीवाकुल सामान बाजारसे लाकर रसोई बनवाने में और भोजन स्थान में अपार हिंसा होती है, अतएव ऐसी हिंसा के कार्य त्याग करनेयोग्यहैं। यदि ढूंढिये साधु अपनी नामवरी की झूठी शोभाका मोह छोड दें, शांतिसे आत्म कल्याणके लिये तपकरें, जिसगांवमें ठहरें हो उसगांव में अमारी घोषणा आदि जीवदया के कार्य करावें और अपने भक्तोंको ऐसे अनर्थ मूल हिंसा के कार्य करने की मनाई कर दें, तो ऐसी महान् हिंसा का बचाव हो सकता है। पूरी दयाभी पल सकती है, नहीं तो ऐसी महान् हिंसाके पापके आगे तप और संयम दोनों धूल में मिलते हैं। और अमुक साधु के चौमासे में ५० मण खांड गली, चार महीना रसोडा चालु रहा, इतने हजार आदमी दर्शनार्थ आये, तपके पूरमें और पूज्य पदवीमें इतने मण खांड लगी, ऐसे २ हिंसा के पापकर्मकी अनुमोदना करके भोले जीव पापके भागी होते हैं। ढूंढिये श्रावकों के प्रायः करके प्रत्येक वर्षमें इस कार्यमें दो ढाई लक्ष और तेरहापंथियोंके लक्ष, सवालक्ष द्रव्यका विनाश होता है, इसमें जिनाज्ञा की विराधना, अनंत जीवों की हानि तथा द्रव्यका नाश और संसार बढने का फल मिलता है, अतएव यदि इतना द्रव्य निराश्रित जैनों के बाल बच्चे, विधवाएँ तथा अशक्त वृद्धोंके लिये उपयोग में लगे तो बडा लाभ मिले।

७. ढूंढिये साधु जब विहार करते हैं, तब भक्तों की मारफत "गांव में सूचना पहुंच जाती है तथा आगे के गांवमें भी अमुक समय" आवेंगे ऐसी सूचना भिजवा देते हैं, उससे अनेक लोग पहुंचाने को व सामने

लेने को आते हैं, उसमें त्रस और स्थावर अनेक जीवोंकी हानि होती है; इस रिवाज का त्याग करके वायुकायकी दया पालने के लिये मुंहपत्ति बाधने वालों को किसी तरह की सूचना करवाये विनाही विहार करके दूसरे गांव जाना योग्य है।

---

८. मगध, बंगाल वगैरह देशों में चावल, अंवाडी, आंव, तिल, यव इत्यादि वस्तु धोनेका प्रायः प्रत्येक घरमें प्रसिद्ध देशाचारहै, इसलिये सूत्रोंमें ऐसे निर्दोष धोवण साधुको लेनेकी आज्ञाहै, वहभी कितनी देरका बना हुआहै इत्यादि पूछकर, वर्ण-रस-गंधकी परीक्षा करके वा थोडासा हाथमें लेकर चाखकर पूरा निर्णय करके पीछे लेनेका कहाहै पूर्वधरादि दिव्यज्ञानी पूर्वाचार्योंने ऐसे धोवणको अचित्त हुए बाद अनुमान १ प्रहरका काल बतलायाहै, बाद जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै इसलिये उतने समयके अंदरमें वापरकर खलास करदेना चाहिये, बहुत देरका लेनेकी या ज्यादे रखनेकी मनाईहै। ढूंढियोंको इस बातका पूरा ज्ञान नहींहै और गृहस्थोंके वासी पिंडा धोनेका या हांडे, कुंडे, लोटे, गलास आदि रात्रि-वासी झूंठे वर्तनोंको मांजनेका मैला पाणीको धोवण समझ कर लेतेहैं, यह प्रायः सचित्त जल होताहै कभी ज्यादे राखोडीके कारण अचित्त होजावे तोभी दो घडी बाद पीछा सचित्त होजाताहै, उसमें अनंतकाय और फुँआरे आदि त्रसजीवोंकी उत्पत्ति होतीहै ऐसे जल ढूंढिये साधु लेकर शामतक रखतेहैं, पीतेहैं, उसमें कभी फुँआरे देखनेमें आतेहैं, तब नदी, तलाव, कूए आदिके पासमें गीली जगहमें जाकर फैंकतेहैं, उससे परकाय शस्त्र होकर उन फुँआरोंके तथा गीली जगहके दोनों प्रकारके जीवोंका नाश होताहै, किसी समय अन्य दर्शनी लोग देख लेतेहैं तब बडी निंदा होतीहै, कर्म बंधनका व जैनशासनके उडाह होनेका हेतु बनताहै. ऐसे कारण मारवाड आदिमें बहुतवार बन चुकेहैं। और कोई २ ढूंढिये कभी २ कुम्हार आदिके घरका मट्टी गोबर का मैला पाणी लेतेहैं, उससेभी शासनकी हिलना (अवज्ञा) होतीहै यह सब बातें सूत्र विरुद्धहैं, द्रव्य और भाव दोनों प्रकारकी हिंसाके हेतुहैं इसलिये ऐसे जल लेनेका त्याग करना योग्यहै।

९. भगवती सूत्रमें साधुको आहार पाणी तीन प्रहर तक रखने की आज्ञा दी है सो गरम जल, त्रिफलाका जल, वा छाछकी आस, काजी आदि जल की कारण वश उत्कृष्ट काल मर्यादा बतलायी है परंतु

पणीयारेके मटकोंका या वासी और झूंठे लोटे, गलास आदि धोनेका जल तीन प्रहर तक रखनेकी आज्ञा नहींहै लोटे व गलासका धोवण पूरा अचित्त नहीं होता, फुँआरे आदि उत्पन्न होतेहैं और गृहस्थोंके पणीयारे के मटकोंके अदरमें व उपरमें नीचे सूक्ष्म मट्टी लगी रहतीहै उसमें अनंत काय उत्पन्न होतीहै, उसका धोवण अनंतकायकी उत्पत्ति व हानि का हेतु होनेसे साधुको लेना तो दूर रहा परंतु संघट्टा करना भी कल्पता नहींहै जिस परभी भगवती सूत्रके नामसे ऐसा जीवाकुल सचित्त धोवणको लेनेका व तीन प्रहर तक रखनेका ठहराने वाले जिनाज्ञाकी विराधना करतेहैं। तथा ढूंढिये गृहस्थ लोगभी ऐसा धोवण चार प्रहर तक रखकर पीते हैं यहभी त्रस व स्थावर अनंत जीवोंकी हिंसाका हेतु होनेसे सर्वथा सूत्र विरुद्धहै।

१०. कई ढूंढिये धोवणमें जीव उत्पत्ति की शंका मिटानेके लिये दुरबीन से या जाडाकाँचसे धोवणमें जीव देखतेहैं परंतु देखनेमें नहीं आते उससे निर्दोष समझ लेतेहैं, यहभी अनसमझहै क्योंकि अंगुल के असंख्य भाग छोटे शरीर वाले व निगोदीये जीव ज्ञानी के सिवाय किसी भी साधन से चर्म चक्षुवाले मनुष्य कभी नहीं देख सकते और कभी फुँआरे आदि बडे त्रस जीव प्रत्यक्ष भी देखनेमें आतेहैं इसलिये झूंठे वर्तनोंका व पिंडेका धोवण को निर्दोष अचित्त समझने वालों की बडी भूल है।

११. गृहस्थ लोग शामको चुल्हे पर कच्चा जल रख देतेहैं, वह पूरा २ गरम होकर अचित्त नहीं होता, कदाचित् चुल्हेकी गरमीसे कुछ मिश्र होजावे तोभी रात्रिमें पीछा सचित्त होजाताहै, ढूंढिये साधु फजरमें उस जलको गरम जल समझकर लेतेहैं, यहभी कच्चे सचित्त जल लेनेका दोष लगताहै इसलिये ऐसा जल लेना योग्य नहीं है।

---

१२. हलवाई लोग जलेबी बनातेहैं, उसका मेदा पहिले रोज भींगोकर रखदेतेहैं, उसमें रात्रिको दो इन्द्रीय असंख्य जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै, स्वाद बदल जाताहै, बास आने लगतीहै, जब ख़मीर उठताहै तब फजरमें जलेबी बनातेहैं, यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै जिससे संवेगी साधु जलेबीको अकल्पनीय समझ कर नहीं लेते, विवेक वाले धर्मी श्रावक भी नहीं खाते. ढूंढियों को इस बात का भी ज्ञान नहीं है, अतएव जलेबी

लेतेहैं और खातेहैं यहभी त्याग करने योग्यहै।

१३. आषाढ चौमासेसे कार्त्तिक चौमासे तक हरिपत्तिके शाक वगैरह में तीन इन्द्री वाले छोटे २ कुंथुये आदि त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै, जिससे शास्त्रकारोंने चौमासेमें श्रावकोंकोभी हरिपत्ति खानेका त्याग करनेका बतलायाहै, इसलिये संवेगी साधु हरिपत्तिके शाक, चटनी आदि नहीं लेते। ढूंढियोंको इस बातकाभी ज्ञान नहींहै, ढूंढिये श्रावक हरिपत्तिके शाक आदि बनातेहैं और उनके साधु लेतेहैं यहभी असंख्य त्रस जीवोंकी हिंसाका हेतु होनेसे त्याग करना योग्यहै।

१४. बहुत रोजका आचार, मुरब्बा आदिमें उसी वर्णवाली अनंतकाय निगोद (फुलण) उत्पन्न होतीहै. प्रत्यक्ष स्वाद बदल जाता है, बास आतीहै, उससे सुक्ष्म त्रस जीवोंकीभी उत्पत्ति होतीहै। ढूंढियों को इस बातका भी ज्ञान नहीं है, जिससे ढूंढिये साधु ऐसे आचार, मुरब्बे आदि लेते हैं यहभी त्याग करने योग्य है।

१५. वासी शीरा, लापसी, खीचडी, चावल, रोटी वगैरहमेंभी त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै, जैसे अग्निमें उष्ण कायके व बरफमें शीत कायके जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै, वैसेही ओसर मोसर आदिके जीमण में पहिले रोज रात्रिको बनाये हुए सीरा लापसी आदि यदि दूसरे दिन फजर तक गरम २ रहें तोभी उसमें उष्ण कायके जीव उत्पन्न होतेहैं तथा शरदीमें रोटी आदि बहुत ठंढे रहतेहैं तोभी उसमें शीत काय के जीव उत्पन्न होतेहैं और कभी २ रोटी खीचडी आदिमें तारबंध जाते हैं, स्वाद फिर जाताहै, यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै, संवेगी साधु ऐसी वस्तु कभी नहीं लेते। ढूंढियोंको इस बातका भी ज्ञान नहींहै, इसलिये जीमण वारके तथा शीतला पूजनके व गृहस्थोंके घरमें शामको बचे हुए शीरा, लापसी, बडे, गुलगुले, मालपुवे, नरमपुडी, रोटी, खीचडी आदि वासी आहार लेकर खातेहैं यहभी असंख्य त्रस जीवोंकी हिंसाका हेतु होनेसे त्याग करने योग्यहै।

१६. कई ढूंढिये कहतेहैं कि आचारांग सूत्रमें महावीरस्वामी भगवान्ने वासी ठंढा आहार लियाथा, इसीतरह हमकोभी ठंढा आहार लेनेमें कोई दोषनहींहै, ऐसा कहकर वासी रोटी खीचडी आदि खाने का ठहरातेहैं, यहभी अनसमझकी बातहै क्योंकि जब भगवान् छद्मस्थ अवस्थामें विचरतेथे तब "गीला या सूखा, ठंढा या ऊना, उस रोजका

या बहुत रोजका, सरस या निरस, सार या असार, घृतवाला या बिना घृतका, लुखा और क्षीरका भोजन या उडदके बाकुले आदि जैसा आहार मिलता वैसा लेतेथे, यदि उडदके बाकुले आदि निरस आहार भी न मिलता तोभी अदिन्न मनसे समभाव रहतेथे" ऐसा आचारांग सूत्रमें कहाहै परंतु उसमें वासी रोटी, खीचडी आदि लेनेका नाम नहीं है और बहुत दिन का ठंढा वासी आहारमें सूखी पुडी, खाजा, लड्डु, घेवर, खाखरे, भुनेहुए चने और चने या चावलके आटेका शातु आदि अनेक वस्तु निर्दोषहैं, उनको भी बहुत रोजका ठंढा आहार कहा जाताहै, ऐसी वस्तु लेनेमें कोई दोषनहींहै इसलिये भगवान्के नामसे आचारांग सूत्रका नाम आगे करके वासी रोटी, खीचडी आदि खानेवाले सूत्र के ऊपर और भगवान्के ऊपर झूंठा दोष लगातेहैं तथा असंख्य त्रस जीवोंका भक्षण करके पापके भागी होतेहैं।

१७. फिरभी देखो विचारकरो भगवान् अनंत बल वीर्य पराक्रम वालेथे, दिव्यज्ञानी, शुद्ध उपयोगी, अप्रमादी, निर्ममत्वी, मास क्षमण आदि तपस्याके पारणे में तीसरे प्रहरमें अपरिचय वाले अज्ञात घरोंमें गौचरी जाने वालेथे, अनेक तरहके उपसर्ग और परिसह सहन करके केवलज्ञान प्राप्त करके जगत्के ऊपर अनंत उपकार करके मोक्षगयेहैं परंतु ढूंढियोंमें ऐसे एकभी गुण नहीं किंतु विशेष करके अपने रागी भक्तोंके घरोंमें गौचरी जातेहैं ममत्वभावसे व लोभ दशासे सरस २ गरीष्ट आहार लेकर शरीरको पुष्ट करतेहैं और अपने स्वादके लिये या विहारमें भातारूप आहार अपने साथमें लेजाने के लिये सूर्यका उदय होतेही गृहस्थों के घर जाकर वासी रोटी आदि व बहुत दिनों का आचार और चुल्हे परका प्रायःकच्चा जल लेतेहैं फिर भगवान्के नाम से लोगोंको बहकाकर अपनी अज्ञान कल्पनाको पुष्ट करते हुए त्रस जीवोंकी उत्पत्ति वाला आहार खाकर निर्दोष बनतेहैं, यही बडी अज्ञानताहै।

१८. देखो शामको चारबजे कोई साधु किसी गृहस्थके घरमें गौचरी गया होवे उसके रसोई होनेमें देरीहोवे तो वह कहताहै कि महाराज गरम रसोईमें थोडा विलंबहै परंतु फजरकी ठंडी रोटी हाजरहै लीजिये, इसप्रकार फजर का बनाया हुआ आहार शाम को ठंढा कहा जाताहै, भगवान् तीसरे प्रहर गौचरी जातेथे तब ठंढा आहार मिलता

था इसलिये ठंढा आहार लेनेका सूत्र कारने बतलाया है। ढूंढियों को इस बात का ज्ञान नहींहै इसलिये रात्रि वासी रोटी, बाजरी का रोटला, खीचडी, आदि ठंढा आहार को निर्दोष समझ कर लेतेहैं, यही बडी अनसमझ है। कहनेका सारांश यही है शीरा रोटी नरमपुडी आदि में जलका अंशज्यादे रहताहै, जिससे चार प्रहर बाद जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै उससे ऐसी वस्तु दूसरे रोज लेना योग्य नहींहै और लड्डु आदि मीठाई में पक्की चासनी होने से जलका अंश कम रहताहै जिससे यदि मीठाई न बिगडने पावे तो वर्षा कालमें १५ रोज तक उष्ण कालमें २० रोज तथा शीत कालमें उत्कृष्ट एक महीना तक जीव उत्पन्न नहीं होते, उससे ऐसी वस्तु दूसरे रोज लेनेमें दोष नहींहै, जिस परभी ढूंढिये लोग 'मीठे लडु लेते हो उसीतरह वासीठंडीरोटी क्यों नहीं लेते' ऐसी कुयुक्ति लगाकर लडुकी तरह वासीरोटी लेनेका ठहरानेवाले अपनी वडी अज्ञानता प्रकट करतेहैं।

१९. मक्खण (लोणी) छाछमेंसे बाहिर निकालनेपर तत्काल अंतर मुहूर्त्तमेंही उसी वर्णकी फुलण आदि अनेक जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै, और अन्यभी उन्माद, प्रमाद वगैरह दोषोंको बढाने वालाहै इसलिये धर्मी श्रावक और साधुको मक्खण खाने योग्य नहींहै, ढूंढियोंको इस बातकाभी ज्ञान नहींहै, इसलिये ढूंढिये साधु मक्खण लाकर खातेहैं, यह भी अनंतकायकी विराधना का हेतु होनेसे त्याग करना योग्यहै।

२०. मधु (सहत) में मक्खियोंका व मक्खियोंके इंडोंका रस मिला हुआ रहताहै तथा उसमें अनंतकायकी व उसीवर्णके त्रस जीवों की भी उत्पत्ति होतीहै, जिससे धर्मी श्रावकभी सहतको अभक्ष समझ कर दवाईमेंभी खाने का पाप समझते हुए नहीं खाते, जिसपरभी ढूंढियों को इस दोष का ज्ञान नहींहै, इसलिये ढूंढियें साधु सहत खातेहैं, यहभी अभक्ष होनेसे त्याग करना योग्यहै।

२१. दूधमें गुड मिलानेसे उसमें तत्काल सुक्ष्म असंख्य जीवों की उत्पत्ति होतीहै और दारु (सराब) समान दोष होताहै, जिससे कोई २ ब्राह्मण वगैरह उत्तम हिंदु कभी देवी देवताओं को दारु चढानेकी जगह दुध-गुड मिलाकर चढातेहैं यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै, इसलिये अभक्ष होनेसे जैनियों को खाने-पीने योग्य नहींहै। ढूंढियोंको इस बातकाभी ज्ञान नहीं, ढूंढियेसाधु दूधमें गुड मिलाकर खाते-पीतेहैं यहभी त्यागकरने योग्यहै।

२२. आषाढ महीनेमें आर्द्रा नक्षत्र बैठनेपर वर्षाऋतु गिनी जाती है, जिससे आंबके फलमें जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै, स्वादभी बदल जाताहै इसलिये पूर्वाचार्योंने गुजरात, मारवाड, कच्छ, मालवा, मेवाड, दक्षिण वगैरह देशोंमें आर्द्रा नक्षत्र बैठेबाद धर्मी श्रावकोंको आंब खानेका त्याग करना बतलायाहै, जिससे आंबेका अचित्त रसकोभी संवेगी साधु नहीं लेते। ढूंढियोंको इस बातकाभी ज्ञान नहीं है, इसलिये आर्द्रा बैठेबाद आंबका रस लेतेहैं, यहभी त्रस जीवोंको भक्षण करनेका दोष होनेसे त्याग करने योग्यहै।

---

२३. ढूंढिये साधु जब आहारादिके लिये गृहस्थोंके घरमें जातेहैं, तब चौरकी तरह चुपचाप चलेजाते हैं, यहभी अनेक अनर्थोंका मूल है क्योंकि देखो- गृहस्थोंके घरमें चुपचाप चले जानेसे बहुत जगह बहु, बेटी आदि खुले शरीर बैठी हों, शरीरकी शोभा करती हों, कभी स्नान करते समय, वस्त्र बदलते समय वस्त्र रहित हों या कभी कोई स्त्री-पुरुष आपसमें हास्य विनोद काम चेष्टा वगैरह करतेहों ऐसे समय यदि चुपचाप साधु घरमें चला आवे तो लज्जा जातीहै, अप्रीति होतीहै, किसीको क्रोधभी आजावे, उलंभा मिलताहै, या कभी अकेली वस्त्र रहित स्त्री को देखकर साधु को विकार उत्पन्न होजावे अथवा ऐसे समय साधुको देखकर स्त्रीका चित्त बिगड जावे तो बडा अनर्थ होजावे। कभी अन्य दर्शनीके घरमें चुपचाप चले जानेपर झगडा होजावे, गालियें खानी पडें, शासनका उडाह होवे, इसलिये चौरकी तरह गृहस्थों के घरमें चुपचाप चलेजाना बहुत अनर्थका मूल होनेसे सर्वथा अनुचितहै।

२४. फिरभी देखिये- अच्छी नीतिको जानने वाले विवेकी गृहस्थ लोग भी अपनी बहु बैन बेटी आदिकी बे शर्मी अवज्ञा न होनेके लिये अपने या अन्य किसी के घरमें चुप चाप नहीं जाते, किन्तु खुंखारा, कासी आदि चेष्टा करके या किसी तरहका आवाज करके पीछे घरमें प्रवेश करते हैं तो फिर सर्वज्ञ पुत्र कहलाने वाले जैनसाधु नाम धराने वाले होकर प्रत्यक्ष जगत्के व्यवहार विरुद्ध गृहस्थोंके घरमें चौरकी तरह चुपचाप चलेजाना, यह कैसी अज्ञानदशा कहीजावे। यदि कोई शंका करेगा कि किसी तरहकी आवाज करके जानेसे भक्तलोग अशुद्ध आहार को शुद्ध करके देंगे, जिससे साधुको चुपचापही जाना योग्य है, यहभी

अन समझकी बातहै क्योंकि जैनसाधुको पूर्वकर्म और पश्चात्कर्म आदि वहुत बातोंका पूर्वापर उपयोग रखकर आहार आदि लेनेकी सर्वज्ञ भगवान्‌की आज्ञाहै जिस साधु को पूर्वापरका (आगे-पीछेका) इतनाही उपयोग नहीं होगा वह साधु आहार आदिके लिये गृहस्थोंके घरमें जानेके योग्यही नहीं है । देखो संवेगी साधु 'धर्मलाभ' का उच्चारण करके गृहस्थोंके घरमें प्रवेश करतेहैं और सब तरहसे उपयोग पूर्वक निर्दोष शुद्ध आहार लेतेहैं (धर्मलाभ कहना शास्त्रानुसार युक्तियुक्त प्राचीन नियमहै इसको नयी कल्पना कहने वाले ढूंढियोंकी बडी भूल है इसका विशेष खुलासा आगे लिखनेमें आवेगा)

२५. फिरभी देखो-खास ढूंढियों का ही छपवाया हुआ निशीथ सूत्रके चौथे उद्देशमें पृष्ठ ४२-४३ में "जे भिक्खू निग्गथीणं उवस्सयंसि अविहाए अणुप्पविसई, अणुप्पविसंतं वा साइज्जइ ॥ २५ ॥ अर्थः— जो साधु साध्वीके उपाश्रयमें अपना आगमन जानाये बिना [खांसी आदि किये विना] प्रवेश करे, प्रवेश करते को अच्छा जाने ॥ २५ " तो प्रायाश्चित्त आवे। इस लेखमें जब साध्वीके उपाश्रयमें भी किसी प्रकार की सूचना किये विना जानेवाले साधुको प्रायश्चित्त बतलायाहै। इस बातपर विचार किया जावे तो वहु, बैन, बैटी, दासी वाले गृहस्थोंके घरोंमें चौरकी तरह चुपचाप चले जाने वाले प्रत्यक्ष जिनाज्ञाकी विराधना करके अनेक अनर्थका मूल और भावहिंसाका हेतु होनेसे त्याग करने योग्यहै।

---

२६. ढूंढिये साधु नित्य पिंडका दोष टालनेके लिये एकातरे वारा बंधीसे गौचरी जातेहैं, यहभी अनर्थका हेतुहै क्योंकि देखो ढूंढियों के भक्त गृहस्थ लोग यह बात अच्छी तरहसे समझ लेते हैं कि साधु आज हमारे घर गौचरी आये हैं कल रोज न आवेंगे, परसों आवेंगे, जिससे वे लोग वाराके रोज जल्दीसे आहार आदि बना कर धर रखते हैं। ढूंढिये साधु उस आहार पानी आदिको ग्रहण करते हैं उससे आधाकर्मी आदि अनेक दोष लगते हैं, खास साधुके आनेके उद्देशसे जल्दी छ कायकी हिंसा होतीहै, ढूंढिये ऐसे आहारको निर्दोष समझतेहैं; परंतु तत्त्व दृष्टिसे दोष वालाहीहै और नित्य पिंडभीहै । जैनसाधुकी अज्ञात और अनितय गौचरी कहीहै कभी लगोलग २-४ रोज एकघर में चले जावें और १-२ रोज या ५-७ रोज न भी जावें परंतु आज आये,

कल न आवें, परसों आवेंगे; इत्यादि किसी तरहका नियम न होना चाहिये । एक रोजकी बातहै हमारे गुरु महाराज नागोर शहरमें एक ढूंढियोंके बडे श्रावकके घरमें गौचरी गयेथे, उसघरमें सिर्फ १-२ मनुष्य चौकेमें भोजन करने वालेथे, परंतु आहार, पानी, मीठाई वगैरह बहुत वस्तुओंका योग देखनेमें आया. किसीको पूछनेपर मालूम हुआ कि आज अमुक ढुंढिये साधुओंके गौचरी आनेका वाराहै, जिससे यह सामग्रीकी तैयारीहै. फिर दूसरे रोज खास परीक्षा करनेके इरादेसे उसी घरमें गुरु महाराज गौचरी चलेगये, परंतु कुछभी नया आहार आदि सामग्री न देखनेमें आयी परंतु पहिले रोज का बचा हुआ ठंढा भोजन करते देखनेमें आये और तीसरे रोज किसी नोकरसे फिर मालूम हुआ कि आजभी पूज्यजी का वारा होनेसे सामग्री तैयारहै. इस प्रकार वारा बंधीसे गौचरी जानेसे छ कायकी हिंसा, आधाकर्मी और स्थापनादोष आदि अनेकदोष आतेहैं यहभी त्याग करने योग्यहै।

---

२७. चने, उडद, मुंग, तुयर वगैरह दोफाड वाले धानको कचे दही, छाछ, दूधमें मिलानेसे उसको विदल कहा जाताहै। जैसे वडे, पकोडी, चीलरी, पीतोड आदिमें कचा दही या छाछ डालकर रायता बनातेहैं, खीचडीमें दही—छाछ डालकर खातेहैं और बेशणमें कचा दही छाछ मिलाकर कढी करतेहैं उसमें तत्काल सुक्ष्म त्रसजीवोंकी उत्पत्ति होतीहै, ऐसा आहार खानेसे त्रस जावोंकी हानि होतीहै, बुद्धिमंद होतीहै, कभी किसी प्रकारका रोगभी हो जाताहै इत्यादि कारण होने से ऐसी वस्तु जानकार संवेगी श्रावक कभी नहीं खाते और संवेगी साधुभी नहीं लेते। ढूंढियोंको इस बातकाभी ज्ञाननहीहै जिससे ढूंढिये श्रावक ऐसा विदल बनातेहैं, खातेहैं, ढूंढिये साधुभी लेकर खातेहैं उसमें असंख्य त्रसजीवोंकी हिंसा होनेसे विदल वस्तु खानेका त्याग करना योग्यहै।

२८. अमोलकऋषी वगैरह कितनेही ढूंढिये विलदमें जीवोंकी उत्पत्ति मानतेहैं, 'जैनतत्त्वसार' में बाईस अभक्षके अधिकारमें पृष्ठ ५९३ वें में लिखतेभी हैं, परंतु व्यवहारमें नहीं लाते, खानेका त्याग नहीं करते, ढूंढिये श्रावकोंको उपदेश भी नहीं देते, यहभी स्वादका लोभही है। बहुत ढूंढिये विदलमें जीवोंकी उत्पत्ति नहीं मानते और कहतेहैं कि विदलमें हमको प्रत्यक्ष जीव बतलावो, ऐसे अनसमझ

ढूंढियोंको मेरा इतनाही कहनाहै कि जिसप्रकार पांचस्थावर तथा संमूर्च्छिम के १४ स्थानक निगोद आदिमें असंख्य व अनंतजीव ज्ञानियोंनेकहे हैं, उन जीवोंको कोईभी मनुष्य आंखोंसे प्रत्यक्ष नहीं देख सकता, किंतु उनमें तो ज्ञानी के वचनपर श्रद्धा रखकर जीव दयाका व्यवहार किया जाता है. उसी प्रकार विदलमेंभी ज्ञानी महाराजने जीव उत्पन्न होनेका कहाहै, इसलिये ज्ञानीके वचनपर श्रद्धा रखकर विदल वस्तु खानेका त्याग करना योग्य है और प्रत्यक्ष जीव देखनेकी कुयुक्ति करना मिथ्यात्वका हेतु होनेसे व्यर्थ है।

---

२९. साधुको ठहरनेके लिये मकान देने वाले मालिकका घर शय्यातर होताहै, उसके घरका आहार आदि साधुको लेनेकी सर्वतीर्थंकर महाराजोंकी मनाईहै, ढूंढिये साधु लोग मकानके मालिकका घर शय्यातर न करतेहुए मकानमें ठहरनेकी आज्ञा देनेवाले नौकर या पाडोसी आदि अन्यका घर शय्यातर करके मकानके मालिकके घरका आहारादि लेतेहैं, यहभी सर्वथा शास्त्र विरुद्धहै। बडे आदमीके अनेक नौकर होतेहैं उसमेंसे एक नौकरका घर शय्यातर मानकर खुद मालिकके आहारादि लेनेसे दृष्टिरागसे छ कायकी हिंसा वाला सदोष आहार मिलताहै, प्रमाद बढ जाताहै उससे दूरके घरोंमें आहार आदिके लिये जानेमें आलस्य आताहै और मकान मिलनेकी दुर्लभता वगैरह अनेक दोषलगतेहैं, जिनाज्ञाकी विराधनाहोतीहै इसलिये यह रिवाजभी त्याग करने योग्यहै।

---

३०. ढूंढिये साधु-साध्वियों के खास ठहरनेके लिये स्थानक बनानेमें आतेहैं, उसमेंभी छ कायकी हिंसा होतीहै, आधाकर्मी दोष आताहै, जिनाज्ञाका उल्लंघन होताहै। स्थानकमें ठहरनेके कारणसेही स्थानक वासी नाम प्रसिद्धहै, यहभी छ कायकी हिंसाका हेतु त्याग करने योग्यहै।

---

३१. ढूंढिये साधु लसण-कांदे आदि अनंत काय (कंदमूल) की चटनी वगैरह ले कर खातेहैं, फिर निर्दोष ठहरानेके लिये 'दशवैकालिक' सूत्रका प्रमाण बतलातेहैं यहभी पूरी २ अज्ञानताहै, क्योंकि देखो-जो साधु तपस्वी शरीरकीभी ममत्वरहित समभाव वाला पूरा २ निर्दोष लूखा सूखा निरस आहारसे अपना संयमका निर्वाह करने वाला होवे, वह साधु अनुक्रमसे अपरिचय वाले अज्ञात घरोंमेंसे जैसा

सम्यक्त्व सहित श्रावक के बारह व्रतलिये थे, परन्तु पीछे से साधुओं के समागम के अभाव से तेने श्रावक धर्म छोड दिया और मिथ्यात्वियों की संगत से मिथ्यात्व में गिरगया और काष्ठमुद्रासे मुँह को बांधना, अग्नि जलाना, कंदमूल खाना व तापसी दीक्षा लेकर अज्ञान कष्ट करता हुआ मिथ्यात्व की क्रिया करता है; इसलिये यह तेरे कार्य दुष्ट कहे जाते हैं, ऐसा देवका बचन सुनकर फिर सोमिल बोला कि अब मेरी प्रव्रज्या (दीक्षा) कैसे अच्छी होवे, तब फिर भी देव बोला काष्ठ मुद्रादि मिथ्यात्व की क्रिया को छोडकर पहिले मुजब सम्यक्त्व सहित श्रावक के बारह व्रतोंको अंगीकार कर, उससे तुमारी क्रिया सफलहोवे. इस प्रकार देवका वचन सुनकर सोमिलने मुँह बांधनादि तापसी दीक्षाकी मिथ्यात्वी क्रिया छोडकर फिरसे श्रावक धर्म अंगीकार किया. तब देवने सोमिल को बंदना नमस्कार किया और अपने स्थान चला गया, उसके बाद सोमिल तापसने श्रावक धर्म पालन करते हुए उपवास, छट्ठ, अट्ठम, मासार्द्ध, मास क्षमाणादि बहुत तपस्यादि धर्म कार्य करते हुए अंतमें १५ दिन का अणशन करके अपना आयुः पूर्ण कर ज्योतिषी निकाय में शुक्र नामा बडे ग्रहपने में उत्पन्न हुआ [यद्यपि सम्यग्दृष्टि व्रत धारी तपस्या करने वाला श्रावक वैमानिक देवलोक में जाता है, परंतु सोमिलने श्रावक धर्म की विराधना करके काष्ठमुद्रासे मुँह बंधनादि मिथ्यात्व सेवन किया था, फिर उसकी आलोयणा (प्रायश्चित) नहीं ली, बिना आलोयणा किये आयुः पूर्ण करने से विराधक हुआ, इसलिये ज्योतिषी में उत्पन्न हुआ है. यदि मिथ्यात्वी क्रिया की शुद्ध भावसे आलोयणा करलेता और आराधक होता तो अवश्य ही वैमानिक देवलोक में उत्पन्न होता.] वहां देवभवका आयुः पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य जन्म लेवेगा. और संयम लेकर यावत् मोक्षमें जावेगा।

६९. देखिये- ऊपर के पाठ में मिथ्यात्वी तापसने काष्टकी मुद्रा अपने मुंहपर बांधी उसको देवताने दुष्ट कह कर त्याग करवाया और शुद्ध श्रावक धर्म अंगीकार करवाया, काष्ट की मुद्रादि मिथ्यात्वी क्रिया की आलोयणा न लेने से विराधक हुआ, इस बाबत का सब पूरा पाठ को छोड़ कर सिर्फ 'निरयावली' सूत्र के नाम से ढूंढिये लोग जैन मुनियोंको भी हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति बंधी रखने का ठहराते हैं, और भोले जीवों को बहकाते हैं, यह कैसी मायाचारी की ठकबाजी है. 'नि-

रयावली ' सूत्र में हमेशा तो क्या परन्तु एक दिन भी जैन मुनियों को मुहँपर मुंहपत्ति वंधी रखने का किसी जगह नहीं लिखा मगर दिशा पोषण करने वाले सोमिल तापसने काष्ठमुद्रा मुंहपर वंधी थी, उसवख्त सोमिल मिथ्यात्वकी क्रिया में था. उसको देखकर उसीके अनुसार ढूंढिये साधूलोग कपड़े की पट्टी को मुंहपत्तिके नाम से हमेशा मुंहपर बाधते हैं, उससे ' निरयावली ' सूत्र के पाठानुसार तो (सोमिल की तरह हमेशा मुंहवंधा रखने वाले) सव ढूंढिये मिथ्यात्वी ठहरते हैं. इससे यहवात सावित होती है कि-जो आत्मार्थी सम्यग्दृष्टि भव्यजीव होगा वह तो सोमिल तापसकी तरह हमेशा मुँहवंधा हुवा कभीभी न रखेगा, और मिथ्यात्वी होगा वह सोमिल की तरह हमेशा मुँहवंधा हुआ रख्खेगा. इस बातको अल्पवुद्धि वाले सामान्य पुरुषभी अच्छी तरह से समझ सक्ते हैं, तोभी वड़े अफसोस कि वात है, कि-साधू नाम धारण करने वाले व लोगोंको धर्मका उपदेश देनेवाले ढूंढिये लोग जैनी कहलाते हुए भी जिनाज्ञा विरुद्ध होकर मिथ्यात्वी तापस की तरह हमेशा मुँहबंधा रखते हैं. फिर उसी कोही पुष्ट करनेके लिये 'निरयावली' सूत्रका सिर्फ "मुहं वंधेत्ता" ऐसा अधूरा पाठको बतलाते हैं, और जान वूझकर मायाचारीसे भोले लोगों को उनमार्ग में फंसाते हैं, यह कैशा अभिनिवेशक मिथ्यात्वका हठाग्रह है, आत्मार्थी होगा वह ऐसा कभी न करेगा *

---

* ढूंढियों के छपवाये हुए " निरयावली" सूत्र के तीसरे अध्ययनमें शुक्रदेव के अधिकार में छपेहुए पृष्ठ १०४-१०९-१०६ मे ऐसा लेख है:-

" सोमिल ब्राह्मण के पास आधिरात्रि में एक देवता आया वह यों कहने लगा अहो सोमिल ! तेरी प्रव्रज्या है यह दुष्ट (खोटी) प्रव्रज्या है ॥ २७ ॥ तब उस सोमिल ने उस देवता के मुख से दो तीन वक्त उक्त वचन श्रवणकर उस देवता से ऐसा बोला हे देवानुप्रिय ! किस कारण मेरी प्रव्रज्या यह दुष्ट प्रव्रज्या है ॥ २८ ॥ तब देवता सोमिल ब्राहमण से इस प्रकार बोला यों निश्चय अहो देवानुप्रिय ! तेने पार्श्वनाथ अर्हन्त पुरुषोत्तम के पास पांच अणुव्रत सातशिक्षा व्रत बारा प्रकार का श्रावक धर्म अंगीकार किया था, फिर तुम अन्यदा किसी वख्त साधुके दर्शन नहीं करने से सम्यक्त्व की हानी हुई और मिथ्यात्व की वृद्धि हुई यावत् कुटुम्ब जागरनाकर तुमने अम्बाराम वगैरह लगाया, लोह कुडछा वगैरह कराया, तापस हुवा, यावत् अभिग्रह धारन कर उत्तर दिशा की तरफ चला अशोकवृक्ष के नीचे रहा, कावड स्थापन कर यावत् मौन रहा. तब आधिरात्रि को तेरे पास मैं आया और बोला कि अहो सोमिल तेरी दुष्ट प्रव्रज्या है. या-

होनेसे साधु और श्रावक दोनोंको संसारमें डुबाने वालाहै इसलिये भवभीरु अत्मार्थियोंको अवश्य त्याग करने योग्यहै ।

---

३६. ढूंढियोंमें जब कोई दीक्षा लेताहै तब तपस्याके पूरके महोत्सवकी तरह वंदनाके लिये आनेवाले लोगोंकी भक्तिमें अनेक तरहके आरंभमें छ कायके अनंत जीवोंकी हिंसाकरतेहैं तथा विशेषतामें वरघोडे में;मुसल्मान, ढोली आदिको बुलवाकर नगद पैसे देकर खुले मुंह वाजिंत्र बजवातेहैं, हजारों लोग दोडादोडसे त्रस स्थावर जीवोंका नाश करते हैं, लुगाईये खुले मुह गीत गातीहैं, प्राहुणोंकी भक्तिके लिये मीठाईयोंका भट्ठी खाना चलताहै यहभी हिंसाका कार्य त्याग करना योग्यहै ।

---

३७. ढूंढिये श्रावक श्राविका मुंह बांधकर स्थानकमें इकट्ठे होकर दया पालतेहैं, उसरोज घरमें बनीहुई ताजी रसोई नहीं खाते और हलवाईके वहांसे मणोंबंधमीठाई मौल मंगवाकर खातेहैं, बडे खुशी होते हैं, आज हमने छ कायका हिंसा टाली, बडी दया पाली-ढूंढियोंका यह कर्तव्यभी तत्त्वदृष्टिसे बड़ी हिंसाका हेतुहै, क्योंकि हलवाईके भट्टीखानेमें कीडे, मकोडे, रात्रिको पतंगीये वगैरह अनेक त्रस जीवोंकी हिंसा होतीहै अयत्नासे अनछाना वासी जल व बहुत रोजका जीवाकुल मेदा, खांड़का रस वगैरहमें मक्खी मच्छर आदि हिंसाका पार नहींहै तथा मलीनता, अशुद्धि प्रत्यक्षहीहै. यह सब हिंसा मीठाई मौल मंगवाकर खाने वालोंको लगतीहै । जिस प्रकार कसाई खाने में जितनी जीव हिंसा होतीहै उसमें जीवोंको खरीदनेके लिये व्याज से रुपया देने वाले, बेचने वाले, दलाली करने वाले, खरीदने वाले, जीव मारने वाले, नौकरी करने वाले, मांस बेचने वाले, पकाने वाले और खाने वाले यह सब लोग हिंसाके पापके भागी होतेहैं. उसी प्रकार हलवाईकी हिंसाभी मौल मंगवाकर खाने वाले सबको लगतीहै इसलिये सामायिक आदि व्रतवाले श्रावकोंको हलवाईके वहाकी वस्तु मौल मंगावाकर खाना यह अनंत हिंसाका पाप, जिनाज्ञा की विराधना और मिथ्यात्व बढाने वाला होनेसे सर्वथा अनुचितहै। देखो-कई २ व्रतधारी श्रावक-श्राविका १४ नियम धारण करनेवाले और अन्यभी विवेकवाले बहुतसे श्रावक हलवाईके वहांकी मीठाई खानेका त्याग करतेहैं, यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै । ढूंढियोंको इस वातका ज्ञान नहींहै, जिससे दया पालनेके रोज व्रतमें रहते हुएभी हलवाई खानेकी हिंसाके भागी होतेहैं । यह अज्ञान दशाभी हिंसाकी हेतु होनेसे त्याग करने

योग्यहै । यदि सच्ची दया पालन करना होतो दया पालनेके रोज उपवास वगैरह व्रत करो अथवा घरमेंसे सुके खाखरे दही-छाछ आदिका थोडासा सहारा लेकर रस त्याग व उणोदरी तपका लाभ लो, यह सच्ची दयाका पालन करते नहीं और जलेबी, घोलबडोंका रायता आदि अभक्ष खाकर भठ्ठीखानेका पाप ले करकेभी दया समझ बैठेहैं, ढूंढियोंमें दयाके नामसेभी हिंसाका पार नहीं, यही बडी अज्ञानताहै ।

---

३८. जब ढूंढियोंके कोई साधु या साध्वी काल कर जातेहैं तब उसके मुर्देको १-२ रोजतक रख छोडतेहैं, आसपासके गांव वालोंको पत्र या तारआदिसे सूचनादेकर मुर्देके दर्शनकेलिये लोगोंको बुलवातेहैं, मांडवी (चकडोल) की बडी सजावट करके नगारे निसाण गाजेबाजे व नाईयोंको बुलवा कर दिन दुप्रहरको दीवी (मसालें) जलाते हुए गीतगान करते हुए भजन मंडलीके साथ अग्निसंस्कारके लिये ले जातेहैं। गये वर्ष पंजाब देशमें रावलपिंडीमें ढूंढियोंके साधुके मुर्देको दो रोज तक सजावट वाले कमरेमें रक्खाथा और बडे आडंबरसे जलानेको ले गयेथे फिर दो रोज बाद उसके फोटोकी खूब धामधुमके साथ स्वारी निकालीथी, यह बात उसी समय ढूंढियोंके वर्तमान पत्रोंमें व जैन, जैन बंधु आदिमेंभी प्रकट हुईथी तथा काठीयावाड़में जेतपुर मोढवाडीमें मृत माणेकचंद ढूंढिया साधुके अग्निसंस्कारकी जगह निर्वाण मंदिर बनवायाहै, दर्शनके लिये फोटो स्थापन कियाहै और वार्षिक तिथिके रोज निर्वाण मंदिरके सामने बडा मंडप बनवातेहैं, ध्वजा-पताकाओंसे बडी शोभा करतेहैं, नोबत नगारे बजवातेहैं, फोटोके दर्शनकर गुरु-गुण गातेहैं, यह बात अमदावादसे संवत् १९८२ पौषमहीनेमें "स्थानक वासी जैन" नामक खास ढूंढियोंके मासिक पत्रके पृष्ठ ३१ में प्रकटहुईहै । औरभी लुधीयाना, रायकाट, अंबाला, बर्नाला इत्यादि पंजाब, मारवाड, काठीयावाड आदि देशोंमें ढूंढिये साधुओंकी याद गिरीके लिये छत्री, घुमटी, निर्वाणमंदिर बनेहुए मौजूदहैं तथा दर्शनके लिये चरण स्थापना व फोटोकी स्थापना की है । इस प्रकार राग द्वेष क्रोध मान माया लोभ आदि अनेक दोष वाले आठ कर्म सहित चारगति संसारमें फिरने वाले और जिसकी गतिका ठिकाना नहीं उनकी भक्तिके लिये ऐसे २ हिंसाके कार्य ढूंढिये साधु अपने गुरुकी महिमाके लिये भक्तोंसे करवातेहैं और परम उपकारी अनंतगुण सहित आठकर्म रहित होकर मोक्षमें गये ऐसे

कितना संसार परिभ्रमण करना पडेगा सो तो ज्ञानी जी महाराज जाणे, तोभी " उस्सुत्तभासगाणं वोहिनासो अणंत संसारो " इस प्रमाणसे ऐसी खोटी प्ररूपणा करने वालोंको सम्यक्त्वका नाश और अनन्त संसारकी वृद्धि होनेका देखने में आता है. इसलिये मोक्षाभिलाषी पुण्यवान् सर्व ढूंढिये सज्जनों को हमेशा मुंह बांधने रूप ऐसे मिथ्यात्वी कुपंथ का अवश्य ही त्याग करना चाहिये।

(खास जरूरी सूचना.)

७२. शासन भक्त सर्व संवेगी साधू–साध्वी–यति–श्रीपूज्य–आगेवान् सेठीये और श्रावक श्राविकादि सबको सूचना देने में आती है–कि जैसे वह देवता सोमिल को समझाने के लिये हमेशा सोमिलके पीछे लगगयाथा उससे छेवटमें सोमिल को मिथ्यात्व से छुडवाकर शुद्ध धर्ममें स्थापित करने रूप बडा उपकार करने वाला हुआथा. इसी तरह से प्रत्येक गांवडोंमें, प्रत्येक शहरोंमें, रास्तेमें, जंगल में, जहां २ आप लोगों को मुंह बांधने वाले ढूंढिये मिलें वहां २ उन्होंके पीछे लगकर ऊपरके सूत्र पाठ व युक्ति युक्त समीक्षा के लेखोंको समझा कर ; उपदेश देकर, सोमिल की तरह हरदम मुंह बंधने रूप मिथ्यात्व को अवश्य छुडवाईये और जिनाज्ञानुसार यत्ना पूर्वक बोलने के लिये मुहँ आगे मुंहपत्ति हाथमें रखने का शुद्ध जैन धर्म अंगीकार करवाने रूप बडा उपकार करने का लाभ लीजिये. हरदम मुंह बंधा रखने से अन्य दर्शनीय हिन्दू–मुसलमान–ईसाई वगैरह लोग ढूंढियों को मुंहबंधे २ कहकर हंसी करते हुए बिचारे कर्म बंधन करते हैं, जैन शासन की लघुता करते हैं, सो ढूंढियों का मुंह बांधना छुडवाने से उन लोगोंके कर्म बन्धन छुटेगें, शासन की निन्दा बचेगी, उसका भी बडा भारी लाभ आपको मिलेगा. और सोमिल ने मिथ्यात्व सेवन की आलोयणा नहीं लीतो विराधक हुआ है इसलिये इन ढूंढियों को हरदम मुंह बांधने रूप मिथ्यात्व सेवन करने की आलोयणा दिलवाकर उन्हों को आराधक बनवाईये, नहीं तो बिचारे विराधक होकर भवोभव संसारमें भटकेगें। इससे जो २ ढूंढिये आत्मार्थी होंगे वह तो ऐसे मिथ्यात्व सेवन की आलोयणा लेकर अवश्यही अपनी आत्माको शुद्ध करेंगे, आराधक होगें, उससे उन्हों की आत्मा का शीघ्र कल्याण होगा, इसालिये उन्हों का आलोयणा दिलवाके विराधकदशामें धर्महारजाने के महान्पापसे भी अवश्य बचाव

करीयेगा. और जैसे माता पिता व वैद्य अज्ञानी बालकका रोग नाश करने के लिये उपकार बुद्धि से कड़ुकदवा देते हैं, उसपर वह बालक बहुत नाराज होता है, तो भी वो उपकारी जन उस अज्ञानी बालककी नाराजी पर कुछभी ख्याल न करते हुए उसको दवा देकरके रोग मुक्त करते हैं, सुखी करते हैं. तैसे ही इन ढूंढियों का भी हरदम मुंह बांधने रूप मिथ्यात्वका रोगको नाश करनेके लिये आपका अमृत तुल्य उपदेश भी ढूंढियोंको कड़ुक लगे, नाराज होवे, अनुचित बचन बोलें, झगडा मचावें, तोभी उन्हों की अज्ञान चेष्टा तरफ ख्याल न करते हुए आप लोगतो उन्हों के ही उपकार के लिये मुंह बंधने के मिथ्यात्व रोगसे अवश्य ही छुडवाईये. श्रीजैन शासन में हरदम मुंहबंधा रखनेका किसीभी आगम में नहीं लिखा; तोभी यह लोग हरदम मुंह बांधकर शासन की हीलना करवाते हैं. और मिथ्यात्व वढाते हुए शासनके शत्रुता का ही काम करते हैं. इसलिये ऐसे अज्ञानियों को ऐसे कुपंथ से छुडाने में ही अपना श्रेय है. इसवात को जिनाज्ञा के आराधक परोपकारी तत्त्वज्ञ जनअच्छी तरह से समझ लेंगे।

(मुंहपत्ति हाथपत्ति का निर्णय.)

७३. ढूंढिये लोग कहते हैं कि–करमें रक्खे सो करपत्ति; याने-हाथ में रक्खे सो हाथपत्ति कही जावे और मुंहपर बांधे सो मुंहपत्ति कही जावे इसलिये मुंहपत्ति मुंहपर बांधना योग्य है परन्तु हाथ में रखना योग्य नहीं है. ढूंढियों का ऐसा कहना अज्ञानता जनक होनेसे प्रत्यक्षही झूठ है, क्योंकि देखिये–प्रथम तो मुंहपत्ति मुंहपर बांधने वाले ढूंढिये ही हमेशा दिनमें दो दफे जब आहार करते हैं तब अपने मुंहपर से मुंहपत्ति को उतार कर आसन पर या गोडे पर रखते हैं, उस वक्त मुंहपत्ति मुंह से दूर आसन पर या गोडे पर रहती है, मुंहपर बंधी हुई नहीं होती तो भी उसको मुंहपत्ति कहते हैं परन्तु आसन पट्टी नहीं कहते हैं. इसी तरह मुंहपर न बांधने पर हाथमें रहे तोभी उसको हाथपत्ति कभी नहीं कह सक्ते, किन्तु मुंहपत्ति ही कहेंगे.

७४. फिरभी देखिये जिस कामके लिये जिस वस्तुका उपयोग करने में आता होवे उसके अनुसार व्यवहार से उनका नाम कहने में आता है, जैसे वैद्यगी करने वाले को वैद्य कहते हैं, न्यायालय में बैठकर न्याय करने वाले को न्यायाधीश कहते हैं, वकीलात करने वाले को वकील क-

अपने गुरुकी महीमा बढानेके लिये ऐसे २ हिंसाके कार्य करतेहैं और अनंत उपकारी श्रीतीर्थंकर परमात्माकी पूजा भक्तिकी निंदाकरते हुए दर्शन करनेको जानेवालोंको मनाई करके अंतराय बांधतेहैं, यही प्रत्यक्ष मिथ्यात्वहै । जिसपरभी संसार खाताका नाम लेकर मायाचारीसे १७ वा मायामृषा पापस्थानक का सेवन करते हुए निर्दोष बनना चाहतेहैं सो कभी नहीं होसकते, आत्मार्थी सच्चे जैनीको ऐसे मिथ्यात्वका त्याग करनाही हितकारी है।

---

४२. यदि ढूंढिये साधु कहें कि तपस्याके पूर का महोत्सव आदि ऐसे हिंसाके कार्य करनेका हम नहीं कहते, यहभी मायाचारी सहित प्रत्यक्ष झूठहै, जिस प्रकार जिनमंदिर जाने वालोंको ढूंढिये साधु मनाई करदेतेहैं, सोगन दिलवा देतेहैं, उसी प्रकार यदि तपस्याकापूर-मुर्दा महोत्सव आदि ऐसी हिंसाके कार्य करनेकी ढूंढिये साधु मनाई करदें, सोगन दिलवादें तो कभी न होने पावें, यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै कि तपस्याके पूरका दिन अपने भक्तोंको महीना १५ रोज पहिलेसेही बतला दिया जाताहै उसीसेही पत्रिका छपतीहैं, तार छुटतेहैं, मोटर घोड़ागाडी आदि स्वारीकी दोड धूम मच जातीहै, बहुत लोगोंको आये देखकर बड़ेखुसीहोतेहैं, आनेवालोंकी वें भोजनभक्ति वगैरह सारसंभालकरने वालोंकी 'तुमतो बड़े भक्तहो' इत्यादि प्रसंशा करतेहैं इसीसे चौमासा आदिमें ऐसे हिंसाके कार्य होतेहैं इसलिये ऐसी हिंसा करवाने वाले मूल कारणभूत खास ढुंढिये व तेरहापंथी साधु ही हैं।

---

४३. औरभी तीन रोजका दहींमें, बहुत रोजके बाजारके चूर्णमें तथा आटा, मेदा, मसाले, कचीखाड, मेवा, घृत आदि अनेक वस्तुओंमें ऋतुभेदसे कालमान उपर उन्होंमें त्रस जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै, ढुंढियोंको ऐसी अनेक बातोंका पूरा २ ज्ञान नहींहै, जिससे ढूंढिये साधु-साध्वी श्रावक-श्राविकाएँ ऐसी वस्तु खाकर पापके भागी होतेहैं और ढूंढियोंकी पुस्तकोंमें ऐसी वस्तुओंकी काल मर्यादाका विधानभी नहींहै, इसीसेही ढूंढियोंकी अज्ञान दशासे ढुंढियोंके अनेक कर्तव्य प्रत्यक्षही सर्वज्ञ शासन विरुद्ध हैं। जिसपरभी सच्चे जैनी होनेका दावा करतेहैं और अनादि मर्यादा मुजब मोक्ष के हेतु जिन प्रतिमाकी पूजा आदि सच्चे जैनियोंकी बातोंकी निंदा करके लोगोंको बहकातेहैं, यही प्रत्यक्ष मिथ्यात्वका झूठा

ढोंगहै. मोक्षकी इच्छावालेको ऐसा झूंठाढोंग त्याग करनाही हितकारीहै।

---

४४. भगवती, ज्ञाताजी, उपासकदशा, अंतगडदशा, अनुत्तरो ववाई, प्रश्नव्याकरण, उत्तराध्ययन, ओघनिर्युक्ति, प्रवचनसारोद्धार आदि बहुत शास्त्रोंमें साधुको गौचरी जाने के समय अपने पात्रोंको ढकनेके लिये झोलीके ऊपर वस्त्रके पडले रखनेका कहाहै, उससे अनेक लाभ होतेहैं, इसलिये संवेगी साधु रखतेहैं. परन्तु ढूंढिये साधु नहीं रखते जिससे अनेक नुकसान होतेहैं, सो बतलातेहैं। जब ढूंढिये साधु बाजारमें या गलियोंमें लंबी नीचे लटकती हुई खुली झोली में आहार-पानी लेकर जाते हैं तब कभी उसमें हवासे सचित्त रज गिर जातीहै १, अकस्मात वर्षाके जलकी बिंदुभी गिरजातीहैं २, कभी अधिक हवाके जोरसे अंबली, लींब, बड आदिके पत्र, पुष्प, फल वगैरा-भी गिरजातेहैं ३, कभी गृहस्थलोग वर्तनोंका झूंठा मैला जल अपने मकानके ऊपरसे गलीमें फैंकते होवें उससमय ढूंढिया साधु उस रास्ते होकर जाता होवे तो उसमेंसे जलके छांटे कभी आहार-पानी आदि पर गिरजातेहैं ४, कभी लोग मुर्देको ले जाते होवें तो उसकी छाया आहारादि पर गिरजातीहै ५. आकाश में चिल्ल कौवा आदि यदि उडतेहुए विष्टा करदें तो उसके छांटेभी आहारपर गिरजातेहैं ६, मणीयारे वैपारियोंकी तरह ढूंढिये साधुभी मीठाई, रोटी, शाक, दूध दही, घृत, गुड, शकर आदि आहारके सब पात्रें गृहस्थोंके घर २ में अलग २ रखदेतेहैं, उनको देखकर बालक खानेके लिये रोने लगतेहैं, न देनेपर दुःखी होतेहैं, कभी मांगनेवाले रांक देखकर लोभातहैं न मिलनेसे अंतराय बंधताहै ८, कभी कुत्ता बिल्ली आदि खानेके लोभसे झपाटा मारदेतेहैं ९, कभी दाल, कढी, क्षीर, घृत वगैरह झोलीमें ढुलजावें, झोली बिगड जावे तो रास्तामें लोग देखकर हंसी करतेहैं, उस से जैन शासनकी हिलना होतीहै १०, गरीष्ट पुष्टिकारक आहार देखकर देखो कैसा माल उडातेहैं इत्यादि निंदा होतीहै ११, निरस आहार देखकर देखो कैसा खराब आहार साधुको दिया है ऐसी देने वालोंकी निंदा होतीहै १२, वर्षा के बिंदु आदि आहार पानीमें गिर-गये होवें वैसा आहार साधुको खाना कल्पता नहींहै उसको परठवना पडे उसमें अनेक तरह की जीवोंकी विराधना होतीहै १३, इत्यादि अनेक नुकसान होतेहैं इसलिये यहभी जिनाज्ञा विरुद्ध और छकायकी हिंसा

का हेतुरूप अज्ञान रिवाज ढूंढियोंको त्याग करना योग्यहै और संवे साधुओंकी तरह सूत्रोंकी आज्ञा मुजब झोलीके उपर पडले ढकने अंगीकार करनेसे गृहस्थोंके घरोंमें सब पात्रें नीचे रखनेकी जरू नहीं पडती उससे ऊपरके दोषोंकाभी बचाव होताहै, इसलिये झूठे की अज्ञान रूढिको छोडकर सत्य बात ग्रहण करनेमेंही आत्म हितहै

---

४५. रात्रिमें व शाम सवेर सूर्यकी गरमीके अभावमें सूक्ष्म सचि जलकी वर्षा हमेशा होतीहै ऐसा भगवती सूत्रके प्रथम शतकके छ उद्देशमें कहाहै इसलिये उसकी दयाके लिये साधुको तथा पौषध आ व्रतवाले श्रावकोंको रात्रिमें व सवेर ऋतु भेदसे वर्षा कालमें छ घ तक, शीत कालमें ४ घडीतक, उष्ण कालमें दो घडीतक दिनचढे त तक और शामको उतना दिन बाकी रहे तबसे साधुको खुले अ मकानसे बाहिर जाना योग्य नहीं है, कभी कारण वश जाना पडे कंबल ओढकर जाना चाहिये. इसी कारणसे भगवतीजी, आचारांग प्रश्नव्याकरण आदि सूत्रोंमें जगह २ साधु को कंबल रखनेका अ कार आयाहै। ढूंढियों को इस बातका पूरा २ ज्ञान नहींहै इसलि रात्रिमें व शाम-सवेर ओढनेकेलिये कंबल नहींरखते, यहभी अपकाय हिंसाकाहेतु, त्यागकर संवेगी साधुओंकी तरह कंबल रखना योग्य है

४६. यह कंबल रखनेका नियम सर्व तीर्थंकर महाराजों शासनमें सब क्षेत्रोंमें हमेशा कायम रहनेके लियेही तीर्थंकर भगव की दीक्षा समय इन्द्र महाराज बहु मूल्य रत्न कंबल भगवान् के डा खंधेपर रखतेहैं यहबात जैनशास्त्रों में प्रसिद्धहीहै, इसलिये ढूंढियों यदि सच्चे जैनी बननेकी इच्छा हो तो अपना अज्ञान रिवाजको त्याग क डावे खंधेपर कंबल रखने वगैरहकी सत्य बातें अंगीकार कर योग्यहैं। दूसरी बात यहभीहै कि साधुके खंधेपर कंबली हो तो आहा आदिके लिये साधु गया होवे वहांपर रास्तामें अकस्मात जोर से ह चलनेलगे, वर्षाहोने लगे तो शरीरको, वस्त्रको व आहार-पानी आदि ढकनेके काममें आतीहै तथा मुंहके आगे आडी डालनेसे गौचरी बह रते समय या छींक आदि करते समय नाक मुंह दोनों की यत्ना हो है और बैठनेके लिये आसनके काममेंभी आतीहै अन्यभी बहुत फाय दे होतेहैं इसलिये खंधेपर कंबल नहीं रखनेवाले अनादि काल शासन मर्यादाका उल्लंघन करनेके दोषी ठहरतेहैं।

॥ ॐ ॥

॥ णमो जिणाणं ॥

जाहिर उद्घोषणा नंबर ३.

(शरीरकी शुचिकेलिये रात्रिमें जल रखनेका निर्णय)

४७. ढूंढिये कहतेहैं कि सूत्रोंमें चार प्रकारका आहार साधुको रात्रिमें रखना मना कियाहै इसलिये हम लोग शरीरकी शुचिके लिये भी रात्रिको जल नहीं रखते, संवेगी साधु रखतेहैं सो सूत्र विरुद्धहै, यहभी ढूंढियोंका कथन अन समझका है, क्योंकि सूत्रोंमें अन्न-जल आदि चार प्रकारका आहार साधुको खानेके लिये संग्रह करके रात्रिको रखने की मनाई है परंतु विष्टा-पैशाबकी अशुचि से शरीर को शुचि करने के लिये जल रखनेकी मनाई किसी सूत्रमें नहींहै परंतु खास ढूंढियोंके छपवाये "निशीथ" सूत्रके चौथे उद्देशके पृष्ठ १४७-१४८ में ऐसा पाठहै;—

"जे भिक्खू उच्चार पासवणं परिठ्ठवित्ता णायमई, णायमंतं वा साइज्जई ॥ १६३ ॥ जे भिक्खू उच्चार पासवणं परिठ्ठवित्ता तत्थेव आय मंति, आयमंतं वा साइज्जई ॥ १४६ ॥ जे भिक्खू उच्चार पासवणं परिठ्ठवित्ता अइदूरे आयमइ, अइदूरे आयमंतं वा साइज्जई ॥ १६५ ॥"

अर्थः— "जो साधु-साध्वी वडीनीत लघुनीत परिठाये बाद शुचि नहीं करे, शुची नहीं करतेको अच्छा जाने (अशुचि रहनेसे असज्झाई होवे तथा प्रवचनकी हीलना होवे आदि दोषोत्पन्न होवे) ॥ १६३ ॥ जो साधु साध्वी जिस स्थान लघुनीत बड़ीनीत परिठाई होवे उस स्थान शुचि करे आचीर्ण लेवे, लेते को अच्छा जाने (अर्थात्-जरा ईधर उधर सरककर शुचि करनेसे समूर्च्छिमकी वृद्धि नहीं होवे तथा हाथ वस्त्रादिभी भरावे नहीं) ॥ १६४ ॥ जो साधु-साध्वी वडीनीत लघुनीत परिठाकर बहुत दूर जाकर शुचि करें, शुचि करते को अच्छा जाने ॥ १६५ ॥" तो प्रायश्चित्त आवे।

४८. ऊपरके सूत्रपाठमें व अर्थमें लघुनीत पैशाब और बडी नीत (ठले-जंगल) जाकर उस स्थान की शुचि न करने वालेको दोष बत लायाहै तथा उसी जगह शुचि करनेसे विष्टाके उपर जल गिरनेसे न सूखनेपर बहुत जीवोंकी उत्पत्ति होनेका दोष कहाहै और उस

जगहसे बहुत दूर जाकर शुचि करनेसे गुदाके उपर विष्टा लेपकी तरह फैल जावे, जिससे बहुत जलकी जरूरत पडे अथवा लोगोंको शंका पडजावे कि यह साधु-साध्वी जंगल जाकर शुचि नहीं करते अशुचि रहतेहैं इत्यादि दोष आतेहैं जिससे उस जगहसे उठकर दूर जाकर शुचि करनेकीभी मानाई की; व थोडासा हटकर शुचिकरनेका बतलाया, इस लिये शरीर की शुचिके लिये दिनमेंभी जल रखना पडता है। अब विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये कि जब दिनके लियेभी ऐसी मर्यादाहै तब यदि रात्रिमेंभी शरीरकी शुचिके लिये जल न रखे तो जंगल जाने पर शुचि नहीं कर सकते और शुचि न करें, अशुचि रहें तो सूत्रमें उसका दोष बतलाया है तथा प्रत्यक्ष व्यवहार विरुद्धहै इसलिये ऊपरके मूल सूत्रपाठकी आज्ञा मुजब शरीर शुचिके लिये रात्रिमें जल रखनेमें कोई दोष नहींहै।

४९. यदि ढूंढिये कहें कि पहिलेके साधु शरीर शुचिके लिये रात्रिमें जल नहीं रखतेथे इसलिये अबभी रखना उचित नहींहै, यहभी अनसमझकी बातहै क्योंकि पहिलेके साधु जंगलमें रहनेवाले निर्भय, निर्ममत्वी, तपस्वी, ध्यानी होतेथे, २-४ रोजमें या महीना पन्दरह रोजमें वा जब तपस्याका पारणा होता तब तीसरे प्रहर सिर्फ एकबार गांवमें आहारके लिये आतेथे और धर्म साधनका हेतुभूत शरीरको थोडासा भाडा देने रूप अल्प आहार लेकर पीछे वन-पर्वत आदि जंगलमें चले जाते, तप और ध्यानसे उनकी जठराग्नि बहुत तीव्र होने से आहारके पुद्गल जल्दी पाचन होकर उसका बहुतसा भाग रोम व श्वासोश्वास द्वारा उड जाताथा, और आसन व योग क्रियासे उनके शरीरका वायु शुद्ध रहता उससे ऊंट बकरीकी मीगणी (लींडी)की तरह या बन्दुककी गोलीकी तरह उन महात्माओंका निर्लेप निहार कभी २ बहुत दिनोंमें होताथा, सोभी प्रथम प्रहरमें स्वाध्याय करते, दूसरे प्रहरमें ध्यान करते और जब तीसरे प्रहरमें आहार—पानी करते तब जंगल व पैशाबके कार्यसे भी निपटकर शुचि होकरके पीछे फिरभी स्वाध्याय ध्यानादि धर्मकार्योंमें, कायोत्सर्गमें लग जाते, जिससे रात्रिमें जंगल पैशाबका कभी काम नहीं पडता, जिससे ऐसे तपस्वी साधुओंको रात्रिको जल रखनेकी कुछभी जरूरत नहींथी। इसी तरहसे यदि ढूंढिये साधुभी जंगलमें रहने वाले वैसेही तपस्वी, निर्भय, निर्ममत्वी, आसन व ध्यान करने वाले, अल्प

आहारमें संतोष रखने वाले और जंगलमें हमेशा खडे रहने वाले होवें तो ढूंढिये साधुओंकोभी रात्रिमें जल रखनेकी कोई जरूरत नहीं परन्तु शहरमें गृहस्थोंके पासमें नजदीक रहकर स्वादके लोभसे दिन भरमें २-३ वार अच्छे २ पक्वान और दूध-दही-घृत-क्षीर-बडे-पकोडी-रायता आदि गरीष्ठ पदार्थ अधिक खाकर १०-५ वार खूब गहरा जल पीते हुए शरीरको पुष्ट करतेहैं उससे मंदाग्नि होकर बुढ्ढी भैंसकी तरह गुदा द्वार सब भरजावे वैसे लेप वाली पतली दस्त होतीहै और कभी अकस्मात रात्रिकोभी दस्त लगजातीहै तथा शीतकालमें ५—७ वार रात्रिमें पेशाब करना पडताहै, ऐसी दशामें ढूंढिये साधु अपने शरीरकी शुचिकेलिये रात्रिको जल नहींरखते, फिर पहिलेके तपस्वी साधुओंका दृष्टान्त बतलाकर अपनी अनुचित बातको पुष्ट करके निर्दोष बनतेहैं, यह कैसी भारी अज्ञानताहै। जब पहिलेके साधुओंकी तरह चलनेका दृष्टान्त बतलातेहैं तब तो उसी मुजब आचरणभी अंगीकार करने चाहियें। जिस प्रकार रांक आदमी अपने पूर्वजोंके राजऋद्धिका अभिमान करे तो उससे उसका पेट नहीं भर सकता. उसी प्रकार पहिलेके तपस्वी साधुओंका दृष्टान्त बतलाकर अभी रोजीना २—३ वार खाने वाले उन महात्माओंकी बराबरी कभी नहीं कर सकते, इसलिये पहिलेके साधुओंकी तरह रात्रिको जल न रखनेका मानलेना, हठ करना बडी भारी भूलहै।

५०. ढूंढिये कहतेहैं कि रात्रिमें जल रखनेसे कभी गर्मीके दिनोंमें तृषा लगनेपर साधु पी लेवे, इसलिये रखना योग्य नहींहै, यहभी अनसमझकी बातहै क्योंकि देखो जिसप्रकार गर्मीके दिनोंमें विहार करके दूसरे गाव जाने वाले साधुओंको बहुत तृषा लगी होवे रास्तामें नदी तलाब आदिमें जल देखनेमें आवे तोभी साधु अपना व्रत भंङ्गकरके कच्चा जल कभी नहीं पीता. उसी तरह निर्दोष आहार व प्रतिक्रमण आदि क्रिया करके भावसे शुद्ध चारित्र पालन करनेवाला साधु प्राण जावें तोभी अपना व्रत रखनेके लिये रात्रिको जल कभी नहीं पीता। दूसरी बात यहभी है कि रात्रिके जलमें चूना डालकर छाछकी आछकी तरह जलको सफेद कर दिया जाताहै, जिससे जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती और चूनेका खाराजल पीनेसे जबान, कंठ, कलेजा फट जाताहै इसलिये ऐसा जल कोईभी नहीं पी सकता।

५१. ढूंढिये कहतेहैं कि किसी साधुको रात्रिमें कभी उल्टी (वमन) होजावे तो जलसे मुखकी शुद्धिकर ले, इसलिये रात्रिको जल र-

खना योग्य नहींहै, यहभी अनसमझकी बातहै. क्योंकि जिसप्रकार दिन में किसी ढूंढियेसाधुके चौविहार उपवासमें कभी उल्टीहोजावे तो १०-५ बार थूंक थूंक कर मुंह साफ कर लेताहै परन्तु मुंहमें जल नहीं डालता. उसी प्रकार साधुको रात्रिमें मुंहमें जल डालनेका त्याग होताहै उससे मुंहमें जल नहीं डालता और १०—५ बार थूंकक्र मुंह साफ कर लेताहै, इसलिये रात्रिमें उल्टीके समय मुंहमें जल डाले विनाभी काम चल सकताहै और फजरमें जलसे मुंहकी शुद्धि होसकतीहै, परन्तु रात्रिमें दस्त लगनेपर विष्टासे गुदा भर जातीहै। देखो जैसे २ मुंहमेंसे थूंकोगे, वैसे २ मुंह साफ होता चला जावेगा परन्तु दस्त तो जैसे २ पेटमेंसे निकलेगी वैसे २ गुदा खराब होती चली जावेगी जिससे वमनकी तरह दस्तमें जल बिना काम नहीं चल सकता इसलिये शरीरकी शुचि के लिये रात्रिमें जल रखनेकी खास जरूरत पडतीहै।

५२. काठीयावाड, दक्षिण वगैरह देशोंमें फिरने वाले कोई २ ढूंढिये साधु रात्रिमें जल रखने लगगयेहैं और अन्य सब ढूंढियोंकोभी रखनेके लिये शास्त्र प्रमाण व युक्ति पूर्वक आग्रह करतेहैं। ढूंढिये साधु रीखजी 'रीखरामजी' का बनाया हुआ "सत्यार्थसागर" पुस्तकके पृष्ठ ४३८ से ४४० तकका लेख नीचे मुजबहैः—

"प्रश्नः—साधु-साध्वी लघुनीत, वडीनीत होकर शुचि न करे तो प्रायश्चित होय के नहीं?

उत्तरः—प्रायश्चित होय 'निशीथसूत्र' के चौथे उदेशेमें कह्याहै यत पाठः- (जे भिखु उच्चार पासवणं परिठवित्ता णायमई, णयमंतं वा साइज्जई ॥) अर्थः—जो कोई साधु-साध्वी दिशा मात्रा फिरकर पाणीसे शुचि न करे तो प्रायश्चित होय. तो साधु-साध्वी रोगादि कारण विशेष जानकर शरीर शुचिके वास्ते रात्रिको राख मिलाकर पाणी शरीर शुचि के वास्ते राखे तो कोई साधुका महाव्रत नहीं जाताहै, क्योंकि वडीनीत-लघुनीतकी दुर्गंधि जहांतक होगी, तहांतक सूत्र पढना मनाईहै और प्रभात कालका प्रतिक्रमण कैसे करे और व्याख्यान सूत्रका कैसे करे, जो शुचिशरीर न होय तो असिज्झाई रहे, जब असिज्झाई सूत्रमें टालनी कहीहै. तथा कोई ऐसा कहे सूत्रमें पाणी कहां रात्रिको रखना लिखा नहीं परन्तु सूत्रोंमें कारण विशेष तो जगह जगह लिखेहैं, तो यह

कारण रोगादि तथा शरीर शक्ति हीण हो तो क्या करे, लाचारीकी बातहै तो कारणे 'बृहत्कल्प' सूत्रमें पंचमाध्ययनमें ऐसा कथनहै (नो कप्पई निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा परिया सियाए भोयण जाय जाव तप्पप्पाणमेतं वा बिंदुपमाणमेतं वा भूईपमाणमेतं वा आहार माहारितए वा णणत्थ गाढेहिं रोगायंकेहिं) इसका अर्थः— इसी पाठके शब्दोंसे जानलेना अथवा बृहत्कल्पसूत्रके टबेसे समझ लेना. इसतहर गाढे रोगादि कारणे सूत्रमें निषेध नहीं और कारणे साधु वृद्ध अवस्थामें एक नगरमें रहे १, कारणे चौमासो उतर्या पीछे उसी नगरमें साधु रहे २, कारणे औषध साधु लेवे ३, कारणे साधु वहती हुई साध्वीको जलमेंसे निकाले ४, कारणे साधु चौमासामें विहार करे ५, कारणे साधु नदी उतरे ६, कारणे साधु रोग तथा शक्तिहीण और संत्थारामें लोच नहीं करे ७, कारणे साधु आहार लेवें ८, कारणे साधु न लेवे ९, कारणे साधु खाडामें पडतां वृक्षकी डाल अथवा शाख पकडके निकले १०, कारणे साधु लब्धि फोरवे ११, कारणे साधु जोतिष प्रकाशे १२, कारणे साधु वैक्रिय लब्धि करे १३, कारणे साधु एक मासकल्प उपर गांममें रहे १४, रोगादि कारणे साधु गृहस्थीके घर बैठे १५ इत्यादिक कारणे साधुको और भी बहुत कार्य करने पडतेहैं. वैसेही शरीरकी शुचिवास्ते कारणे पाणी रात्रिको साधु-साध्वी राखे तो महाव्रतमें दोषनहीं लगताहै. पाणी नहीं राखो तो निशीथ सूत्रमें दोष लिखाहै इसवास्तेही श्रीप्रवचन सत्रोद्धार ग्रंथमें रात्रिको पाणी शुचिके लिये रखना लिखाहै ॥ इति ॥"

५३. औरभी कनीरामजी कृत "जैनधर्म ज्ञान प्रदीप" पुस्तक भाग १, नाना दादाजी गुडने पुनामें छपवाकर प्रकट कियाहै उसके पृष्ट १५२-१५३ में चौदह स्थानककी सज्झायमें नीचे मुजब लेखहैः—

"चवदे थांनकरा जीवए, ज्यांमें दुःख कह्या अतीवए, तिणरोए, तिणरो विवरो हिवे सांभलोए ॥ १ ॥ बडीनीत उच्चारए, पासवण एम विचारए, बे घडीए, बे घडी पछे जीव उपजेए ॥ २ ॥ आलस भय कर रातरोए, भेलोकर राखे मातरोए, इण वातरोए, निरणय हिवे तुमे सांभलोए ॥ ३ ॥ कस कस दाणा एवडाए, जंबूद्वीप जेवडाए, जेवडाए, असनीया मुवा घणाए ॥ ४ ॥ " इत्यादि

५४. ऊपरके लेखोंसे रात्रिमें जल रखने संबंधी विशेष खुलासा पाठकगण स्वयं करलेवें, मेरे अधिक लिखनेकी जरूरत नहींहै. परंतु इतनी

बात अवश्य कहूंगा कि इन लोगों का रात्रिमें जल नहीं रखना यह जिस तरह अनुचितहै, उसी तरह रखनाभी बुराहै क्योंकि वर्तमानिक इनका धोवण प्रायः जीवाकुल होताहै, उसमें राखोडी डालनेसे उन जीवोंकी हानि होतीहै और रात्रिमें अन्य जीव फिर उत्पन्न होजातेहैं, हां त्रिफलों का जल, या गरम जलमें शामको चुना आदि तेज वस्तु डालकर रखना चाहें तो रख सकतेहैं उसमें रात्रिमें जीव उत्पन्न नहीं होसकते।

५५. ढूंढिये कहतेहैं कि एक एक साधुके लिये रात्रिमें कितना कितना जल रखना चाहिये, इसका कोई वजन प्रमाण सूत्रमें नहींहै इसलिये रखना योग्य नहींहै. यहभी अनसमझकी बातहै, क्योंकि देखो जिसप्रकार दिनभरमें साधुको कितने घूंट या कितनी वार जल पीना, इस बातका वजन प्रमाण सूत्रमें नहींहै तो फिर रात्रिमें जलरखनेका वजनका प्रमाण मांगना कितनी भारी भूलहै. तात्पर्य यहहै कि साधुको जितने जलसे अपनी तृषा शांत होजावे और शांतिसे धर्मसाधन हो सके, उतना जलपीना चाहिये. बस यही सूत्रकी आज्ञा है। इसी तरहसे जितने जलसे व्यवहार दृष्टिसे बाह्य शुचि होसके उतना जल रात्रिमें उपयोग पूर्वक यत्नासे रखनेकी ऊपरमें बतलाये हुए पाठके अनुसार निशिथसूत्रकी आज्ञा समझ लेनाचाहिये. इसलिये ऐसी २ कुयुक्तियों से अनुचित बातका आग्रह करके शासनकी अवज्ञाका हेतु करना उचित नहींहै।

५६. ढूंढिये कहतेहैं कि रात्रिमें जल रखने परभी कभी भूलसे अकस्मात ढुलजावे या थोडा जल होवे और दस्त बहुत लगें तो क्या करना चाहिये? ढूंढियोंके इस कथनका आशय ऐसाहै कि जल ढुलनेपर या बहुत दस्त लगने से अशुचि रहना पड़ताहै यहभी ढूंढियोंकी अनसमझकी बातहै क्योंकि देखो हजारों ढूंढिये साधु-साध्वी और संवेगी साधु-साध्वी हमेशा रोजीना आहार पानी लातेहैं परंतु सब ढुलकर सब पात्रे खाली होगये वैसा आजतक देखनेमें और सुननेमें कभी नहीं आया हां इतनी बात जरूरहै कि कभी भूलसे कोई वस्तु ढुल जावे तो कुछ ढुलतीहै और कुछ बाकी रहतीभीहै, यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै और जिसप्रकार दिनमें जितने आहार पानीकी साधुको जरूरत हो उतना ले आताहै, उसी प्रकार यदि रोगादि कारण से बहुत दस्त लगनेकी संभावना हो तो रात्रिके लिये अधिक जल रखलेताहै, इसलिये ढुलजाने

का या बहुत दस्तहोनेका बहाना बतलाकर हमेशा सर्वथा जल नहीं रखनेका या अशुचि रहनेका ठहराना बड़ी अज्ञानता है।

५७. फिरभी देखिये— ढूंढियोंमें किसी श्रावक या श्राविकाने दीक्षा ली होवे परंतु कर्मगतिसे साधुपनेसे पीछे भ्रष्ट हो जावें उनको देखकर कोईभी दूसरे दीक्षा न लें, यह नहीं होसकता तथा किसी गृहस्थने द्रव्यप्राप्तिकी इच्छासे व्यापार किया परंतु अकस्मात घाटा लग गया तो उसको देखकर सबलोग व्यापार करना नहीं छोड सकते. इसी तरहसे कभी अकस्मात किसी साधुके सब जल ढुल जानेका किसी तरहसे मान लिया जावे तोभी उसको देखकर सब ढूंढिये साधु हमेशा रात्रिको कभी जल न रखें और दस्त लगनेपर जान बुझकर अशुचि रहें यह कितनी भारी अज्ञानताहै तथा यह बात सबके अनुभव कीहै कि रोगादि कारणसे किसी साधुको बहुत दस्त होजावे, वस्त्र या शरीर भरजावे, उठनेकी शक्ति न होवे तो दूसरे साधु उसके वस्त्र व शरीरकी शुचिकी व्यवस्था करतेहैं। इसी तरह ढूंढिये साधुओंको रात्रिमें दस्त होने पर उनकी शुचिके लिये फजरमें जल लाकर शुचि-करवानेकी दूसरे साधु व्यवस्था नहीं करते इसलिये बहुत दस्त होने का बहाना बतलाकर रात्रिको सर्वथा जल नहीं रखनेका ठहराना अनुचितहै।

५८. ढूंढिये कहतेहैं कि "ठाणांग" सूत्रके पांचवें ठाणेके ३ उद्देशमें पांच प्रकारकी शुचि लिखीहै उस मुजब हमको जब रात्रिमें दस्तलगें तब शुचि करलेतेहैं, यहभी कपट क्रियाहै क्योंकि वहांपर मट्टी, जल, अग्नि व मंत्रसे चार प्रकार की बाह्य और ब्रह्मचर्यसे पांचवी अंतर शुचि कहीहै। अब विचार करना चाहिये कि अग्नि, मंत्र व ब्रह्मचर्यसे दस्त होने पर गुदा की शुचि नहीं होती यह प्रसिद्ध बात है तथा जो मट्टीसे शुचि करनेका लिखाहै सोभी गृहस्थलोग वर्तनोंको मांजकर साफ करतेहैं व दुर्गंधकी जगह रगड़तेहैं इस अपेक्षासे व्यवहारकी बात बतलायीहै इससे दस्त होने पर अकेली मट्टीसे गुदाकी शुचि नहीं होसकती. देखो मारवाड़ आदिमें बालकलोग खेलनेके लिये बाहर जाते हैं वहांपर जंगल होकर धूलमें गांड घिसणी करतेहैं उससे पूरी सफाई नहीं होती जिससे फिर घरमें आकर जलसे धोतेहैं परंतु साधु को वैसा करना योग्यनहीं है और ढूंढिये साधु रात्रिमें जल रखते नहीं

इसलिये रात्रिमें जलसे भी शुचि नहीं करते, जिसपरभी ठाणांग सूत्रके नामसे शुचि करनेका ठहराना यहतो प्रत्यक्षही भोले जीवोंको बहकाकर अपनी भूलका बचाव करनेकी प्रपंच बाजीहै।

५९. ढूंढिये कहते हैं कि बृहत्कल्प सूत्र में और व्यवहार सूत्रमें मूत्र लेनेका लिखाहै, इसलिये हमभी कभी काम पडजावे तो उससे अपना काम कर लेतेहैं यहभी बडी भूलहै. क्योंकि देखो जिसतरह किसी एक ब्राह्मण—बनियेको मरणांत कष्टवाले बडेभारी रोगके महान्कारण विशेषसे किसी तर्क बुद्धिवाले अनुभवी वैद्यने किसी तरहकी कोई अपवित्र वस्तुकी दवाई देकर उस समय उसका जीव बचालिया तो उसकी देखादेखी निरोग अवस्थामें वह ब्राह्मण, बनीया या उनकी सर्व जातवाले उस अपवित्र वस्तुको हमेशाके लिये अपने काममें कभी नहीं लासकते तथा यह बाततो अभी प्रसिद्धहीहै कि कई डाक्टर सर्प काटने वगैरहके जहर उतारनेके लिये रोगीको दवाई रूपमें मूत्र पीलातेहैं परंतु उनकी तरह सर्व मनुष्य मूत्र पीनेवाले नहीं बन सकते और उससे मूत्रको पवित्रभी कभी नहीं मान सकते। इसी तरहसे सर्प आदिके काटने के जहर वगैरह मरणांत कष्टवाले महान् कारण विशेष से साधुका जीव बचानेके लिये वैद्यकी सलाहसे दवाई रूपमें मूत्र लेने का काम पडे तो ले सकतेहैं इसलिये बृहत्कल्प सूत्रमें ऐसे गाढे कारण से लिखाहै जिसपर भी कितनेहीं ढूंढिये व तेरहापंथी लोग इस बात का भावार्थ समझे बिना निरोग अवस्थामें रात्रिको शरीर शुचिके लिये जल न रखकर मूत्रको शुद्ध समझकर दस्त लगनेपर मूत्रसे व्यवहार करतेहैं यही उनकी बड़ी अनसमझकी निर्विवेकताहै।

६० यदि कोई कहे कि हमारे भी कभी रात्रिमें अकस्मात् दस्त होने का महान् कारण होजावे तो मूत्रका उपयोग करलें तो उसमें कोई दोष नहींहै, यहभी बड़ी भूलहै क्योंकि दिनभरमें दो तीन बार खूब पेट भरके रोटी-शाक और मीष्टान वगैरह खाने वालेको रात्रिमें दस्त लगना यह महान्कारण नहीं किंतु स्वाभाविक नियमकी बातहै इसलिये ऐसे पेटभरने वाले ढूंढिये; तेरहापंथी साधु-साध्वियोंको रात्रिमें शरीर की शुचिकेलिये जल रखनेकी खास आवश्यकताहै जिसपरभी जान बुझकर रखते नहीं और कितनेक रात्रिमें दस्त होनेका महान्कारण मानकर मूत्रका व्यवहार करलेतेहैं यह सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्ध, जैनशास्त्र विरुद्ध

और जगतके व्यवहारकेभी प्रत्यक्ष विरुद्धहै. जैनशास्त्रों में मूत्रको किसी जगह पवित्र नहीं लिखा और शरीरकी शुचिके लिये लेनेकी आज्ञाभी नहीं लिखी इसलिये बृहत्कल्प आदि जैन शास्त्रोंके नामसे ऐसा अनुचित व निंदनीय व्यवहार किसीभी समझदार को करना योग्य नहींहै ।

६१. इसीतरहसे ढूंढिये व तेरहापंथी श्रावक-श्राविकाभी रात्रि के पौषध व्रतमें या दया पालन करने के रोज मीठाइयें खाकरके अपने गुरुओंकी तरह संवरमें रात्रिको जल नहीं रखते और कभी किसीके दस्तका कारण बनजावे तो अनुचित व्यवहार करलेतेहैं, यह धर्म नहीं है किंतु मलीन बुद्धिकी बडी अज्ञानतासे समाजकी निन्दारूप महान् अधर्म करतेहैं । ऐसे अधर्मको त्याग करनाही हितकारीहै ।

६२. आगरे वाले ढूंढियोंकी 'साधुमार्गी जैन उद्योनिती सभा' ने "साधु गुण परीक्षा" नामक छोटीसी किताबमें ढूंढिये साधुओंको रात्रिमें जल न रखनेकी पुष्टिके लिये पृष्ठ १९-२० में एक दृष्टांत लिखा है, वहभी पाठक गणको यहां बतलातेहैं :—

"एक ब्राह्मण एक जंगलमें जा रहाहै उसके पास इस समय शास्त्र मूर्त्ति और भोजनकी सामग्रीहै साथमें परिवारि जन नहींहैं उस को उसी समय शौचकी इच्छा हुई, परंतु जलका अभाव और आगेको नहीं चल सकता ऐसे समयमें उसका क्या कर्त्तव्य हो सकताहै ? केवल यही कि वह इस जंगलमें बैठ शौच निवृत्ति करले, शौच होकर, बताइये वह मूर्त्ति शास्त्र और भोजन सामग्रीको साथ ले जायगा या नहीं !, नहीं२ वह अपने मूर्त्ति और शास्त्रको नहीं छोड सकताहै । बस हमारे साधुओंकोभी वह रात्रि उस जंगल तादृशहीहै। वे यदि ऐसे समय वस्त्र या रेत अथवा किसी अन्य प्रकार शुद्धि कर लें तो उसमें कोई निन्दास्पद बात नहींहै" यह ढूंढियों का लिखना कितना भारी अनुचितहै ।

६३. देखो उपर मुजब कभी किसी ब्राह्मणको वैसा कारण बन जावे तो गांवमें गये बाद शुचि होकर पूजा-प्रतिष्ठा-दान-जप आदि करके उसका प्रायश्चित्त करले, इसी तरह ढुंढियोंको रात्रिमें दस्त लगने पर कोईभी ढूंढिया उसका प्रायश्चित्त नहीं लेता और उस प्रायश्चितकी विधिभी ढूंढियोंके शास्त्रोंमें नहींहै । तथा एक ब्राह्मणको ऐसा कारण

कभी बन जावे तो उसकी तरह सब ब्राह्मण समाज हमेशाही जलबिना शौच करनेका कभी स्वीकार नहीं कर सकता और अटवी, युद्ध, दुष्काल वगैरह आफत कालमें किसीने अपने प्राण बचाने के लिये मरेहुए मनुष्यका मांस खाकर व खून पीकर अपना जी बचालिया वा किसीने कुत्ते, कौवे आदिको खा लिये तो उनकी तरह सब लोग मनुष्योंको खानेवाले नहीं बन सकते, इसलिये ऐसा कल्पित एक ब्राह्मण का दृष्टांत बतला कर ढूंढिये सामाजके सर्व साधुओंको निसुग बना कर रात्रिमें जल रखने का हमेशाके लिये निषेध करना बड़ीभूलहै।

६४. फिरभी देखिये उपर के दृष्टांत में बतलाये मुजब ब्राह्मणको कभी एकबार ऐसा अनुचित काम पडजावे तो फिर जन्मभर ऐसे जंगलके रास्ते अपने साथमें जललिये बिना कभी न जावे परंतु सैकडों ढूंढिये साधु साध्वियों को रात्रिमें दस्त होनेका हजारों बार काम पड चुकाहै व पडताभी है जिसपरभी ऐसा दृष्टांत बतला कर रात्रिमें जल रखनेका निषेध करना यही बडी अनसमझहै और ऊपरके दृष्टांत मुजब ढूंढिये विना जल दस्तहोने पर अपना काम चलानेका मान्य करते हैं जिससे उस ब्राह्मणकी तरह जंगल जाकर कपडे से पूंछकर या बालकों की तरह रेतीमें गांड घिसणी करके जलसे शुचिकिये विनाही अपने धर्मशास्त्रोंको हाथमें लेनेका ऊपरके दृष्टांत मुजब ढूंढिये मान्य करतेहैं, इसी तरहसे कितनेक विहार करके दूसरे गांव जाते समय रास्तामें दस्तलग जावे तो वहांही जंगल जाकर जलसे शुचि किये विनाही पुस्तक आदिको हाथ लगालेतेहैं फिर गांवमें जाकर भक्त लोगोंको धर्मका उपदेश देने लगतेहैं और घर २ में आहार-पाणीके लिये फिरते हैं परंतु दस्तकी अशुचिकी जलसे शुचि करतेनहीं, यह कितनी भारी अनुचित प्रवृत्तिहै, ऐसे अनुचित व्यवहारका त्याग करनाही श्रेयकारीहै।

(रात्रिमें जल न रखनेमें २१ दोषोंकी प्राप्ति)

६५. देखो रात्रिमें जल न रखनेसे दस्त लगनेपर अशुचि रहती है १, कभी कोई अशुचिके भयसे दस्त को दबाकर रोक लेवे तो रोगकी उत्पत्ति होतीहै २, दस्तकी व्याकुलतासे फजर होनेकी राह देखतेहुए सूर्योदय होतेही गृहस्थोंके घरमें जलके लिये भगना पडताहै ३, कभी किसी अकेली स्त्रीके घरमेंसे साधुको सूर्योदय होतेही जल लेकर निकलता देखकर किसी को रात्रिमें वहां रहनेकी शंका पडजावे ४, ऐसा

देखकर कभी कोई साधुका उडाह करे उससे लोगोंके कर्म बंधे ५ दूसरे साधुओं परभी अप्रीति होवे ६, सूर्यका उदयहोनेके समय गृहस्थोंके घरोंमें बहु, बैन, बेटी आदि सोते पडे होंवे उस समय साधुको गृहस्थों के घरोंमें जानेकी मनाई है, तोभी दस्तकी हाजतसे जलके लिये लाचारी से ऐसे समय गृहस्थोंके घरोंमें फिरना पडताहै, ७, सूर्योदयके समय बहुत श्रावक-श्राविका सामायिक-प्रतिक्रमण आदि अपने २ नित्य कर्तव्यमें बैठे होवें, उस समय साधु घरमें आकर खाली जावे तो उन गृहस्थोंको देखो 'आज हमारे घरमें साधुजी आये परंतु जल मिला नहीं, खाली पीछे चलेगये' इत्यादि पश्चाताप करना पडताहै ८, सूर्योदय होतेही लोगोंने झाडु बुहारा भी निकाला न होवे, शुचि कर्ममें लगे होवें, गृहकार्य को हाथही लगाया नहीं होवे उस समय गृहस्थोंके घरों में जानेसे निर्दोष शुद्ध जल साधुको मिलना बडा मुश्किल होता है ९, चुल्हेपर रात्रिको रखाहुवा जल लेनेसे वह जल प्रायः कच्चा सचित्त जल होताहै उसका खुलासा पहिले लिख आयाहूं; इसलिये रात्रिवासी चुल्हेपरका कच्चा जल लेनेका दोष आताहै १०, कोई भक्त श्राविका आदि सूर्यउदय होने पहिले जल्दी से अंधेरेमें धोवण वगैरह करके रख छोडे वह जल लेनेसे साधुको आधाकर्मी और स्थापना दोष लगताहै ११, जोरसे दस्तकी हाजत होनेपर फजर में प्रतिक्रमण, प्रतिलेखनादि कार्य चित्तकी अशांतिसे शुद्ध नहींहोसकते १२, कभीप्रहर भर या थोडीसी रात्रि जानेपर दस्त लगजावे तो संपूर्ण रात्रितक विष्ठा लिप्त शरीर रहताहै, वस्त्र खराब होतेहैं बडी विडंबना होतीहै १३, कभी वर्षा चौमासेमें सूर्यउदय होतेही वर्षा शुरू होजावे तब गृहस्थोंके घरमें जलके लिये जाना कल्पे नहीं उधर दस्तकी जोरसे हाजत होवे तो बडी तकलीफ भोगनी पडतीहै १४, कभी वर्षाकालमें रात्रिको दस्तलग जावे सूर्योदय होतेही वर्षा वर्षने लगे, या १-२ रोजकी झरी लगजावे उस समय फजरमें गृहस्थोंके घर जाकर जल लाकर शुचि कर सकते नहीं और अशुचि रहनेसे प्रतिक्रमण-स्वाध्याय करना सूत्र के पानोंको छूना, हाथमें लेने, व्याख्यान बांचना, गृहस्थोंको व्रतपच्चाक्खान करवाने वगैरहमें शास्त्रपाठका उच्चारण करना कल्पे नहीं १५ जिसपरभी यदि अशुचि शरीर होनेपरभी सूत्र वाक्य उच्चारण करे तो ज्ञानावर्णीय कर्म बांधे १६, और "पन्नवणा" सूत्रके प्रथमपदके पाठके अनुसार तथा १४

स्थानकको ऊपरमें बतलायी हुई सज्झायकी गाथाओंके अनुसार यदि कोई रात्रिमें आलस्य, भय या दस्तकी शुचिके लिये मात्राको इकट्ठा करके रक्खे तो उससे असंख्य संमूर्च्छिम पंचेंद्रीय मनुष्योंकी घात होनेका दोष लगे ॥१७॥

यदि कोई कहेगा कि रात्रिमें दस्त लगनेपर पत्थरके टुकडेसे या कपडेके टुकडेसे पूंछकर साफ कर लेवे तो अशुचि न रहेगी, यहभी अनुचितहै क्योंकि पत्थरके टुकडेसे कृमी आदिजीवोंकी हानिहोवे, कभी अंधेरेमें हाथ भरजावे, गुदाभी पूरी २ साफ नहींहोती, विष्टालगी रहती है तथा पत्थरका टुकडा, काष्टका टुकडा, वांसकी शलाका आदि रात्रिके समय अंधेरेमें लेनेसे त्रस-स्थावर जीवोंकी हानिहोवे और कभी सर्प, विच्छु वगैरह जहरी जीव काट खावें तो संयम विराधना व आत्म विराधना होजावे इत्यादि अनेक दोष आतेहैं इसलिये पत्थर काष्ठादिसे पूंछकर साफ करना सर्वथा सूत्र विरुद्ध और लोक विरुद्ध भी है ॥ १८ ॥

यदि कोई कहेगा कि हमलोग अल्प आहार करेंगे और शाम सवेर दोनों बार जंगल जाया करेंगे, उससे हमको रात्रिमें जंगल जानेकी व जल रखनेकी जरुरत नहीं पडेगी, यहभी अनसमजकी बातहै, क्योंकि हमेशा अल्प आहार करके संतोष रखने वाले सैकडे १-२ साधु साध्वी निकलेंगे किंतु सब अल्प आहार करनेवाले नहींहैं, खूब गहरा पेट भरने वाले बहुतहैं। तथा शामको जंगलजानेकी आदत रखने वालोंको प्रतिलेखना करनेमें, गौचरी जानेमें, आहार करनेमें, पढने-गुणनेमें, स्वाध्याय-ध्यानादि धर्मकार्य करनेमें बाधा आतीहै, अंतराय पडतीहै, जिससे यह रीतिभी सर्वथा अनुचितहै। और वर्षा काल में शाम-सवेर दोनों बार नियम पूर्वक जंगल जानेका नहीं बन सकता, कभी वर्षाके कारणसे शामको जंगल नहीं जासके तो उसको रात्रिमें जंगल जानेकी बाधा अवश्य होगी, इसलिये हमेशाके लिये सर्व साधु-साध्वियोंको रात्रिमें जल रखनेका निषेध करना व नहीं रखनेका हठ करना यह प्रत्यक्षही बडीभूल है ॥ १९ ॥

रात्रिमें सब साधु-साध्वियोंको बहुत बार पैशाब करना पडताहै, निशीथसूत्रके ऊपरमें बतलाये हुए पाठमें जंगल व पैशाब दोनोंकी शुचि करनेका लिखाहै, रात्रिमें जल नहीं रखनेवाले पैशाबकी शुचि नहीं करसकते, जान बुझकर हमेशा पैशाबकी अशुचि रखतेहैं. और पहीरनेके

वस्त्रमें पैशाबके छांटे लगकर वस्त्र गीला रहने परभी 'सूत्र' पढतेहैं यह सब कार्य सूत्र विरुद्ध होनेसे प्रत्यक्ष दोष लगताहै और ज्ञानावर्णीय बड़ेभारी कर्म बंधनहोतेहैं ॥ २० ॥

यदि कोई कहेगा कि पैशावसे गुदा धोकर शुचि कर लेगें तो फिर अशुचि न रहेगी, यहभी सर्वथा अनुचितहै क्योंकि विष्टाकी तरह पैशाबभी अशुचिहै जिससे निशीथ सूत्रमें जलसे पैशाबकी शुचि करनेका लिखाहै इसलिये पैशाबसे गुदाकी शुचि करने वाले या शुचि करनेका मानने वाले सब दोषके भागी हो कर प्रत्यक्ष अशुचि रहतेहै और समाजकी अवज्ञा करवाने रूप जिनाज्ञाकी विराधना करते हुए लोगोंके व निजके मिथ्यात्वका हेतु भूत दुर्लभ बोधिका कारण बनतेहैं ॥ २१ ॥ इत्यादि अनेक दोषोंसे छुटनेका सरल उपाय तो यहीहै कि खूब तपस्या करो और तपस्याके पारणेमें भी सिर्फ दिनभरमें एकवार लूखा सूखा थोडा आहार व थोडा जल पीकर संतोष रखलो, उससे जटरा अग्नि बहुत तीव्र रहेगी, मंदाग्निका कोई रोग न होगा, तथा शामतक १-२ वार पैशाबभी हो जावेगा, दिनमेंही जंगल जाकर सब निपटलो और रात्रिमें ध्यानमें खडे रहो, उससे रात्रिभर जंगल व पैशाब कुछभी न आवेगा, जिससे रात्रिमें जल रखनेकी भी जरुरत न रहेगी, परंतु स्वादके लिये, पुष्टिके लिये दिनभरमें २-३ वार माल मसाले मीठाई आदि खावोगे; ५-१० वार खूब जल पीवोगे फिर रात्रिमें जल रखनेका, इनकार करोगे यह कभी नहीं बन सकता, इस बातको विशेष तत्त्वज्ञ पाठक गण आपही विचार सकतेहैं ।

(झूठे हठको छोड़ो व्यर्थ निंदा मत करावो)

६६. प्रिय पाठकगण ढूंढिये व तेरहापंथी साधु रात्रिमें जल नहीं रखते फजरमें सूर्यका उदय होतेही जंगलके लिये जातेहैं तब यद्यापि कभी जल लेकर जाते होवें तोभी लोगोंमें शंकास्पद ऐसी वात फैली हुईहै कि सायत् पैशाब लेकर जाते होंगे या लोक दिखाउ खाली पात्र को ढककर ले जाते होंगे और वहांपर कदाचित पैशाबसे शुचिकरते होंगे ऐसी अफवाह फैली हुई होनेसे मुसलमान वगैरह कभी कोई ढूंढिया वा तेरहापंथी साधु जंगल बैठा हो वहां पत्थर फैंकतेहैं, कोई गुप्तपने पहिले सेही दूरके झाडपर चढकर चेष्टा देखते रहतेहैं फिर पिछाडीसे निंदा करतेहैं और पंजाब, मारवाड़, मेवाड, दक्षिण, बराड देशमें अमरावती

वगैरह बहुतजगह रात्रिजल न रखने व पैशाबसे व्यवहारकरने बाबत विवाद चल चुकाहै, निंदास्पद लज्जनीय झगडा भी होचुकाहै, हेंडबिलें, विज्ञापनें, तथा किताबेंभी छपीहैं, विरोधभाव कलेशसे हजारों रुपिये भी खर्चे होचुके व होतेभीहैं, इत्यादि व्यर्थ निंदा-झगडा होकर लोगोंके कर्म बंधन होतेहैं, ढूंढिये व तेरहपंथी समाजकी हिलना, अवज्ञा व भ्रष्टताका आरोप वगैरह अनेक अनर्थ हुएहैं व होतेभीहैं इसलिये ढूंढिये व तेरहा-पंथी सर्व साधु-साध्वियोंको मेरा खास आग्रह पूर्वक यही कहनाहै कि रात्रिमें साधुको जल पीनेके लिये रखनेकी मनाईहै परंतु शरीरकी शुचिके लिये रखने की मनाई किसी सूत्रमें नहींहै इसलिये झूठे हठको त्याग करके रात्रिमें जल रखनेका शुरुकरके उपर मुजब अनेक अनर्थों की जडकोही उखाड डालना उचितहै।

---

६७. ढूंढिये लोग ऊपर मुजब अपने अनेक दोषोंको छुपानेके लिये प्रतिक्रमण सूत्रके नामसे संवेगियोंपर मूत पीनेका आरोप रखते हैं, यहभी प्रत्यक्ष झूठहै क्योंकि देखो-'प्रतिक्रमण' सूत्रमें पच्चक्खाण भाष्यकी इस प्रकार की गाथाहैं:—

"असणे मुग्गोयण सत्तु, मंड पय खज्ज रब्ब कंदाइ ॥ पाणे कंजिय जव कयर, कक्कडोदग सुराइ जलं ॥१४॥ खाइमे भत्तोस फलाइ, साइमे सुंठि जीर अजमाइं ॥ महु गुड तंबोलाइ, अणाहारे मोय निंबाई ॥१५॥ दारं ॥ ३ ॥"

६८. इन दो गाथाओंमें असनं, पानं, खाइमं, साइमं व अनाहार वस्तुओंका स्वरूप बतलायाहै, उसमें सर्व प्रकार के अनाज (धान्य) मीठाई, दूध, दही, घृत, तेल, मक्खण व 'कंदाइ' कहनेसे आलू, कांदे, सुरणकंद, गाजर, मूले, शकरकंद, इत्यादि इन से पेट भरताहै, क्षुधा शांत होती है, जिस से यह सब अशनमें गिनेहैं। नदी, तलाव, समुद्र व कांजीका जल, छाछकी आछ, यव-केर-द्राक्ष आदिका धोवण तथा मदिरा, ताडी वगैरह पीनेके काममें आतेहैं, जिससे पानी में गिनेहैं। आंब, केले. शीताफल आदि फल व द्राक्षादि मेवा, खांड, शकर, खजूर वगैरह अनाजसे थोडी क्षुधाशांत करनेवाले होनेसे खादिममें गिनेहैं। सुंठ, जीरा अजमान, पीपर, काली मीरच, पीपरामूल,. इलाइची, लौंग आदि मुखवासकी वस्तु स्वादिममें गिनीहैं। यह चार प्रकारकी सब वस्तु आहार में गिनने में आती हैं। और अनाहार में गौमूत्रादि पैशाव,

लींबके पत्ते-सली व आदि शब्दसे त्रिफला, कडु, किरायता, लींब गीलोयं, घमासो, कथेरमूल, केरडेके मूल, चित्रक, खेरसार, चंदन, चोपचीनी, रीगणी, रोहिणी, अफीम- संखीया आदि सब तरह के जहर, भस्मी (राख,) चुना, गुगल, अतिविष, पलिओ, कुआरपाठा, थोयर, आक, फटकडी इत्यादि यह सब अनाहार वस्तुओंके नाम बतलायेहैं।

६९. इसी प्रकार जैनतत्वादर्श, श्राद्धविधि, प्रकरणमाला आदि में आहार व अनाहार की वस्तुओं के बहुत भेद बतलायेहैं। आहार की वस्तु लोगों के खाने पीने में आती हैं और स्वाद रहित अनाहार की वस्तु कभी रोगादिमें काम आतीहैं। आहार करनेका त्याग करने वालों को कभी रोगादि कारण से अनाहार वस्तु लेनी पडेतो आहार त्याग रूप व्रत भंगका दोष नहीं आता। अब विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये कि ऊपरकी सब वस्तु साधु श्रावकके-खाने-पीनेके काममें कभी नहीं आती किन्तु जो वस्तु जिसके योग्य होवे वोही वस्तु ग्रहण कर सकेगा परंतु सब नहीं। जैसे जलके भेदोंमें समुद्रका जल व शराब (दारू) ताडी आदि का नाम बतलायाहै और साधु-श्रावक जलको सब कोई पीतेहैं, परन्तु समुद्रका खारा जल व दारू और ताडी कोईभी साधु-श्रावक कभी नहीं पीसकता, जिसपरभी कोई अनसमझ ऊपर के लेख में दारू व ताडी का नाम देखकर सब साधु श्रावकों को दारू पीने वाले मान ले तो उनकी बडी भारी अज्ञान दशाकी द्वेष बुद्धि व कुटिलता समझनी चाहिये। वैसेही अनाहार वस्तुमें राख, आक, पैशाब, थोयर, सब तरहके विष आदि के नाम बतलायेहैं, यहसब किसी भी साधु-श्रावकके रात्रिमें व दिनमें खाने पीने के काममें कभीनहीं आते यह प्रत्यक्ष अनुभव सिद्ध जग जाहिर बातहै। जिसपरभी ढूंढिये लोग प्रत्यक्ष द्वेष बुद्धिसे संवेगी साधुओंको पैशाब पीनेका झूठा कलंक लगातेहैं यह कितना भारी अधर्म है। देखो-जिसप्रकार राजा, बादशाह के राज्याभिषेक व विवाहशादी वगैरहके महोत्सवमें राजा बादशाहने मांस, मदिरा, मीठाई वगैरह सब तरहकी भोजनकी सामग्री तैयार करवाकर सब शहरके ब्राह्मण, बनिये, क्षत्रीय, मुसल्मान आदि सब जातियोंको जीमनेका आमंत्रण देकर जिमाये, ऐसा किसी जगह का सामान्य लेख देखकर बनीये-ब्राह्मण आदि सब जातिवालोंको मांस-मदिरा

खाने-पीनेवाले कभी नहीं ठहरा सकते, किंतु जैसा जिसके योग्य होवे वो वैसा भोजन करे, इसी तरह से अनाहार की वस्तुओंके सामान्य नाम देखकर 'जैसी जिसके लेने योग्य होवे वो वैसी वस्तु ले सकताहै' ऐसे स्पष्ट भावार्थको समझे विना द्वेषवुद्धिसे संवेगी साधुओं पर पैशाब पीनेका प्रत्यक्ष झूठा कलंक लगाना यही बडा भारी पाप है।

(ढूंढियोंका कपट और द्वेषवुद्धिका प्रत्यक्ष नमूना देखो)

७०. प्रिय! पाठक गण देखो ऊपर मुजब आहार पानी आदि आगे पीछेके संबंध वाली सब बातोंको प्रत्यक्ष कपट से छोडकर पैशाब की अधूरी बातका उल्टा भावार्थ लाकर भोले लोगोंको कैसे भ्रममें डालेहैं। आज तक किसीभी संवेगी साधुने रात में व दिनमें कभी पैशाब पीया नहीं और पीनेका किसी ग्रंथमें लिखा भी नहीं परंतु ढूंढिये लोग गुरुका मुर्दा जलाकर स्नान करते नहीं तथा हमेशा गरीष्ट वस्तु खाने वाले साधु-साध्वी और दयापालन करने के रोज माल उडाने वाले श्रावक-श्राविका अपने शरीरकी शुचिके लिये रात्रिमें जल रखते नहीं, रजस्वला, और सूतक की पूरी मर्यादा साचवते नहीं इत्यादि अनेक लोक विरुद्ध अनुचित कार्य करके ढूंढिये अपने सामाजकी बडी निंदा करवातेहैं, लोगोंके कर्म बंधनका हेतु करतेहैं जिससे संवेगी लोग ढूंढियों को समझाते हैं कि ऐसे अनुचित कार्य मत करो उसपर ढूंढिये लोग अपनी भूलोंको सुधारते नहीं और अपने दोषोंको छुपानेके लिये संवेगी साधुओंके ऊपर प्रत्यक्ष झूठा पैशाब पीनेका कलंक लगाकर जैन समाज का द्रोह करतेहैं, बडी निंदा करवातेहैं, राग द्वेष के झगडे फैलातेहैं, यह कितनी बडी द्वेष वुद्धि व प्रबल मिथ्यात्वहै इस बातका विशेष विचार पाठक गण स्वयं कर सकते हैं।

७१. फिरभी देखिये- किसी एक ब्राह्मणने अपने बनाये वैद्यक ग्रंथमें मूत्रके गुण लिखकर किसी रोगमें मूत्र लेनेका लिख दिया होवे तो उससे वह ब्राह्मण या उनकी वंश परंपरावाले मूत्र पीनेवाले कभी नहीं माने जा सकते, जिसपरभी उनको मूत्रपीनेका दोष लगाने वाला मिथ्याभाषी ठहरताहै। उसी प्रकार 'पच्चक्खाण भाष्य' में अनाहार वस्तु के स्वरूपमें गौमूत्रादि पैशाब को भी अनाहार में लिख दिया है, उससे ग्रंथ बनाने वाले या उनकी परंपरावाले साधु पैशाब पीने वाले कभी नहीं ठहर सकते जिसपरभी ढूंढिये लोग ऊपर मुजब अपने दोष छुपाने

के लिये द्वेष बुद्धि से संवेगी साधुओंको पेशाव पीनेका दोष लगातेहैं यह प्रत्यक्ष झूंठ बोलकर महान् पापके भागीहोतेहैं और सरकारी फोजदारीके कायदे मुजबभी ऐसा झूठा दोष लगाकर बदनामी करके मान हानि करने वाले सब ढूंढिये दंडके भागी ठहरतेहैं इसलिये किसीभी ढूंढियाको ऐसा झूठा आरोप लगाकर अनर्थ के भागी होना योग्य नहींहै।

[रजस्वला और सूतकका खुलासा]

७२. ढूंढिये व तेरहापंथियोंकी श्राविकाएँ रजस्वला (ऋतुप्राप्ति) के ३ दिनोंमें अपने कुटुंबके लिये रसोई बनातीहैं, दलना, पीसना, वस्त्रसीना, गउदोना वगैरह बहुत प्रकारके गृह कार्य करती हैं तथा उनकी साध्वियेंभी रजस्वला धर्ममें धर्मशास्त्रोंको हाथ लगाना, श्राविकाओंका संसर्ग करना, घर २ में गौचरी को फिरना, व्रत पच्चक्खाण व मंगलिक का शास्त्र पाठ उच्चारण करना इत्यादि किसी तरहका परहेज नहीं रखती यह सब प्रत्यक्ष अनुचित व्यवहारहै। [इसलिये रजस्वलामें पूरे ३ रोज (२४ प्रहर) तक ऊपर मुजब कार्य करने योग्य नहीं हैं]। उससे उत्तम कुलकी व उत्तम धर्मकी पुण्याई में हानि, बुद्धि-मतिकी मलीनता, भ्रष्टाचारका आरोप व लोगों में निंदा इत्यादि धार्मिक शास्त्रोंकी दृष्टिसे, व्यवहारिक दृष्टिसे, उत्तम कुलकी मर्यादाकी दृष्टिसे व शारीरिक दृष्टिसेभी अनेक तरहके नुकसान होते हैं इसलिये इस बातकी तीन रोजतक पूरी २ मर्यादा का पालन करना उचितहै।

७३. कितनेही कहतेहैं कि शरीर में किसी जगह गुंबड होकर खून निकलने लगे तो उसका परहेज नहीं रखा जाता, उसी तरह स्त्रीके रजस्वला में भी गुंबडेकी तरह खून निकलताहै, उसका भी परहेज रखना नहीं चाहिये. यहभी अनसमझकी बातहै क्योंकि गुंबडातो बाल वृद्ध सब मनुष्योंके होसकताहै बहुत लोगोंके कभीभी नहीं होता इस का कोई नियम नहींहै और रजस्वलातो उमर योग्य स्त्रियोंके महीने २ अवश्य होताहै तथा गुंबडे वालेकी किसी रोगी मनुष्यपर छाया पडेतो कुछभी नुकसान नहीं होता परंतु रजस्वला स्त्रीकी छाया यदि बडी-पापड आदि पर गिरजावे तो लावण लगकर खराब होजातेहैं और शीतला, मोतीझरा या आंखकी बीमारी वाले रोगी पर गिरजावे तो बडी हानि होतीहै दक्षिण वगैरह बहुत जगह रजस्वलाकी छायासे आंखों चलीगई, बिचारे जन्मभर दुःखी हुए यह हमने भी प्रत्यक्ष देखाहै

इसलिये ऐसे रोगोंमें गृहस्थलोग ढूंढियोंकी रजस्वला साध्वी आदि मलीन स्त्रियोंका परहेज रखनेके लिये अपने घरोंके दरवाजे बंध रखते हैं यह प्रसिद्ध ही है। और गूंबडेवाली अपनी स्त्री के साथ गृहस्थोंको काम-भोगका परहेज नहीं होता परंतु रजस्वला स्त्रीके साथ चाररोज तक काम भोगका सर्वथा परहेज होता है, जिसपर भी यदि कोई अज्ञान वश रजस्वलाके साथ काम-भोग करे तो उससे धर्म कर्म कुलमर्यादा, लक्ष्मी व संप शांति आदिकी हानि करने वाली दुष्ट संतती पैदा होती है। रजस्वला अशुद्ध स्त्रीके कर्तव्यों में अंगचेष्टामें व मनके विचार वगैरह में भी अनेक तरहका अंतर रहताहै। रजस्वलाके पालन करने योग्य नियम और शुद्धिकी मर्यादा का विधान धर्मशास्त्रोंमें, वैद्यक शास्त्रोंमें, तथा सर्व उत्तम जातिवाले पढेलिखे समझदार लोगोंमें प्रसिद्धहीहै इसलिये गूंबडेकी तरह रजस्वलाकी अशुद्धिका परहेज नहीं रखनेवाले ढूंढिये और तेरहापंथियोंकी बडीभूलहै।

७४. जिसप्रकार किसी स्त्रीको प्रतिक्रमण, स्तोत्रआदिका स्मरण करनेका हमेशा नियम होवे तो वह रजस्वलाके समय मनमें अपना नित्य कर्तव्य करे परंतु सूत्र का पाठ उच्चारण न करे जिसपरभी यदि कोई अनसमझ नवकार आदिका सूत्रपाठ उच्चारण करे तो ज्ञानावर्णीय कर्म बंधे। इसीतरह रजस्वलास्त्री अपने हाथसे साधुको आहार आदि भी न दे किंतु दूसरे किसीको बुलवाकर उनको उनके हाथसे दिलावे, आप भावना भावे। यदि ऐसी दशामें कोई भूलसेभी अपने हाथोंसे साधुको आहार आदि देवे तो उससे शुद्ध धर्म कार्यों में विघ्नभूत साधुकी बुद्धि खराब होने वगैरह अनेक अनर्थ होतेहैं, इसलिये ऐसा करना योग्य नहींहै।

७५. यदि कोई शंका करेगा कि पेटमें खून भरा हुआ है वही रजस्वलावस्थामें बाहर निकलताहै, उसमें कोई दोषनहींहै, यहभी अनसमझकी बातहै क्योंकि पेटमें विष्टा-पैशाब-हाड-मांस आदि भरे हुएहैं परंतु तेजस-कारमण शरीरके संयोगसे शरीरके अंदर होनेसे विकार भाव वाले नहींहोते उससे उनकी अशुद्धि नहीं मानी गई और शरीरके बाहर निकलनेपर हवाके स्पर्श से विकार भाववाले होतेहैं जिससे उनकी अशुद्धि मानी गईहै। उससे हाड, मांस, विष्टा, खून वगैरह जिस जगह पर गिरे हों उस जगह सूत्र पढना, स्वाध्याय करना,

व्याख्यान देना व प्रतिक्रमण आदिका उच्चारण करनेकी सूत्रोंमें मनाई कीहै। और ऐसी वस्तु पडी हो वहांपर कोईभी समझदार भोजन नहीं करते यह प्रसिद्ध बातहै इसलिये रजस्वलाकीभी अशुद्धि मानना योग्यहै।

---

७६. रजस्वलाकी तरह जन्म-मरण आदिके सूतकमेंभी नित्य नियमके कार्य श्रावक-श्राविकाओंको मौन होकर मनमेंही करने चाहियें परंतु धर्मशास्त्र, नवकरवाली, आनुपूर्वी या नवपद-चौवीशीके गट्टे-फोटो-यंत्र आदि धार्मिक वस्तुओंको छूना, हाथ लगाना योग्य नहींहै। और साधु-साध्वियोंको पुत्रके जन्ममें १० रोज, पुत्रीके जन्ममें ११ रोज, व मृत्यु होने वाले घरमें १२ रोजतक उनके घरका आहार-पानी नहीं लेना चाहिये। तथा प्रसूतवतीके लिये बनाये हुए लड्डु आदिभी लेना योग्य नहींहै।

७७. यदि कोई शंका करेगा कि रजस्वला व जन्म-मरणमें मुनिको दान देनेकी और शास्त्र पढनेकी मनाई करनेमें कुछ फायदा नहीं है, किंतु अंतराय पडती है, यह भी अनसमझ की बात है, क्योंके देखो जिस तरह अशुद्ध जगहमें, मलीन परिणामोंसे और शरीर की व वस्त्रकी अशुद्धिसे यदि उत्तम मंत्रका जाप किया जावे तो उससे कार्य सिद्धि कभी नहीं होती और अनेक तरहके विघ्न (अनर्थ) खडे होतेहैं। तथा शाम-सवेर-मध्यान-मध्यरात्रि, आसोज चैत्रकी असज्झाई, महामारी, चंद्र-सूर्यका ग्रहण, राजाकी मृत्यु, उत्पात, भूमिकंप, युद्ध, अकालवर्षा, गाज, बीज इत्यादि कारणोंमें सूत्रपढे, वाचना देवे तो बुद्धिकी मलीनता, विघ्नोंकी उत्पत्ति व ज्ञानावर्णीय कर्मोंका बंध और जिनाज्ञाकी विराधनासे संसार बढनेका बडा अनर्थ होताहै, इसलिये ऐसे कारणोंमें सूत्र पढनेकी मनाईकीहै, उससे अंतराय नहीं बंधता किंतु भगवान्‌की वाणीका बहुमान भक्ति पूर्वक विनय होताहै जिससे ज्ञानावर्णीय कर्मोंका नाश होकर शुद्ध ज्ञानकी प्राप्तिसे अनेक लाभ होतेहैं। उसी प्रकार रजस्वला व जन्म-मरणकी अशुद्धि में मोक्षकी प्राप्ति करने वाले अतीव उत्तम मंत्ररूप शास्त्र पाठोंका उच्चारण करनेसे परम उत्तम सर्वज्ञ भगवानकी वाणीकी अवज्ञा होतीहै, उससे अनेक दोषआतेहैं इस लिये रजस्वला व जन्म-मरणादिके सूतकमें नवकार आदि किसीभी सूत्र पाठका उच्चारण करना योग्य नहींहै। और पहिलेके शूरवीर मुनिमहाराज स्मसान भूमिमें मौनपने कायोत्सर्ग ध्यानमें खडे रहते परंतु

वहांपर सूत्रकी स्वाध्याय नहीं करते थे, इसीतरह से ढूंढिये-तेरहापंथियोंकोभी अशुद्ध जगहमें, शरीर की व वस्त्रकी अशुद्धिमें और रजस्वला तथा सूतकमें नित्य नियमके कार्यमें सूत्रपाठका उच्चारण करना नहीं चाहिये किंतु होट, जबान, दांत न हिलाते हुए मनमें मौनदशामें कार्य करने चाहियें।

७८. फिरभी देखिये- अशुद्ध कर्तव्य वाला, मलीन परिणाम वाला, अशुचि शरीर वाला मनुष्य अपने हाथोंसे खाने पीने की वस्तु दूसरोंको देगा तो उसको खाने-पीनेवालेके ऊपर उसकी मलीनता का प्रभाव अवश्य पडताहै, यह तत्त्व दृष्टिकी सूक्ष्म बातहै इसलिये समझदार लोग मलेच्छ व दुष्ट मनुष्यके हाथकी वस्तु नहीं खाते। इसी तरहसे रजस्वलाके हाथसे बनाई हुई रसोई या हाथोंसे दी हुई भोजनकी वस्तु उनके कुटुंब वालोंको और साधु- साध्वी आदि धर्मी जनोंको लेना व खाना पीना योग्य नहींहै। ऐसेही जन्म-मरणआदिके सूतककाभी परहेज रखना उचितहै। ढूंढिये व तेरहापंथी साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाओंको इन बातोंका पूरा २ ज्ञान नहींहै इसलिये रजस्वलाके व जन्म-मरण वगैरहके अशुद्धि सूतककी पूरी २ मर्यादाका पालन नहीं करते तथा इनके शास्त्रोंमें इनबातोंकी मर्यादाका विधि विधान का लेखभी नहींहै। तोभी मंदिरमार्गी श्रावक-श्राविकाओंकी देखा देखी लोक लज्जासे कोई २ थोडासा कुछ पालन करतेभीहैं परंतु पूरा तत्त्व नहीं समझते और पूरी २ मर्यादाका पालनभी नहीं करसकते इसलिये इनोंके समाजमें इन बातों की सर्वत्र प्रवृत्ति नहीं है इसीसे महेश्वरी, अग्रवाल, ब्राह्मण, श्रावगी आदि उत्तम जातिवाले लोग इनलोगोंकी मलीनता सम्बन्धी बडी निंदा करतेहुए बिचारे बहुत कर्म बंधन करतेहैं। अपने पिंडेको इनको हाथ लगाने छुने नहींदेते, यदि कोई भूलसे हाथ लगा दे तो कई लोग अपने पिंडे(मटके)को फोड डालतेहैं बडा झगडा होताहै, यहभी हमने कलकत्ता, अमरावती वगैरहमें प्रत्यक्ष देखाहै। और वे लोग ढूंढिये, तेरहापंथी साधुओंको अपने चौकेके पासभी नहीं आने देते, बडी अप्रीति करतेहैं, इसलिये ढूंढिये और तेरहापंथी साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाओंको खास उचितहै कि रात्रिजल, रजस्वला, सूतक वगैरह अपने समाजकी निन्दाके कारणोंको अपने २ समाजमें सब जगहसे जल्दीसे दूर करके व्यवहारकी शुद्धिसे समाजके ऊपर मलीनता के भ्रष्टताके लगेहुए कलंकको धोकर शुद्ध उज्वलताकी छाप जगतमें बैठावें और लोगोंके कर्म

बंधनके झगडे व विरोध भावके कारणोंको मिटावें, यही मेरा हित बुद्धि का कथनहै।

७९. यदि कोई ऐसा समझेगा कि लोग निंदा करें तो हमारा क्या लेवें, उनके कर्म बंधेंगे हमारे तो कर्म टूटेंगे, यहभी, बडी अनसमझ की बातहै, क्योंकि देखो जिसप्रकार कोई उत्तम साधु नाम धराकर मांस आदि अभक्ष वस्तु खाने लगे अथवा किसी अकेली स्त्रीके साथ एकांतमें गुप्त रीतिसे परिचय करे जिससे लोग उसकी निंदा करें उससे उसके कर्म टुटते नहीं किंतु निंदा करानेके निमित्त कारण होनेसे विशेष बंधतेहैं। उसी प्रकार अज्ञान दशासे अनुचित निंदनीय व्यवहार करने पर लोक निंदाकरें उससे कर्म टुटते नहीं किंतु लोक विरुद्ध निंदनीय कर्तव्य करने से समाजकी, धर्मकी, साधु-श्रावक पदकी हिलना अवज्ञा करवानेके हेतु बननेसे दुर्लभ बोधिके महान् कर्मोंका बंध होकर उससे अंनत संसार बढताहै। जिससे तप-जप आदि द्रव्य क्रिया सब धूलमें मिलकर बडा अनर्थ होताहै, इसलिये 'लोक निंदा करें तो हमारा क्या लेवें' इत्यादि मिथ्यात्वका झूठा भ्रम दूर करके समाजकी शोभा बढे वैसा शुद्ध व्यवहार वाले बननाही परम हितकारीहै।

---

८०. ढूंढिये कहतेहैं कि "ढूंढत ढूंढत ढूंढलिया सब, वेद पुराण कुराणमें जोई। ज्यों दही मांहीसु मक्खण ढूंढत, त्यों हम ढूंढियोंका मत होई ॥ १ ॥" इस प्रकार हमने वेद, पुराण, कुराणमेंसे ढूंढकर हमारा दया धर्म निकाला है, इसलिये हमारा ढूंढिया नाम पडाहै ढूंढियोंकी यहभी अनसमझकी बात है, क्योंकि पढनेवाला विद्यार्थी कहलाताहै परंतु पढेबाद विद्यार्थी नहीं कहा जाता और अटवीमें रास्ता भूलनेवाला रास्ता ढूंढताहै जिससे ढूंढनेवाला ढूंढक कहलाताहै, परंतु सरल रास्ते चलने वाला कभी ढूंढक कहा नहीं जाता। वैसेही ढूंढियों को सर्वज्ञ भगवान्का सच्चा धर्म रूप सम्यग्दर्शनका रास्ता अभीतक नहीं मिला जिस से अभीतक भ्रममें पडेहुए अटवीमें रास्ता भूलने वालोंकी तरह ढूंढरहे हैं, उससे ढूंढिये कहलातेहैं। और दूसरी बात यहभीहै कि तीर्थंकर भगवान् को केवलज्ञान व केवलदर्शन उत्पन्न होनेसे जगतमें लोकालोकके सब भाव प्रत्यक्ष देखकर जानलेतेहैं फिर उपदेश देतेहैं ऐसे सर्वज्ञ भगवान्के शास्त्रोंमें सब तरह से संपूर्ण दयाका स्वरूप व उपदेश मौजूदहै इसलिये सर्वज्ञ भगवान्की आज्ञा मुजब चलने वाले सब जैनियोंको दयाके

स्वरूपके लिये वेद, पुराण, कुरान ढूंढनेकी कुछभी जरूरत नहीं है। जिसपर भी सर्वज्ञ शास्त्ररूप अमृतके समुद्रमेंसे ढूंढियोंको दयाका पूरा २ स्वरूप न मिला उससे अज्ञानियोंके बनाये वेद, पुराण, कुरान आदि मिथ्यात्वरूप जहर के समुद्रमेंसे दया ढूंढने वालों की विवेक बुद्धि कैसी समझनी चाहिये। तत्त्वदृष्टिसे विचार किया जावे तो वेद, पुराण कुरान ढूंढ (देख) कर मत चलानेवाले जैनी कहलानेके योग्य ही नहीं हो सकते। जैसे 'मिथ्यात्वीकी विपरीत बुद्धि होती है' उसी तरह ढूंढियोंकीभी विपरीत बुद्धि होगई है जिससे सर्वज्ञ शास्त्र मुजब द्रव्य और भाव दयाका पूरा २ स्वरूप ढूंढिये समझ सके नहीं इसलिये सर्वज्ञ शास्त्र छोडकर वेद, पुराणके नामसे अपना दया धर्मका नयामत चलाया फिर सर्वज्ञ शासनके नामसे फैलाया यह भोले जीवोंको भ्रम में डालनेकी कैसी मायाचारीहै। वेद, पुराणमें यज्ञ होममें पशु बलिकी व कुरानमें बकरीदकी रौद्र हिंसाको धर्म मान लियाहै, वैसेही ढूंढियों नेभी वासी, विदल, सहत, आचार, कंदमूल, मक्खण, जलेबी, आदि खानेमें और जिन प्रतिमा की व पूर्वधरादि पूर्वाचार्योंकी निंदा करने में तथा जैन समाज में संपशांति का उच्छेद करके घर २ में भेद डाल कर कलेश फैलाने में व अशुद्ध व्यवहार करके समाजकी निंदा करवानेमें दया धर्म मानलियाहै, इन बातोंका विशेष विचार पाठक स्वयं कर सकतेहैं।

---

८१. ढूंढिये अपनेको २२ टोलोंके नामसे प्रसिद्ध करतेहैं, इनके मतको फैलाने वाले २२ पुरुष हुएहैं, इसलिये २२ टोले कहलातेहैं उसपर लोग हंसी उडाने लगे कि टोले पशुओंके होतेहैं, जैन साधुओं के समुदायका नाम गच्छ, कुल, शाखा आदिहैं परंतु टोले नहीं. इससे ढूंढियोंको टोलोंके नामसे शर्मआने लगी जिससे टोले कहना छोडकर स्थानक वासी, साधुमार्गी नाम कहने लगेहैं, तोभी जो २२ टोलोंके नामकी जगतमें छाप पडगईहै, वह अब नहीं मिट सकती।

---

८२. ढूंढिये अपनेको स्थानक वासी कहलाना अच्छा समझते हैं, यहभी अज्ञान दशाहै, देखो- मठमें रहने वाले उस मठके मालिक ममत्व रूप परिग्रह वाले मठवासी कहे जातेहैं और सर्वज्ञ शासनके साधु मकान आदिका ममत्वभाव रूप परिग्रहका त्याग करनेवालेहैं इसलिये अनगार कहलातेहैं जिससे सच्चे जैनियोंको स्थानक वासी कहलाना यहभी सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्धहै।

---

८३. ढूंढिये अपनेको साधुमार्गी कहतेहैं, यहभी सर्वथा अनुचितहै, जैनशासनमें सर्वज्ञ भगवान् तीर्थनायक जिनेश्वर महाराजके नामसे सर्वज्ञ शासन, जैनमार्ग, अर्हत् प्रवचन आदि नाम प्रसिद्धहैं। जिनेश्वर भगवान्रूप महाराजाके आचार्य-उपाध्यायरूप मंत्री (दीवान) कोटवालके हाथके नीचे साधुपद तो एक छोटे सीपाई समान है। जिसतरह राजा महाराजाके नामकी मर्यादा उठाकर अपने नामकी मर्यादा चलाने वाला सीपाई गुन्हगार होताहै। उसी तरह जिनेश्वर भगवान्के सर्वज्ञमार्ग-अर्हत्मार्ग आदि नामोंके बदले ढूंढियेलोग साधुमार्गी नाम चलातेहैं, इस से साधुमार्गी नाम चलाने वाले सब ढूंढिये जिनेश्वर भगवान्की आज्ञा उत्थापन करनेके गुन्हगार बनतेहैं।

८४. फिरभी देखिये आवश्यक, उववाई आदि आगमोंमें "निग्रंथ प्रवचन" नाम आयाहै यहभी तीर्थंकर भगवान्के उपदेश दियेहुये और गणधर महाराजोंके रचेहुए द्वादशांगीका नामहै, उससे निग्रंथ प्रवचन यहनाम तीर्थंकर-गणधरोंका कहाजाताहै. जिससे जैनसमाजमें जितने साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाएं होतेहैं वहसब जिनेश्वर भगवान् के उपदेश दियेहुए मार्गके अनुसार चलने वाले होनेसे जैनी कहलातेहैं इसलिये तीर्थंकर-गणधर महाराजोंके नाम चलानेके बदले ढूंढिये लोग अपना नाम बढानेके लिये साधुमार्गी नाम चलातेहैं इससे तीर्थंकर भगवान्की आशातना करनेके दोषी बनतेहैं।

---

८५. ढूंढियेअपनामूलनाम लुंकागच्छ कहतेहैं यहभी जिनाज्ञाविरुद्धहै, जैनशासनमें गणधर पूर्वधरादि प्रभावकआचार्यके नामसे गच्छ (साधुओंके समुदायका नाम) कहा जाताहै परंतु गृहस्थके नामका गच्छ नहीं कहा जाता. लुंका आचार्य-उपाध्याय या साधु नहींथा किंतु गृहस्थथा, जब यतिलोगोंके पासमें लुंका अशुद्ध पुस्तक लिखने लगा तब यतियोंने लुंकासे पुस्तक लिखवाने बंद करदिये, उससे लुंकाकी आजीविका (रोजी) मारी गई जिससे लुंका यतियोंके ऊपर नाराज होकर निंदा करताहुआ यतियोंकी प्रतिष्ठा व आजीविकाका उच्छेद करनेके लिये जिनप्रतिमाकी उत्थापना करनेका संवत् १५३५ में लुंकाने अपना नया मत चलाया. लुंकाको जैनशास्त्रोंका तत्त्वज्ञान नहींथा उससे अनेक बातें जैनशासनकी मर्यादाके विरुद्ध चलाईहैं, वेही अंधरूढिकी शास्त्रविरुद्ध बातें आजतक ढूंढियोंमें चलरहीहैं उन्हींका उल्लेख

इसग्रंथमें किया गयाहै इसलिये गृहस्थका चलाया हुआ मतको गच्छ कहना, उसीमें रहना, उसकी आज्ञा मुजब चलना यही सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्धहै।

८६. यदि ढूंढिये कहेंगे कि उससमय श्वेतवस्त्र वाले सब यति हिंसाकरने वाले भ्रष्टाचारी होगयेथे, सच्चा उपदेश देनेवाला कोईनहीं रहाथा इसलिये लुंकाजीने सच्चा दयाधर्मका उपदेश देनेके लिये अपना नया मत चलायाहै. यह कथनभी सर्वथा झूठहै क्योंकि महावीर भगवान् ने भगवती सूत्रके २०वें शतकके ८वें उद्देशमें फरमायाहै कि मेरा शासन २१००० हजार वर्षतक चलता रहेगा. इसीसे साबित होताहै कि पंचम आरेके अंततक वीर भगवान्के शासनमें शुद्धसाधु अवश्यही होते रहेंगे परंतु किसी समय शुद्ध साधुओंका अभाव नहीं होगा, जिससे हरसमय (कभी बहुत; कभी कम) संयमीसाधु मौजूदरहतेहैं उससे जिस समय लुंकाजीने अपना नयामत चलाया उससमय शुद्ध संयमी सच्चा उपदेश देनेवाले बहुत साधु विद्यमान विचरहतेथे जिसपरभी ढूंढियेलोग सब श्वेतवस्त्र वाले साधुओं को हिंसाकरने वाले भ्रष्टाचारी ठहरातेहैं सो सर्वथा प्रकारसे वीरप्रभूकी आज्ञा भंग करके प्रत्यक्ष उत्सूत्र प्ररूपणासे अपना संसार बढातेहैं और शुद्ध साधुओंको भ्रष्टाचारी असाधु ठहरानेरूप मिथ्यात्वकी प्ररूपणासे भोले जीवोंकोभी उन्मार्गमें डालनेके दोषी बनतेहैं।

८७. ढूंढिये कहतेहैं कि 'भस्मग्रह उतरा और लुंकाजीका दयाधर्म प्रसरा' याने– वीरभगवान् मोक्षपधारे तब भगवान्के जन्म नक्षत्रपर दोहजार वर्षकी स्थितीवाला भस्मग्रह बैठा था उससे भगवान्का दयाधर्म लुप्त होगयाथा हिंसाधर्म बढ गयाथा जिससे भस्मग्रह उतरा तब लुंकाजीने पीछा दयाधर्मका प्रचार किया, ढूंढियोंका यह कथनभी सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्धहै क्योंकि देखो जैनशास्त्रोंमें यह प्रसिद्धही बात है कि– नवमें भगवान् श्रीसुविधिनाथ स्वामी मोक्षपधारे बाद कितनाही समय जानेपर साधुओंका सर्वथा अभाव होगया तब गृहस्थ श्रावक लोग धर्मका उपदेश देनेलगे, उन्होंकी परंपरामें लोभ आदिसे शुद्ध धर्मका लोपहोकर मिथ्यात्व फैलगया जिससे असंयति (पाखंड) पूजारूप अच्छेरा मानागयाहै, उसके बाद दशवें भगवान श्रीशीतलनाथ स्वामीने दीक्षालेकर केवलज्ञान प्राप्त करके शुद्धधर्मकी प्रवृत्ति,फिर–

से चलाया. इसकथनसे अच्छीतरहसे सावितहाताहै कि सर्वज्ञशासनमें लोपहुए धर्ममार्गको तीर्थंकर भगवान्के सिवाय कोईभी गृहस्थ कभी नहीं चला सकता परंतु धर्मके नामसे पाखंड अवश्य फैला सकताहै। इसी तरहसे वीरप्रभुके शासनमें शुद्धसंयम पालन करनेवाले बहुत आचार्य, उपाध्याय और साधु विद्यमान विचरने वाले मौजूद होनेपरभी, जिसके जाति-कुलका ठिकाना नहीं, जिसका जैनसमाजमें जन्म होनेकाभी कोईप्रमाण नहीं, जिसने स्याद्वाद नयगर्भित अतीव गहन आशय वाले जैनशास्त्रोंको किसी गुरुके पास पढेनहीं, जिसको संस्कृत प्राकृत व शुद्ध भाषाकाभी पूरा २ ज्ञान नहीं, जिसने किसी तरहके श्रावकके व्रतभी लिये नहीं, ऐसा सर्वथा धर्मके अयोग्य, अज्ञानी पुस्तक लिखकर रोजी चलाने वाला लुंका लिखारीकी पुस्तक लिखनेकी रोजी बंध होने से सर्वसाधुओंको भ्रष्टाचारी; झूठा उपदेशदेने वाले बनाकर भगवान्का सच्चा धर्म लोपहुआ ठहराकर फिर आप सच्चा उपदेश देनेवाला भगवानके धर्मका प्रचारक बनगया, यहतो असंयति पूजारूप प्रत्यक्षही झूठा ढोंगहै इसलिये लुंकाजीने भस्मग्रहके उतरनेपर दयाधर्मके नामसे सर्वज्ञ शासनमें भोलेजीवोंको भ्रममें डालनेकेलिये मिथ्यात्व फैलायाहै।

८८. फिरभी देखिये जिसको दुष्टग्रह लगे उसको उससमय कष्ट पडताहै और ग्रहउतरनेपर कष्ट मिटकर शांति मिलतीहै, यह बात प्रसिद्धहीहै। इसीतरहसे भस्मग्रहके कारण १२वर्षी कालमें तथा विधर्मी धर्मद्वेषी उपदेशकों व राजाओंके उपद्रवसे हजारों जैन साधुओंकी और लाखों श्रावकोंकी हानि वगैरह अनेक उपद्रव जैन समाजपर हुए परंतु भस्म ग्रहके उतरेबाद वैसे उपद्रव मिटे और फिरसे शांतिपूर्वक जैन समाजकी प्रभावना होने लगीहै। श्रीहीरविजय सूरिजीने तथा श्रीजिनचंद्र सूरिजी वगैरहोंने अकबर आदि बादशाहोंको प्रतिबोधकर अमारी घोषणा के परवाने करवाये उसीके अनुसार आजतक बहुत जगह पर्युषणा आदि जैन पर्वोंमें अमारी घोषणा होतीहै, लाखों जीवोंकी दया पलरहीहै। इसलिये कल्पसूत्रमें बतलाये मुजब भस्म ग्रहके कारण जिन साधुओंकी पूजा-मान्यता कम होतीथी उन्हींकी परंपरा वाले साधुओंकी भस्म ग्रह के उतरे बाद पूजा-मान्यता विशेष होने लगीहै (इस विषय संबंधी तथा जिनराजकी मूर्त्ति पूजा संबंधी ढूंढियोंकी सब शंकाओंके समाधान श्रीविजयानंद सूरि (आत्माराम) जी महाराजने "सम्यक्त्व शल्यो-

द्धार" नामा ग्रंथमें अच्छी तरहसे खुलासा सहित लिखाहै। श्रीआत्मानंद जैन पुस्तक प्रचारक मंडल, रोशन मुहल्ला आगरा से मंगवाकर उस ग्रंथको पाठक गण अवश्य पढें, बडा उपयोगीहै सब बातोंका खुलासा होजावेगा। और इस पंचमआरेमें २३ उदय होनेवालेहैं, याने-पंचमआरेमें २३ वार जैनशासनकी विशेष प्रभावना होनेका लेखहै उसमें प्रथम उदयमें श्रीसुधर्मस्वामी, रत्नप्रभ सूरिजी, भद्रबाहुस्वामी व संप्रतिराजाको प्रतिबोधनेवाले आर्यसुहस्तीसूरि तथा विक्रमादित्यराजाके प्रतिबोधक सिद्धसेन दिवाकरसूरि और हरिभद्रसूरि आदि प्रभावक आचार्योंने जैन शासनकी बहुत प्रभावनाकी। और दुसरे उदयमें श्रीजिनेश्वरसूरिजी, अभयदेवसूरिजी, दादाजी जिनदत्तसूरिजी तथा १८ देशोंमें अमारी घोषणा करनेवाले कुमारपाल महाराजाको प्रतिबोधनेवाले हेमचन्द्राचार्य व महमद तुघलख बादशाहको प्रतिबोध करनेवाले जिनप्रभ सूरिजी आदि प्रभावक आचार्योंने महेश्वरी, अग्रवाल, ब्राह्मण, क्षत्रीय आदिको उपदेश देकर लाखों जैनीश्रावक बनाये, अनंत उपकार किये, बडी प्रभावना की इसलिये पूर्वाचार्योंसेही और उन्हींके वंश परंपराके साधुओंसेही राजा महाराजा-बादशाह-मंत्री-शेठ आदि बडों बडो के प्रतिबोधसे शासन प्रभावना पूर्वक जगतके उपकारके और जीवदया वगैरहके बडे २ धर्मकार्य हुएहैं, होतेहैं व आगे होवेंगे परंतु लुंका व लुंकाकी परंपराके अनुयायी ढूंढिये-तेरहापंथियोंने अन्य लोगोंको प्रतिबोधकर जैनसमाजकी वृद्धिकरनेके बदले जैनसमाजमें घर २ में, गांव २ में फुट डालकर दोपक्ष करके कलेश-निंदा-विरोधभावसे हानिके सिवाय कुछभी लाभनहीं कियाहै इसलिये ढूंढिये लोग दयाके नामसे ऐसे परमोपकारी शुद्धसंयमी शासन प्रभावक पूर्वाचार्योंको भ्रष्टाचारीका झूठा कलंक लगानेका महान् पाप बांधकर भोले जीवोंको मिथ्यात्वमें डालकर बिचारे अपनामत फैलाते हुए संसार बढातेहैं।

८९. ढूंढिये लोग अपने धर्मकी महिमा बढानेके लिये लुंकाको बड़ाधनाढ्य साहुकार व्रतधारी श्रावक मान बैठेहैं परंतु लुंकाजीके माता पिता-जन्मभूमिकेंगांवकानाम,जाति-कुटुम्ब आदि किसी बातका कोई भी प्रमाण नहींहै परंतु पुस्तक लिखनेवाले लिखारी लहीये ब्राह्मणाकी तरह लुंकाजीभी लिखारीका धंधा करके अपनी रोजी चलाताथा यह बात प्रसिद्धहीहै. इसलिये किसी बातका प्रमाण बिनाही अपनी कल्पना

मात्रसे लुंकाजीको धनाढ्य श्रावक मान लेना प्रत्यक्ष झूंठहै।

और लुंकाजीने व लुंकाजीकी परंपरावाले ढूंढियोंने अपनी पूजा मान्यता बढानेके लिये जैनसमाजमें कैसे २ अनर्थ फैलायेहैं इसबातका प्रत्यक्षप्रमाण इसग्रंथ को पूरा २ पढनेवाले पाठक अच्छीतरहसे समझलेंगे।

---

९०. इस प्रकार ढूंढिये, बाईसटोले, स्थानकवासी, साधुमार्गी व लुंकागच्छ यह ढूंढियोंके मतके पांचोंही नाम सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्ध और श्वेतांबर जैन समाजसेभी अनुचित होनेसे अब ढूंढियोंको अपने मतका कोई अच्छा नया छठा नाम ढूंढकर निकालना चाहिये।

---

९१. कितनेक ढूंढिये अपने स्थानकवासी नामकी तरह मंदिर मार्गियोंको देरा (मंदिर) वासी कहतेहैं और उनकी देखादेखी कितनेक मंदिर मार्गी कच्छदेशादि वाले भोलेलोग अपनेको देरावासी कहतेहैं। स्थानकमें ठहरनेसे स्थानकवासी नामपडाहै परंतु मंदिरमें तो जिनराज के दर्शन भक्तिके सिवाय अधिक ठहरनेमें बड़ा दोष बतलायाहै इसलिये भूलसेभी मंदिर मार्गीयोंका देरावासी नाम कभी नहीं कहना चाहिये।

(ढूंढियोंकी महान् बडी झूंठी गप्पका नमूना देखो)

[दंडा रखनेका निर्णय.]

९२. ढूंढिये कहतेहैं कि बारावर्षी दुष्कालमें रांक भीक्षुक लोग साधुओंकी रोटी खोस कर लेनेलगे तब उसका बचाव करनेके लिये साधुओंने अपने हाथमें दंडा रखना शुरु कियाहै परंतु सूत्रोंमें साधुको दंडा रखनेका नहीं लिखा, यहभी ढूंढियोंका कथन झूंठहै, क्योंकि भगवती, निशीथ, आचारांग, प्रश्नव्याकरण, व्यवहार, दशवैकालिक आदि मूल आगमोंमें जगह २ पर साधुओंको दंडा रखनेको कहाहै।

९३. देखो ढूंढियोंका छपवाया हुआ 'भगवती' सूत्रका आठवां शतकका छट्ठा उद्देश पृष्ठ १०९९—११०० में साधुको आहार, पात्र, गुच्छा, रजोहरण आदि उपकरणोंकी दान विधिमें दंडा संबंधी ऐसा पाठहै:—

" निग्गंथं च णं गाहावईकुलं जाव केई दोहिं पडिग्गहेहिं उवनिमंतेज्जा, एगं आउसो अपणो पडिभुंजाहि एगं थेराणं दलयाहि, सेय संपडिगाहेज्जा तहेव जाव तं नो अपणो परिभुंजेज्जा नो अण्णेसिं दा-

चए सेसं तंचेव जाव परिट्ठवियव्वे सिया एवं जाव दसहिं पडिग्गहेहिं। एवं जहा पडिग्गह वत्तवव्वया भणिया, एवं गोच्छग रयहरण चोलपट्टग कंबल लट्ठी संत्थारग वत्तव्वया भाणियव्वा जाव दसहिं संत्थारएहिं उवनिंमंतेज्जा जाव परिट्ठवियव्वे सिया ॥ ६ ॥"

९४. अर्थः- "गृहस्थके वहां पात्र निमिंत्त गयेहुये साधुको कोई दो पात्रकी निमंत्रणा करे और कहे कि अहो आयुष्मन्! इसमेंसे एक पात्र तुम रखना और दूसरा पात्र स्थविरको देना फिर उस पात्रको लेकर जहां स्थविर होवे वहां साधुको जाना गवेषणा करते हुए कदाचित स्थविर नहीं मिले तो वो पात्र स्वतः को रखना नहीं, वैसेही अन्य को देना नहीं; परंतु एकांतमें जाकर परिठना. जैसे दो पात्रका कहा वैसेही तीन चार यावत् दश पात्रका जानना और जैसे पात्रका कहाहै वैसेही गोच्छक, रजोहरण, चोलपट्टक, कंबल, यष्टि, व संत्थाराकी वक्तव्यता दशतक कहना ॥ ६ ॥"

९५. देखो- ऊपरके मूलपाठ और अर्थपर विवेक बुद्धिसे विचार करना चाहिये कि जिसप्रकार पात्र, गुच्छा, रजोहरण, चौलपट्टक, कंबल आदि उपकरणोंको साधु गृहस्थोंके घरसे यावत् दश दश तक लेकर उनमेंसे एक एक अपनेलिये रक्खे और बाकीके नव २ अन्य साधुओंको दे. यह उपकरण लानेकी रीतिहै। उसी प्रकार यष्टि दंडा व संत्थाराभी दश दश तक लेकर दूसरे साधुओंको देनेकी सूत्रकी आज्ञाहै, इसीसे अच्छी तरह सिद्धहोताहै कि सब साधुओंको रजोहरण, कंबल, संत्थरा आदिकी तरह दंडा भी खास उपयोगी वस्तु होनेसे ऊपरके आगम पाठकी आज्ञा मुजब अवश्यही रखना चाहिये। जिसपरभी ढूंढिये साधु रखते नहीं और संवेगी रखतेहैं उसका निषेध करतेहैं, यहतो प्रत्यक्षही सूत्रकी आज्ञा विरुद्ध होकर उत्सूत्र प्ररूपणासे बड़ा अनर्थ करतेहैं।

९६. ढूंढियोंका छपवाया निशीथ सूत्रका प्रथम उद्देश पृष्ठ ८ में ऐसा पाठ हैः—

"जे भिक्खू दंडयं वा, लट्ठियं वा अवलेहणियं वा, वेणुंसूई वा अणउत्थिएण वा गारत्थीएण वा, परिघट्ठावेवई सो चवमगिलओ गमओं अणुगंतव्वो जाव साइज्जाई ॥"

९७. अर्थः- "जो साधु दंडा [धनुष्य प्रमाण] लाठी [शरीर प्रमाण], कर्दम फेडनी (चौमासे आदिमें कर्दमसे पांव भरावे उसे पू

छेनकी लकडीके बांसके खपाटिये) इनको अन्य तीर्थिक तथा गृहस्थके पास सुधरावे समरावे यावत् सब उक्त प्रमाने कहना यावत् अच्छा जान " तो प्रायश्चित्त आवे ।

९८. फिरभी इसी निशीथ सूत्रके पांचवें उद्देशके पृष्ठ ५८-५९वें में ऐसा पाठहै:— " जे भिक्खू दंडगं जाव वेणुसुयणं वा पलिभिंदियं २ परिट्ठावेई, परिठ्ठवंतं वा साइज्जई ॥ ६७ ॥ "

९९. अर्थः- "जो साधु दंडेको यावत् वांसकी खपाटी पूर्ण स्थिर चलने योग्यहै उसको भांग तोड परिठावे परिठातेको अच्छा जाने ॥ ६७ ॥" तो प्रायश्चितआवे

१००. फिरभी देखो ढूंढियोंकेही छपवाये प्रश्नव्याकरण सूत्रके पृष्ठ १६६ में " पीठफलग, सिज्जा, संत्थारंग वत्थं, पाय, कंबल, दंडक, रयहरणं, निसेज्जं,चोलपट्टग, मुहपोत्तियं, पादपुंछणादि भायण भंडोवहि उवगरणं "

१०१. अर्थः-- " बाजोट, पाटपाटला, शय्या, संत्थारा, वस्त्र, पात्रं, कंबल रजोहरण, चोलपट्टा, मुखवास्त्रिका, पादपुंछन; मात्राआदिकका भाजन भंड तुंबादि उपधि वस्त्रादि होवे "

१०२. देखिये ऊपरके प्रश्नव्याकरण सूत्रके मूलपाठमें "दंडक" पाठ मौजूदहै तोभी ढूंढियोंने अपने बनाये अर्थमें दंडाका अर्थ उडा दिया यही कपट सहित प्रत्यक्ष उत्सूत्र प्ररूपणाहै ।

१०३. आचारांग सूत्रके सोलहवें अध्ययनके प्रथम उद्देशके दूसरे सूत्रमें सर्वसाधुओंको दंडा रखनेका बतलायाहै तथाहि:—

"से अणुपविसित्ताणं गामं वा जाव रायहाणिं वा णेव सयं अदिन्नं गिण्हेजा; णेव-ण्णेणं अदिन्नं गिण्हावेज्जा, णेव-ण्णेणं अदिण्णं गिण्हत्तं समणुंजाणेज्जा । जेहिं विं सद्धिं संपव्वइए, तेसिंपि याई भिक्खू छत्तयं वा मत्तयं वा दंडगं वा चम्मच्छेदगणं वा तेसिं पुव्वामेव उग्गहं अणुण्णाविय अपडिलेहिय अपमज्जिय णो गिण्हेज्ज वा पगिण्हेज्जवा तेसिं पुव्वामेव अणुपाविय पडिलेहिय पमाज्जिय गिण्हेज्ज वा पगिण्हेज्ज वा ॥ "

१०४. इसपाठमें साधुको गांवमें नगरमें यावत् राजधानीमें अपनेको किसी तरहकी कोईभी वस्तु मालिक के बिनादिये लेना नहीं, दूसरोंके पाससे लेवाना नहीं, व लेतेहो उनकी अनुमोदना भी करनीनहीं (अच्छा समझना नहीं) और विशेष तो क्या कहना जिसके साथमें दीक्षाली

हो, पासमें रहतेहों उन साधुके गर्मीमें या वर्षामें ओढनेरूप छत्र (वस्त्र), मात्रक, दंडा व फोडा फुनसी गडगुंबडादिको साफ करनेके लिये किसी गृहस्थके पाससे लाये हुए चाकू कैंची आदि चर्मच्छेदक वगैरह वस्तुओमेंसे कोईभी वस्तु उन साधुकी आज्ञा लिये बिना और देखकर पूंजे प्रमार्जे बिना लेना कल्पेनहीं, इसलिये उन साधुकी आज्ञा लेकर उस वस्तुको पूज प्रमार्जकर लेना कल्पे।

१०५. देखो उपरके पाठमें दीक्षा लेने वाले साधुके दंडा आदि वस्तु कहीहै इसीसे सिद्ध होताहै कि जिसप्रकार पेशाब करनेका मात्रक आदि साधुके हमेशा काममें आनेवाली उपयोगी वस्तुहै, उसी प्रकार दंडाभी आहर, विहार निहार आदि कार्योंमें बाहर जानेके लिये हमेशा उपयोगमें आनेवाला होनेसे सबसाधुओंको रखना पडताहै उसका निषेध करना बडी भूलहै।

१०६. दशवैकालिकसूत्रके चौथे अध्ययनमें दंडा संबंधी नीचे मुजब पाठहै:—

"से भिक्खू वा भिक्खूणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय-पावकम्मे दिया वा राओ वा एगओ वा परिसागओ वा सुते वा जागरमाणे वा से कीडं वा पयंगं वा कुंथुं वा पिपीलिअं वा हत्थंसि वा पायंसि वा बाहुंसि वा उदरंसि वा सीसंसि वा वत्थंसि वा पडिग्गहंसि वा कंबलसि वा पायपुछणंसि वा रयहरणंसि वा गोच्छगंसि वा उडगंसिवा दंडगंसि वा पीढगंसि वा फलगंसि वा सेज्जगंसि वा संथारगंसि वा तहप्पगारेउवगरणजाए तओसंजयामेव पडिलेहिय पडिलेहिय पमज्जिअ पमज्जिअ एगंतमवणेज्जा णोण संघायमावज्जेज्जा ॥ ६ ॥ „

१०७. उपरके पाठमें संयमवान, तपस्या करनेमें आशक्त व व्रत पच्चक्खाणसे पापकर्मको दूर करने वाले ऐसे साधु-साध्वी दिनमें वा रात्रिमें अकेलेमें वा मनुष्योंकी पर्षदामें सोतेहुए वा जागृत दशामें कीडे, पतंगीये, कुंथुये, कीडीयें, आदि त्रसजीव अपने हाथोंमें, पैरोंमें, बाहुमें, साथलमें, पेटमें, मस्तकमें, या वस्त्रमें, पात्रमें ,कंबलमें, पादपुछनक (दंडासन) में, रजोहरणमें, गुच्छामें, जलकेभाजनमें, दंडामें, पाटीयेमें, चौकीमें और संथारा आदि अन्यभी साधु साध्वीके उपयोगी उपकरणोंमें किसी प्रकारके त्रस जीव चढे होवें उन्होंको पूंज-प्रमार्जनकर यत्नापूर्वक एकांत जगहमें परिठवें (रखदें) परंतु पीडा करें नहीं।

१०७. देखिये खास सूत्रकार महाराजने वस्त्र पात्र कंबल की तरह दंडा संत्थारा आदि भी उपकरण बतलाये हैं, इसलिये उपरके पाठकी आज्ञा पालन करने वाले सब साधुओं को वस्त्र पात्र कंबल की तरह दंडाभी रखना उचित है। जिसपरभी ढूंढिये लोग कंबल तथा दंडा रखने का निषेध करने वाले प्रत्यक्ष ही सूत्र विरुद्ध होकर उत्सूत्र प्ररूपणा करके जिनाज्ञा की विराधना करते हैं।

१०८. यदि ढूंढिये कहें कि जिस प्रकार दँडा हमेशा साथमें रखतेहो उसी प्रकार पाट, पाटले, संत्थारा आदि सब उपकरणभी साथमें क्यों नहीं रखते। इस बातके उपर मेरे को इतनाही कहनाहै कि संयम धर्म की रक्षाके लिये साधुके उपकरण बहुत तरहके होतेहैं, जिसमेंसे रजोहरण, मुंहपत्ति, कंबल व दंडा आदि कितनेक उपकरण हर समय काममें आनेवाले होनेसे हमेशा साथमें रखे जातेहैं। और गुच्छा पादपुंछनक, संत्थारा, पुस्तक, पाट, पाटले आदि कितनेक उपकरण हर समय काममें नहीं आते किंतु किसी समय काममें आते हैं, वह हमेशा साथमें नहीं रक्खे जाते, परन्तु ठहरनेकी जगह पर पडे रहतेहैं। जैसे साधु आहार-पानीके लिये गृहस्थोंके घरोंमें जावे तब पाट पाटले पुस्तक वगैरह साथमें नहीं लेजाता तोभी वह उपकरण साधुके कहे जातेहैं। इसालिये दंडाकी तरह पाट पाटले संत्थारा आदि सब उपकरण हमेशा साथमें ले जानेकी कुयुक्ति करना या हमेशा दंडा साथमें रखने का निषेध करना सूत्रविरुद्ध होनेसे सर्वथा अनुचितहै।

१०९. यदि ढूंढिये कहें कि उपरमें बतलाये हुए भगवती सूत्रके पाठ में स्थविर साधुको दंडा रखने की आज्ञादीहै परंतु सबके लियेनहीं, यह भी अनसमझकी बातहै क्योंकि देखो-जिसतरह उत्तराध्ययन सूत्रमें श्रीवीरभगवान्ने गौतमस्वामीका समय मात्रभी प्रमाद नहीं करनेका उपदेश दिया है वैसेही सर्व साधुओंके लियेभी प्रमाद त्याग करनेका समझ लियाजाताहै। इसी तरहसे साधुओंके समुदायमें स्थविर साधु बडे होते हैं इसलिये स्थविरका नाम ग्रहण कियाहै, उसीके अनुसार सर्व साधुओंके लियेभी दंडा रखनेका समझलेना चाहिये और स्थविर को देनेके लिये लायेहुए उपकरण दूसरे साधुओंको देनेकी मनाईकी, उसका तात्पर्य यहीहै कि स्थविरको देनेका कहकर स्थविरके बदले दूसरे साधुको देवे तो देने वालेको मिथ्याभाषण, लेनेवालेको अदत्तादान

और गृहस्थ दातारको अप्रीति होनेसे सर्वज्ञ शासनकी लघुता होकर मिथ्यात्व बढे इत्यादि अनेक दोष आतेहैं, इसलिये जिसको देनेके लिये जो वस्तु लावे वह उसीको देना उचित है, परंतु 'जिसको जरुरत होगी उसको दूंगा' ऐसा सामान्य नियमसे कोईभी वस्तु लाकर हर एक साधुको देनेमें कोई दोषनहीं इसलिये भगवती सूत्रके उपरमें बतलाये पाठ के अनुसार तपस्वी, रोगी, नवदीक्षित, गुरु, आचार्य, उपाध्याय आदि सबको वस्त्र, पात्र, कंबल, दंडा, संथारा आदि उपकरण लाकर देने चाहियें। इनकी भक्तिसे बडी निर्जरा होती है।

११०. व्यवहार सूत्रके आठवें उद्देश में भी स्थविर साधुको दंडा रखनेका लिखा है वहांभी स्थविरका प्रसंग होनेसे स्थविरका नाम बतलाया है परंतु निशीथ, आचारांग, दशवैकालिक आदि आगम प्रमाणानुसार अन्य सर्व साधुओंको दंडा रखनेका निषेध कभी नहीं हो सकता।

१११ यदि ढूंढिये कहें कि दंडासे जीवोंकी हिंसा होतीहै जिससे दंडा शस्त्ररूप है, इसलिये रखना योग्य नहीं है, यहभी अनसमझकी बात है क्योंकि देखो हाथ, पैर, वस्त्र, पात्र, रजोहरण व दंडा आदि उपकरणोंसे उपयोग पूर्वक यत्नासे काम लिया जावे तो सब संयम धर्मके आधार भूत जीव दयाके हेतु हैं और बिना उपयोग अयत्नासे काम लिया जावे तो हाथ, पैर, रजोहरण आदिभी जीव हिंसा करने वाले शस्त्ररूप होते हैं इसलिये सब उपकरणोंमें प्रमाद हिंसाका हेतुहै और अप्रमाद जीव दयाका हेतु है जिसपरभी दंडाको हिंसा करने वाला शस्त्ररूप कह कर निषेध करने वाले ढूंढियोंकी बडी भूल है।

११२. फिरभी देखिये किसी समय प्रमादवश किसीके रजोहरणसे भी जीव हिंसा हो जावे तोभी सर्व साधुओंके संयम धर्मका हेतु होनेसे रजोहरणका निषेध कभी नहीं हो सकता। इसी तरहसे कभी प्रमादवश भूलसे किसी साधु के दंडासेभी कुछ हिंसा होजावे तोभी दंडा सर्व साधुओंके संयम धर्मकी तथा शरीरकी रक्षा करनेवाला होनेसे दंडा रखनेका निषेध कभी नहीं होसकता जिसपरभी अज्ञानतासे निषेध करने वाले सब ढूंढिये, तेरहापन्थी उत्सूत्र प्ररूपक बनते हैं।

११३. ढूंढिये कहतेहैं कि दंडा भय करनेवाला क्रोधमूर्त्तिका हेतु है इसलिये रखना योग्य नहींहै, यहभी अनसमझकी बातहै क्योंकि खास ढूंढियेही वृद्ध साधु-साध्वियोंको दंडा रखना मान्य करतेहैं। अब विचार

करना चाहिये कि यदि दंडा भय करनेवाला क्रोधमूर्त्तिका हेतु होवे तो ढूंढियों के वृद्ध साधु-साध्वियोंकोभी कभी नहीं रखना चाहिये परंतु रखते हैं इसलिये ऐसी २ कुयुक्ति करके साधुओंको दंडा रखनेका निषेध करना बड़ी भूलहै ।

११४ (दंडा हमेशा साथमें रखनेंमें १५ गुणोंकी प्राप्ति)

१-भगवती, आचारांग, प्रश्नव्याकरण, निशीथ, दशवैकालिक, ओघ-निर्युक्ति, प्रवचन सारोद्धार आदि अनेक शास्त्रोंमें तीर्थंकर गणधर पूर्वधरादि महाराजोंने साधु-साध्वियोंको दंडा रखनेका बतलाया है इसलिये दंडा रखने वाले मूल आगमोंकी तथा तीर्थंकर गणधरादि महाराजों की आज्ञाके आराधक होते हैं ।

२-जिसप्रकार रजोहरण व मुंहपत्ति सर्व साधु-साध्वी हमेशा पासमें रखतेहैं, जिससे जब काम पडे तब पूजन प्रमार्जन आदिका काम लिया जाताहै । उसीप्रकार सब साधु-साध्वियोंको ग्रामांतर व गुरु वंदनादि के लिये बाहर जाते समय या गृहस्थोंके घरोंमें आहार-पानी वगैरहके लिये जाते समय दंडाभी हमेशा साथमें रखना चाहिये, जिससे कभी सर्प आदिके सामने आजानेपर दंडेसे अलग हटाकर संयमरक्षा, तथा शरीर रक्षाका लाभ लेसके और १-२ माल (मजले) चढने उतरने में भी दंडाका सहारा रहताहै । अन्यथा कभी सीढी चढते उतरते पैर चुक जावे तो हाथ,पैर, पात्र आदिका नुकसान होजावे, उस समयभी-दंडा बडा सहारा देकर सबका बचाव करताहै ।

३-गृहस्थोंके घरोंमें आहार लेते समय दंडाके सहारेसे आहारके झोली-पात्रे सब अधर रखकर आहार लिया जाताहै, परंतु दंडा नहीं रखने वाले ढूंढिये और तेरहापंथी साधु-साध्वी घर २ में जमीनके उपर झोली-पात्रे रखदेते हैं उससे जमीनपरके कीडी,कुंथुये आदि सूक्ष्म-बादर अनेक जीवोंकी हानि होतीहै । तथा अन्यभी जाहिर उद्घोषणा नंबर दूसरे के पृष्ठ ४८ वें में बतलाये मुजब अनेक दोष आतेहैं ।

४-रास्तामें चलते समय कभी अकस्मात कांटा या ठोकर लगने पर या खाड आदिमें पैर चुक जानेपर नीचे गिरने लगें उससमय दंडा के आधारसे शरीर, वस्त्र, पात्र आदिका बचाव होता है अन्यथा दंडा के अभावसे नीचे गिर जावें तो अनेकजीवोंका नाश होनेसे संयमकी

तथा आत्माकी विराधना होती है ऐसे समयमें भी दंडा संयम-शरीर की रक्षा करताहै।

५-विहार कर दूसरे गांव जाते समय रास्तामें भूखसे या तृषासे साधु या साध्वी चलनेमें अशक्त होगये हों या चक्र आने लगते हों ऐसे समय वहांपर गांवमें पहुँचनेके लिये दंडा बडा सहायक होता है।

६-रास्तामें नदी-नाले आदिमें जल होवे और नीचे की भूमि देखनेमें नहीं आती हो तो दंडासे पहिले जलका माप करके पीछे उतरा जाताहै परंतु दंडाके अभावमें थोडे जलके भरोसे उतरने पर अधिक उंडा जल आजावे या कीचडमें पैर फँस जावे या चीकनी मट्टीमें फीसल जावे तो वहां पर बडी आफत आतीहै और यदि गिरजावें तो अनंतजीवोंकी हानि व पुस्तक आदिका नुकसान होताहै ऐसे समयमेंभी दंडा बडी सहायता देकर सबका बचाव करताहै।

७-कभी थोडी देरकेलिये बहुत जल वाली नदी उतरते समय नावमें बैठना पडे तो नावमें चढते और उतरते समय दंडाका सहारा होताहै अन्यथा कभी गिर जावें तो शरीर-संयम की हानि व लोगोंमे हंसीका हेतु बने इसलिये दंडा बडा काम देताहै।

८-वर्षा चौमासामें आहार-पानी वगैरह को जाते समय रास्तामें कीचडमें पैर न फीसलने पावे इसलिये दंडा बडी सहायता देताहै

९-रास्तामें चलते समय काटने वाले कुत्ते या सिंगडे मारने वाले गऊ-भैंस वगैरहसेभी दंडा बचाव करताहै। यद्यपि दंडासे साधु कुत्ते आदिको मारते नहीं किंतु लकडी देखकर स्वभावसेही वह पशु दूर रहते हैं साधुके नजदीक नहीं आते और ढूंढिये साधु को कभी कुत्ते भौंकते हुये काटनेको पासमें आतेहैं तब उसका बचाव करनेके लिये ढूंढिये साधु अपने ओघेको कुत्ते के मुंहके सामने हिलातेहैं उससे वायु कायकी विशेष हिंसा होतीहै तथा कुत्ता विशेष चिडता हुआ क्रोधसे खूब भौंकताहै और कभी ओघेको मुंहमें पकडभी लेताहै, बडा कौतुक बनताहै ऐसे समय हाथमें दंडा होतो ओघेकी ऐसी विटंबना करनेका समय कभी न आवे, वहां भी शरीर संयमका बचाव दंडा करताहै।

१०-हाथमें दंडा होनेसे उपर मुजब विहार समय जंगलमें कभी चौर या हिंसक प्राणीसेभी बचाव होताहै।

११-विहारमें कभी तपस्वी आदि चलनेमें अशक्त होतो दंडों से कपडेकी झोली बनाकर उसमें उनको बैठाकर गांव में ले जा सकतेहैं।

१२-बहुत साधुओंके लिये आहार लाते समय दंडाके अभावमें आहारके वजनसे हाथ दुखने लगताहै उस समय गृहस्थोंके घरोंमें या रास्तामें किसी जगह आहारके पात्रे जमीनपर रखना अनुचितहै और दंडा हाथमें होतो दंडाके सहारेसे हाथको तकलीफ नहीं पडती ऐसे समयमेंभी दंडा सहायता देताहै।

१३-छोटीदीक्षा वाले साधुको आहारादि करनेकेलिये बडी दीक्षा वाले साधुओंसे अलग बैठनेकी मांडली करनेके काममेंभी दंडा आताहै।

१४-दंडामें मेरुका आकार तथा दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्नत्रयीकी व पंच महाव्रतकी सूचनारूप रेखा होनेसे दंडा हर समय संयम धर्ममें अप्रमादी रहनेका स्मरण करानेका हेतु है।

१५ दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी आराधना करनेसे मोक्ष प्राप्तिका कारण शरीरहै और शरीरकी रक्षा करने वाला दंडा है; इसलिये कारण कार्य भावसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र तथा मोक्षका हेतुभी दंडाहीहै।

इत्यादि अनेक गुण दंडा रखनेमें प्रत्यक्षहैं, मूल आगमोंमेंभी दंडा रखने संबंधी उपरमें बतलायेहुये पाठ मौजूदहैं; इसलिये बारा वर्षीकालमें साधुओं ने अपने हाथमें दंडा रखना शुरू कियाहै ऐसा कहनेवाले सब ढूंढिये व तेरहापंथी लोगों को प्रत्यक्ष झूठ बोलकर उत्सूत्र प्ररूपणा से भोले जीवोंको व्यर्थ मिथ्याभ्रममें डालकर अपने कर्म बंधन करने योग्य नहीं हैं।

११५ फिरभी देखिये जिसप्रकार मध्यान समय सूर्यके सामने धुल फेंककर अपने मस्तकपर डालने वाले अनसमझ बालजीव सूर्यकी हंसी करते हुये बड़े खुशी होतेहैं। उसीप्रकार तीर्थंकर भगवानके फरमाये हुये मूल आगमानुसार दंडा रखनेवाले संवेगी साधुओंको दँडी दँडी कहकर हंसी करते हुये बडेखुशी होनेवाले सबढूंढिये तीर्थंकर भगवान्की, मूल आगमोंकी व पूर्वधरादि आचार्य,उपाध्याय और सर्व साधुओंकी अवज्ञा आशातना करनेके दोषी बनतेहुए अपनी आत्माको कर्मोंसे मलीन करते हैं। इसलिये ऐसे महान् पापसे डरनेवाले ढूंढियें- तेरहा पंथियोंको कभीभी किसीभी संवेगी साधुको दंडी दंडी कहना योग्य नहींहै और

अज्ञानदशा; द्वेषबुद्धि से आजतक दंडी२ कहाहोवे या लिखाहोवे उसका शुद्धभावसे प्रायश्चित्त लेना चाहिये ।

११६. यदि ढूंढिये कहेंगे कि दीक्षालेते समय सब साधुओंको दंडा रखने का सूत्रोंमें नहींलिखा इसलिये रखना योग्य नहींहै, यहभी अनसमझकी बातहै क्योंकि देखो संत्थारा, कंबल, पादपुंछनक, गोच्छा, चौलपट्ट, चद्दर, पुस्तक वगैरह सब तरहके उपकरण दीक्षालेते समय ग्रहण करनेका ढूंढियों के मानेहुए सूत्रोंमें किसीजगह नहींलिखा तोभी इन उपकरणों के नाम सूत्रों में बतलायेहैं उससे सब साधुरखतेहैं, उसीतरह उपरके उपकरणोंक साथ दंडाभी सूत्रोंमें बतलायाहै इसलिये रखना योग्यहै, जिसपरभी ऐसी२ कुयुक्तियें करके निषेध करनेवाले ढूंढिये प्रत्यक्ष झूठा हठ करतेहैं ।

११७. यदि ढूंढिये कहेंगे कि कभी कीचड़ खाड़ आदि कारण पडे तब दंडा रखना चाहिये परंतु बिना कारण हमेशा रखना योग्य नहींहै यहभी अनसमझकी बातहै क्योंकि सर्वज्ञ शासनमें सर्वकाल संबंधी सर्व जीवों केलिये व्यवस्था होनेसे 'इरियावही' करनेमें, तथा 'अन्नत्थ ऊससिएणं' के पाठमें तथा व्रत पच्चक्खाणोंके पाठों में बहुत तरहके आगार (कारण) रखतेहैं वह सबकारण हमेशा सबके लिये नहींबनते किसीके कभी काम- पडताहै तोभी वह सब आगारोंके पाठ सबको हमेशा बोलने पडते हैं। इसीतरह से दंडाभी शरीर व संयमका रक्षक होनेसे सबको हमेशा रखना चाहिये। और खास ढूंढियोंकेही छपवाये निशीथ सूत्रके पृष्ठ ८ में शरीर के माप प्रमाणे लाठी रखने का बतलाया है तथा 'दंडी दंभ दर्पण' के पृष्ठ ९९ वें में दंडा का कान तक लंबा प्रमाण बतलाया है। दंडा और लाठी इन दोनों शब्दों में तत्त्व दृष्टिसे कोई विशेष भेद नहीं है इसलिये व्यवहारमें दोनोंको दंडा कहतेहैं उपरमें बतलाये हुए सूत्रोंके पाठोंमें दोनों तरहके पाठ मौजूदहैं इसलिये कान तक लंबा दंडा रखना कहां लिखाहै ऐसी कुतर्क करना व्यर्थ है। और कान तक लंबा दंडा रखने वाले संवेगी साधुओंकी निंदा करनेवाले सब ढूंढियों की बड़ी भूल है।

११८. ढूंढिये कहतेहैं कि प्रश्न व्याकरण सूत्रमें पंचम संवर द्वार में साधुके १४ उपकरण बतलायेहैं उसमें मूलपाठमें तथा टीकामेंभी दंडा रखनेका नहीं बतलाया इसलिये रखना योग्यनहींहै, यहभी अनसमझकी बातहै क्योंकि इन्हीं प्रश्नव्याकरण सूत्रमें तीसरे संवर द्वारमें "पीढ

फलग-सेज्जा-संथारग-वत्थ-पाय-कंवल-डंडग-रयहरण-निसेज्ज-चोलपट्टय मुहपोत्तिय-पायपुंछणाइ भायण भंडोवहि उवगरणं" इस मूल पाठमें तथा "पीठफलक-शय्या-संस्तारक-वस्त्र-पात्र-कंबल-दंडक-रजोहरण-निषद्या-चोलपट्टक-मुखपोतिका-पादप्रोंछनादि भाजन भांडोपध्युपकरणं" इस टीकाके पाठमें ओघा मुंहपत्ति आदि उपकरणोंके साथही दंडाभी बतला-दियाहै जिससे पंचम संवर द्वारमें दूसरी वार न बतलावें तोभी कोई दोषनहींहै इसलिये प्रश्नव्याकरण सूत्रके नामसे या इनसूत्रकी टीकाके नाम से दंडा रखनेका निषेध करने वाले मायाचारी सहित मिथ्याभाषी समझ ने चाहिये। और १४ उपकरण रखनेका ढूंढिये कहतेहैं परंतु १४ उपकर-णोंका पूरा २ अर्थ नहीं समझते व गौचरीकी झोलीके उपर पल्ले, कंबल आदि १४ उपकरण पूरे २ रखतेभी नहीं इसलिये ढूंढिये साधु-साध्वियों का वेष, उपकरण, कर्तव्य, श्रद्धा और प्ररूपणाभी सूत्र विरुद्धहै, इसका विशेष खुलासा मूलग्रंथमें लिखाहै। तथा पादपुंछनक आदि बहुत तरह के उपकरण साधुके काममें आनेवाले साधु रखसकतेहै इसलिये १४ उप-करणोंका सामान्यपाठ देखकर १४ उपकरणोंसे ज्यादें उपकरणोंका निषेध कभी नहीं होसकता।

(खास निवेदन)

११९. जिनाज्ञानुसार सत्य मार्गपर चलनेकी चाहना रखनेवाले सब ढूंढियें और तेरहापंथियोंको मेराइतनाही कहनाहै कि हमेशा मुंह-पत्ति बांधनेमें ३६ दोषआतेहैं किसीभी जैनशास्त्रमें हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेका लिखाभी नहीं (इसबातका थोड़ासा खुलासा उपरमें लिखा है, विशेष मूल ग्रंथमें आगे देखलेना) इसलिये व्यर्थ शास्त्रों की व कुयु-क्तियोंकी झूठी २ आडलेना छोडकर इस खोटी कुरीतिकी अंधरूढिको जल्दीसे त्याग करके सत्यबात ग्रहण करो। और चौथमलजी ने आज्ञा देकर अपने शिष्य शंकरलालजीके पास मुखवस्त्रिका निर्णय में, प्यार-चंद्रजी पास गुरुगुणमहीमा में, कुंदनमलजीने मिथ्यात्व निकंदन भास्कर में, अमोलक ऋषिजीने जैनतत्वप्रकाश में, पार्वतीजीने ज्ञानदीपिका व सत्यार्थ चंद्रोदय जैन, आदिमें जिस २ ने हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहरानेकी उत्सूत्र प्ररूपणा की हो, करवाई हो या बांधनेमें जिनाज्ञाकी श्रद्धा रखी हो, बांधी हो, बंधवायी हो उन सबको यह ग्रंथ पूरा २ पढकर अपनी भूलकी आलोयणा लेकर आत्मको शुद्ध करना योग्यहै। यदि

चौथमलजी आदिकी तरफसे उपरमें बतलाई हुई किताबों मे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहरानेके लिये कुयुक्तियों करके झूठे २ शास्त्रों के नाम लिखकर भोले लोगोंको भ्रममें न डाले जाते और न बांधनेवाले संवेगी साधुओंके उपर बहुत अनुचित आक्षेपोंकी वर्षा न होती तो मेरेको यह ग्रंथ बनानेका कोई कारण नहींथा इसलिये इस ग्रंथके बनानेमें मूल कारण भूत चौथमलजी आदि को ही समझना चाहिये।

१२०. कितनेक ढूंढिये कहतेहैं कि हम वाद विवादका झगड़ा नहीं चाहते तुम तुमारी करो हम हमारी करें हमतो संप चाहतेहै, यह कथन मध्यस्थ भावका नहींहै किंतु मायाचारीका है, यदि सरल हृदयसे शुद्धभावहो तो हमेशा मुंहपत्ति बांधने वगैरहकी झूंठी बातोंका अवश्य त्याग करें, जबतक झूंठी बातोंका आग्रह त्याग न करें तबतक संप चाहनेवालोंका मध्यस्थ भाव कभी नहीं होसकता, यहतो भोले जीवोंको बहकाकर भले बननेकी बहाने बाजीहै। इसलिये ऐसी माया प्रपंचकी बातें छोडकर जिसतरह श्रीबुंटेरायजी, आत्मारामजी, मूलचंदजी, वृद्धिचंदजी आदि सैकडों साधु साध्वियोंने और हजारों श्रावक-श्राविकाओंने मुंहपत्ति बांधनेके झूंठे मतको त्याग किया है। उसीतरह आत्मार्थी सब ढूंढिये-तेरहापंथियोंकोभी करना उचितहै परंतु लोकलज्जासे खोटी अंधरूढिको चलाना योग्य नहीं है। ॥ इति शुभं ॥

श्रीवीरनिर्वाण २४५२, विक्रमसंवत् १९८३ कार्तिक शुदी ११. हस्ताक्षर श्रीमन्महोपाध्यायजी श्री १००८ श्री सुमति सागरजी महाराजके चरण सेवक पं० मुनि-मणिसागर-जैन धर्मशाला, राजपूताना, कोटा.

आगमानुसार मुंहपत्ति का निर्णय तथा जाहिर उद्घोषणा नम्बर १-२-३ तथा ४-५-६ और श्रीजिनप्रतिमा को वंदन-पूजन करनेकी अनादि सिद्धि आदि ग्रंथ भेट मिलने के ठिकाने:—

१. श्री महावीर जैन लायब्रेरी, राजपूताना, कोटा.
२. श्रीजिनदत्तसूरिजी ज्ञानभँडार, ठि० गोपीपुरा, शीतलवाडी, गुजरात, सूरत.
३. श्रीजिनकृपा चन्द्रसूरिजी जैन ज्ञान भँडार, ठि० मोरसलीगली, मालवा इन्दौर.
४. श्रीआत्मानंद जैन पुस्तकप्रचारकमंडल, ठि० रोशनमुहल्ला, यू० पी० आगरा.
५. श्रीआत्मानंद जैन ट्रेक्ट सोसायटी, पंजाब, अंबाला शहर.
६. श्रीआत्मानंद जैन सभा, काठियावाड, भावनगर.
७. श्री जिन चारित्र सूरिजी, बडा उपाश्रय, मारवाड, बीकानेर.

ओं श्रीवीतरागाय नमः ॥

इन्दौर शहरमें मुंहपत्तिकी चर्चा.

ढूंढियों की हार और आगमानुसार मुंहपत्ति का निर्णय.

विज्ञापन नंबर १.

१ ढूंढिये साधु चौथमलजी यहां आये हैं. उनके शिष्य प्यारचंदजीकी बनाई 'गुरु-गुण-महिमा' नामक पुस्तक यहां छपकर कल प्रकट हुई है. उसके पृष्ठ तीसरेमें प्राचीन कालसे जैन मुनियोंके मुंहपर मुंहपत्ति बांधनेका लिखा है, सो बिलकुल झूठ है. क्योंकि प्राचीन कालके जैन मुनि बोलनेकी वक्त मुंहपत्तिको मुंहके आगे रखकर उपयोगसे बोलते थे, परंतु दोराडालकर दिनभर मुंहपत्तिको मुंहपर बंधी हुई रखना किसी जैन शास्त्र में नहीं लिखा. इस बाबत चौथमलजीके साथ हमारे साधु वार्तालाप कर रहेथे, उसमें उनके कई भक्त लोग बीचमें पडकर हल्ला करने लगे, उसके बाद मोरशलीगलीमें नया जैनउपाश्रय में आकर इस विषय का रास्तेमें वार्तालाप न करते हुए सभामें शास्त्रार्थसे निर्णय करनेका कह गये हैं. इसलिये जाहिर किया जाता है, कि—ऊपरकी बातका पांच रोजमें जैन सिद्धांतका प्राचीन पाठ जाहिर करें या शास्त्रार्थ करना मंजूर करें. नहीं तो झूठी बात लिखकर गणधरादि प्राचीन जैनमुनियोंपर झूठा आरोप रखनेका सर्व संघ समक्ष मिच्छामि दुक्कडं देकर अपनी भूल को जल्दीसे सुधारें.

२ दिनभर मुंहपत्ति बंधी हुई रखनेसंबंधी जैन शास्त्रोंका कोईभी प्रमाण न मिलनेसे पृष्ठचौथेमें "हस्ते पात्रदधानश्च, तुंडे वस्त्रस्यधारकाः" शिवपुराणका ऐसा अधूरा श्लोक लिखकर खोटा अर्थ करके भोले लोगों को भ्रममें गेरे हैं. 'तुंडे वस्त्रस्य धारकाः' इस शब्दका अर्थ मुंहके आगे वस्त्र रखना, ऐसा है. परंतु दिनभर बंधारखना ऐसा कभी नहीं हो सक्ता.

३ जैनशासनमें जिनप्रतिमाको वंदन-पूजन करने की अनादिकी मर्यादा है, उसका बडा फल बतलाया है, यही सम्यक्त्व शुद्धिका खास कर्तव्य है. परंतु जैन आगमोंके अर्थको समझे बिना पुस्तक लिखनेवाले लुंके लहियेने विक्रम संवत् १५३५ में जिन प्रतिमाको वंदन-पूजन नहीं करनेका अमदाबादमें नया मत चलाया तोभी उसने मुंहपर मुंहपत्ति नहीं बांधी थी. मगर उसकी परंपरावाले लवजीने दयाके नामसे मुंहपत्ति मुंह पर बांधनेका संवत् १७०९ में सुरत शहर में नवीन पंथ चलाया है. यह इतिहास जैनमें प्रसिद्धही है. परंतु पहिले बांधते थे. पीछे अमुक समय अमुक मुनिने अमुक नगरमें हाथमें रखनेका चलाया ऐसा किसी प्रमाणसे भी कभी साबित नहीं हो सकता.

४ दिनभर मुंहपत्ति बंधी रखनेसे दयाकी जगह मुंह बंधा हुआ रहनेसे नाकसे जोरकी हवा निकलकर ज्यादे हिंसा होती है १, थूंकसे मुहपत्ति आली (गीली) होनेसे मुंह झूठारहता है २, वर्षाऋतुमें थूंककी आली मुहपत्ति सुकाने परभी नहीं सुकनेसे असंख्यात समुर्छिम जीवोंकी विशेष हिंसा होती है ३, जोर जोरसे बोलने परभी आवाज रुक जाती है उससे धर्मोपदेश सुनने वालों को साफ समझ में नहीं आता है ४, गुंगेके जैसा स्वर भंग होता है ५, दिन भरमें नवी नवी २–३ मुंहपत्ति बदलानी पडती हैं नहीं तो बहुत गंधकी होती है ६, कदाचित् नाक का मैल लग जावे तो अनुचित दिखता है ७, धूपके दिनोंमें प्रशेवासे मुंहपत्ति बारबार आली होती है उससे आदमी को वडी अमुंजन (घबराट) की तकलीफ भोगनी पडती है ८, और जैन शास्त्र विरुद्ध होनेसे जिनाज्ञा भंग होनेका दोष लगता है ९, मुंहका रूप बिगडता है, उससे लोग मूंह बंधे मुंह बंधे कहके हंसतेहैं, उससे शासनकी हीलना होतीहै १०, दोरेसे मुंहपत्ति बांधनेसे मुंहके चीपक जाती है उससे बोलती वक्त मूंछके केस मुंहमें जाते हैं थूंकसे आले होते हैं; ओष्ठ को लगजाते हैं; बोलने में बाधा होती है.

इसलिये कपडेके टुकडे से बारबार पूछकर साफ करनेकी तकलीफ उठानी पडती है (इस बातका चौथमलजी को भी खास अनुभव है व्याख्यानमें बहुत आदमी उनको ऐसा करते देखते भी हैं) ११, बीमार आदमी को मुंहपत्ति बंधी हुई बडी तकलीफ देती है इसलिए नाराज होकर फेक देता है यह हमने प्रत्यक्ष देखा है १२, पढे लिखे समझ दार नवयुवक और आगेवान सेठियोंको जाहिर सभामें सामायिक करती वक्त मुंहपत्ति बांधनेमें बडी शर्म आती है इसलिये धोती-दुपट्टेसे मुंह लपेटते हैं १३, इत्यादि अनेक नुकसान होते हैं, इसका विशेष खुलासा शास्त्रार्थ में करने को मैं तैयार हूं.

५ अगर चौथमलजी या उनके शिष्य प्यारचंदजी अपना लेख सत्य समझते होवें तो शास्त्रार्थ करना मंजूर करें. और जैन आगमानुसार जैन मुनिको दोराडालकर दिनभर मुंहपत्ति बंधी हुई रखनेका साबित कर देवें तो मैं उसी वक्त मुंहपत्ति बांधनेको तयार हूं. नहीं तो सभा समक्ष विद्वानोंके सामने उसी वक्त उन्होंको मुंहपत्ति मुंहपरसे खोलनी पडेगी. जैसा—लोगोंको सत्यके पक्षपाती होकर झूठी बातको छोड देनेका उपदेश करते हैं वैसा स्वयं स्वीकार करें उसमें कल्याण है. अंधरूढीके आग्रहको पकड रखना विवेकी बुद्धिमानका काम नहीं है. आत्मार्थियोंको सत्य अंगीकार करनाही श्रेष्ठ भूषण है. इस लिये इसका निर्णय किये बिना यहांसे चले गये तो आपका पराजय समझा जावेगा.

विशेष सूचनाः—यह शास्त्रीय विषय होनेसे इसके बीचमें निंदा ईर्षाकी बातें करनेकी या गृहस्थियोंको आगेवान करके विषयांतरसे झगडेका रूप लानेकी अथवा व्यक्तिगत आक्षेप करनेकी कोई जरूरत नहीं है. अगर ऐसा कोई करेगा तो सामाजिक शांति भंग करनेका दोषी ठहरेगा. शास्त्रार्थ साधुओंके साथ है इस लिये उनको मंजूर करना चाहिये. इति शुभम्. संवत् १९७९ पौष शुदी १३. हस्ताक्षर—श्रीमान्-महोपाध्यायजी **श्रीसुमति सागरजी** महाराजके लघु शिष्य पं० मुनि-**मणिसागर.**

ढूंढिये साधु चौथमलजीको विनंती.

दीक्षाकी प्रतिज्ञा;— छापा छापीसे क्लेश बढाना बंध करो.

इन दिनोंमें इन्दोर शहरमें मुंहपत्तिकी चर्चा जोरसे चल रही है, उसमें आपके पक्षवाले लोग गालागालीकी बातें करते हैं, यह सर्वथा फजूल है, चर्चाका विषय छोडकर विषयांतरसे दूसरी दूसरी बातोंकी निंदा करनेसे क्लेश बढता है, लोग हंसते हैं, आपके ही पक्षकी हीलना होती है. और सब लोगोंके दिलमें आपका पक्ष प्रत्यक्ष झूठा साबित होता है. इस लिये आपको विनंती करता हूं कि—निंदा-ईर्षाकी तथा फजूल विषयांतरकी बातें करना या छपवाना छोडकर यदि आठ रोजमें न्यायसे राज्य अधिकारियोंके सामने ४ पंडितोंके समक्ष "जैनमुनिको दोरा-डालकर दिनभर मुंहपत्ति बंधी हुई रखना"? यह बात आप जैन आगमोंके प्रमाणोंसे साबित करके बतलादेवें तो मैं उसी वक्त आपका शिष्य होनेकी प्रतिज्ञा करता हूं. नहीं तो आप अपना झूठापक्ष छोडकर मुंहपत्ति हाथमें रखनेका सच्चा जैनमार्ग अंगीकार करीये, विशेष क्या विनंती करूं.

विशेष सूचना:—साधुके नामसे छापे छपवाने की आपकी इच्छा न हो तो भी आप लेख लिख सक्ते हैं, आपके शिष्यकी लिखीहुई पुस्तक छपकर प्रकट हुई है यह प्रत्यक्ष प्रमाण है, इसलिए इस विषयका लेख आप लिख सक्ते हैं. अगर छापे छपवाने की इच्छा न हो तो आपसमें पं० **श्रीमणिसागरजी** महाराजसे पत्रव्यवहार करके अथवा दो साक्षियोंके सामने मिलकर शास्त्रार्थ के नियम मंजूर करके शास्त्रार्थ से निर्णय कर-लेना योग्य है, परंतु कपटतासे झूठा बचाव करके किसी अन्य दूसरे के नामसे लेख छपवाओंगे तो आपकी बात अच्छी नहीं लगेगी.

दूसरे पक्ष तरफसे कोई भी अयोग्य शब्द लिखने में या सुननेमें नहीं आया और आपके पक्ष तरफसे ऐसा होताहै यह बहुत अनुचित है.

शांतिपूर्वक न्यायसे सत्यके पक्षपाती होकर निर्णयके लिये यत्न करना चाहिये, इति शुभम्. संवत १९७९ पौष सुदी १५. द: प्यारेलाल शर्मा.

इस प्रकार दो विज्ञापन प्रकट होनेपरभी ढूंढियोंने शास्त्रार्थ करना मंजूर न किया और अपना झूठा बचाव करने के लिये " दंडी मणीसागर जीको सूचना " नामक विज्ञापन स्थानकवासी जैनमित्र मंडल के नामसे प्रकटकिया उसमें लिखा कि:—[मुंहपत्ति शद्ब का अर्थ हाथपत्ति नहींहै इसकी कईवार चर्चा होकर बांधना सिद्ध हो चुका है, व तुमारे पक्ष के **हीराचंदजी कोठारी** शास्त्रार्थ करनेकी मना करते हैं तथा तुम्हारे साधुओंने चौथमलजीका पल्ला पकडकर मुंडचीरापन किया और तुमनेभी झूठीबातें लिखकर असाधुता की है, इसलिये तुमारे साथ चौथमलजी शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते. (इतना लिखकर बाल जीवोंको भ्रममें डालनेके लिये) **महानिशीथ** सूत्रके " कन्ने ठियाये वा मुंहणंतगेण वा विणा इरियं पडिक्कमे मिच्छुक्कडं पुरिमड्ढं वा " इस अधूरे पाठके वाक्यसे तथा शिवपुराण के " तुंडे वस्त्रस्य धारकाः " इस वाक्यसे व श्री जिन **कृपांचंद्रसूरिजी** महाराज के व्याख्यान में मुंहपत्ति बांधनेके दृष्टांतसे और सन् १९०२ के एक अंग्रेज लेखकके वाक्यसे डोरा डालकर हमेशा दिनभर मुंहपत्ति मुंहपर बंधी रखनेका बतलाया और संघकी आज्ञा बिना शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते.] इस प्रकार दंडी—मुंडचीरा—असाधु वगैरह निंदनीय भाषाका चौथमलजी की तरफसे भक्तों के नामसे विज्ञापन प्रकट हुआ; उसके जवाब में हमने दूसरा विज्ञापन छपवाया था सो नीचे मुजब है.

विज्ञापन नंबर २.

चौथमलजी की बुद्धिमत्ता का प्रकाश.

अपने भक्त मंडल के नामसे पत्रिका छपवाकर लोगोंको अपनी विद्वत्ता का प्रकाश बतलाया है. शास्त्रार्थ करनेकी बातोंमें निंदनीय शब्द

लिखने लिखवाने और आक्षेप करके झगडा बढाना यही आपकी सज्जनता है? इसलिये आपकी उत्तम भाषाको लोग धन्यवाद देते हैं.

२ मुंहपत्ति का सच्चा अर्थ समझे विना हाथपत्ति कहना यही बडी विद्वत्ता है.? वगल में रक्खे हुए ओघे को रजोहरण कहते हैं, परंतु बगल पूंछ नहीं कह सक्ते. कारण कार्य भाव, उपचार व नयगार्भित जैन वाणींके रहस्य को तो आपने देश निकाला दिया मालूम होता है, अगर चद्दर-चोलपट्टा-रजोहरणादि वस्तुओंके उपयोगमें आनेके अर्थों को अच्छी तरह समझते तो मुंहपत्ति को हाथपत्ति कभी नहीं कहते.

३ रायबहादुर हीराचंदजी कोठारी वहुत लोगों के सामने कह-गये कि– पत्रिका में छपवाये मुजब मैंने नहीं कहा. मेरे नामसे झूठाही छपवाया है अगर अपना लेख सत्य साबित कर सकते हो तो उनके हस्ताक्षर प्रकट करो, नहीं तो अपनी भूलको जलदीसे सुधारो. झूठा छपवाकर लोगों को संशयमें गेरना योग्य नहीं है.

४ **महा निशीथ सूत्र** के पाठ से तो मुंहपत्ति हाथ में रखना साबित होता है. परंतु हमेशा दिनभर दोराडालकर बंधी हुई रखना ऐसा कभी साबित नहीं हो सकता, पूर्वापर आगे पीछेके संबंधवाले सब पाठको छोडकर थोडेसे अधूरे पाठका उलटा अर्थ करके भोले लोगोंको बहकाने का साहस करना यह कैसी उत्तमता है? अगर ऐसी अपनी सत्यता समझते हो तो शास्त्रार्थ करनेमें क्यों पीछे हटते हो. ऐसेही शिवपुराण के नाम से लोगोंको बहकाना योग्य नहीं है.

५ जैसे कोई बुद्धिमान सेठीया कार्यवश दुर्गंधीकी जगह जावे तो मुंहके आगे वस्त्र देता है. अथवा राज्यकीय महायुद्धमें जहरी धूंयेके बचावके लिये मुंहके आगे वस्त्र रखनेमें आता है. इसीतरह नाककी दुर्गंधी आगमपर न गिरनेके लिये **श्रीजिन कृपाचंद्र सूरिजी** महाराज दोरे बिना कानमें मुंहपत्ति सिर्फ व्याख्यान के समय गेरते हैं, उसका भावार्थ

को समझे बिना इन्ही महाराजके दृष्टांतसे हमेशा दिनभर दोरा डालकर मुंहपत्ति बंधी हुई रखनेका साबित करना कीतनी बडी साहसीकता है.

६ **आचारांगसूत्र, विपाकसूत्र, महानिशीथसूत्र, आवश्यकसूत्र** वगैरह बहुत प्राचीन जैन आगमानुसार जैनमुनिको मुंहपत्ति हाथमें रखना साबित होता परंतु हमेशा हरदम दिनभर दोरा गेरकर बंधी हुई रखना किसी जैन आगममें नहीं लिखा. इस बातका शास्त्रार्थ करने की चौथमलजी की हीम्मत नहीं है, इसलिये जैन आगमोंके अज्ञात १०-२० वर्ष के एक अंग्रेज लेखक का प्रमाण देकर अपना पक्षका बचाव करते हैं यह कैसी विद्वत्ता ? पाठकगण आपही विचार सकते हैं.

७ आपके भक्तोंने नये उपाश्रयमें आकर शास्त्रार्थ करनेका संघको पूछे बिनाही पहिले मेरेको आमंत्रण किया है. तथा आपके शिष्यनेभी संघकी आज्ञा बिना पुस्तक लिखकर प्रकट करवाई है और आपकी पत्रिकामें संघकी आज्ञाबिना अपने पक्षको पुष्ट किया है. इस लिये मेरेको अब संघकी आज्ञा लेनेकी कोई जरूरत नहीं है. पहिले विना विचारे कार्य शुरु करदेना और पीछे उसको साबित करनेकी शक्ति न होनेसे संघकी बात बीचमें लाना यह प्रत्यक्ष अन्याय है, इस लिये झूठी बातोंका बहाना लेकर शास्त्रार्थसे पीछे हटना कम जोरी है, नहीं तो जलदिसे शास्त्रार्थ करना मंजूर करो, विशेष क्या लिखें. माघ बदी २ सं. १९७९

हस्ताक्षरः—पं० मुनि **मणिसागर.**

उपर मुजब दूसरे विज्ञापन का चौथमलजीने व उनके भक्तोंने कुछभी जवाब न दिया, शास्त्रार्थ करनाभी मंजूर न किया और यहांसे विहार करने लगे, तब हमने उनको शास्त्रार्थ करनेका मंजूर करनेके लिये एक पत्र भेजा तोभी शास्त्रार्थ करना मंजूर न किया तब हमारी तरफसे तीसरा विज्ञापन छपकर उनके सामने ही प्रकट होगयाथा सो नीचे देखो.

विज्ञापन नं० ३.

स्थानकवासी मुंहबांधनेवाले ढूंढियों को सूचना.

इन्दौर शहर में जैन मुनि को मुहपत्ति दिनभर दोरा डालकर हमेशा बंधी हुई रखना या नहीं? इस विषय की जोर से चर्चा चली उसपर स्थानकवासी जैन मित्र मंडल के नाम से एक हेंडबिल प्रगट हुआ था उसमें हीराचंदजी कोठारी के मना करने से चौथमलजी शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते इत्यादि कई झूठी झूठी बातें लिखकर अपना बचाव करने लगे. उसका प्रति उत्तर मिलने की तैयारी थी उतने में कई स्थानकवासी लोगोंने हीराचंदजी कोठारी के पास जाकर बहुत आजीजी करके माफी मांगली, उससे उसका प्रति उत्तर मिलना बंध रक्खा. दूसरेके नाम को आगे करके शास्त्रार्थ से पीछे हटना और गाला गालियों से अपना पक्ष सच्चा करने की बहादुरी करना यह सज्जनता नहीं है.

आज रोज चौथमलजी को शास्त्रार्थ के लिये पत्र भेजा था उसकी नकल नीचे मुजब है.

चौथमलजी को सूचना.

मुंहपत्ति की चर्चा का विवाद शास्त्रार्थ से निर्णय करने के लिये आपके भक्तोंनें मेरेको आमंत्रण किया था, इसलिये मैंने आपको सूचना दी थी. साधुओं साधुओं के शास्त्रीय विषयमें गृहस्थी लोगोंने बीचमें पडकर क्लेश बढाने का रास्ता लिया यह उचित नहीं. अस्तु ! ! !

अब आपको सूचना देता हूं कि अगर दिनभर मुंहपत्ति दोराडालकर हमेशा बंधी हुई रखना आपके माने हुए आगमों से आप साबित कर सक्ते हो तो ६ घंटे में शास्त्रार्थ करना मंजूर करें. शांति पूर्वक निर्णय करने की मेरी इच्छा है अगर आप मंजूर न करोगे तो जाहिर में आपका झूठा आग्रह साबित होगा.

अगर आप यहांपर ज्यादे न ठहर सक्ते हो तो दूसरे शहरमेंभी मैं तयार हूं. संवत् १९७९ माघ बदी पंचमी, ११ बजे. मुनि **मणिसागर.**

इस प्रकार पत्र भेजने परभी शास्त्रार्थ करना मंजूर नहीं करते और यहां से चले जाते हैं. इससे साबित होता है कि ढूंढियों के पास कोई भी आगम प्रमाण नहीं है, केवल हठवाद से मुंहपत्ति बांधने का आग्रह पकड लिया है अब खोलकर हाथमें रखते लज्जा आती है इसलिये यहांसे चुपचाप चले जाते हैं.

अब मैं मुंहपत्ति बांधनेवाले स्थानकवासी सर्व ढूंढियों को सूचना देता हूं कि आप लोग मुंहपत्ति दिनभर बंधी रखनेका अपना प्रत्यक्ष झूठा आग्रह छोडकर उपयोग से बोलने के लिये हाथ में रखने का सच्चा जैन मार्ग स्वीकार करो, उससे आपका कल्याण हो. अगर इतने परभी आपके दिलमें अपने पक्षकी सच्चाई समझते हो तो **दो मास** के अन्दर आपके पक्षका कोईभी साधूको बुलवाकर मेरे साथ शास्त्रार्थ करावो परन्तु राज्य-अधिकारियोंके सामने ४ विद्वानोंके समक्ष सत्यनिर्णयठहरे वो उसी समय सबको अंगीकार करना पडेगा, ऐसा प्रतिज्ञापत्र तीन रोज में प्रकट करो.

विशेष सूचना:—दिनभर मुंहपत्ति बंधीहुई रखना १, लंबा ओघा रखना २, गौचरीकी लटकती हुई लंबी झोली रखना ३, गाती मारना ४, यह जैन शास्त्रानुसार जैन मुनियोंका वेश नहीं है, किंतु नवीन मतका नमूना है. इसलिये शास्त्रार्थ करते नहीं और हम सच्चे हैं ऐसा झूठाही लोगोंको कहते हैं, आजतक बहुत दफे शास्त्रार्थ करनेका मोका आया परंतु आज-तक किसी जगह भी ढूंढिये लोग सभामें न्यायसे शास्त्रार्थ कर सके नहीं, ऐसेही यहांभी हो रहा है, यह प्रत्यक्ष है. इसलिये भव्यजीवों को उनके कल्पित मतके ऐसे कथन का विश्वास करना योग्य नहीं है. इति शुभम्. संवत् १९७९ माघ वदी ५, शामको ६ बजे.

हस्ताक्षर पं० मुनि-**मणिसागर.**

हमारी तरफसे ऊपर मुजब तीसरा विज्ञापन वदी ६ को प्रकट हुआ तोभी चौथमलजीने या उनके शिष्योंने शास्त्रार्थ करना मंजूर न किया उसी रोज यहांसे चुपचाप विहार कर गये, इसलिये इस बावत लोगोंमें उनके झूठे पक्षकी चर्चा होने लगी तब अपनी झूठी ईज्जत रखनेके लिये चौथमलजी के साधुओंने और उन्होंके भक्तोंने मिलकर किसी जैनिके नामसे छपवाते लज्जा आने लगी जिससे अन्य दर्शनीका अधुरा गुप्त नाम आगे करके पीले वस्त्र और लंबा दंडा रखने वगैरह प्रश्न छपवाये, जबाब मांगा. उसपर प्यारेलाल शर्मा जैनीने एक विज्ञापन छपवाया सो नीचे मुजब हैं.

ढूंढिये स्थानकबासी साधु-श्रावकों को नम्र निवेदन.

आप लोगोंकी तरफसे मुंहपत्ति के मुख्य विषय की चर्चा छोडकर निंदा ईर्षाको बढानेवाली झूठी झूठी बातें लिखकर गुप्त नामसे प्रकट होती हैं. इससे साबित होता है कि आपके मंतव्यकी सिद्धिका कोईभी प्रमाण आपके माने हुए आगमों में से आपको कहीं भी आज तक नहीं मिला, इसवास्ते निंदा ईर्षाको वढानेवाली निष्प्रयोजन अनुचित बातें लिखवाकर मुख्य विषयको उडाना चाहते हो यही आपकी कमजोरी प्रतित होती है.

श्रीमणिसागरजी महाराजने आपलोंगोंको **दो महीने** में अपने पक्षके कोईभी साधुको बुलवाकर शास्त्रार्थ करवालेनेका जाहिर किया था. जिसपरभी शास्त्रार्थ न करके चौथमलजी व उनके शिष्य यहांसे विहार कर गये, आपलोगभी चुप बैठगये और आपके पक्ष तरफसें दूसराकोईभी साधु शास्त्रार्थको सामने नहीं आया. इससेभी आपका पक्ष निर्बल जाहिर होता है.

हमेशा मुंहपत्ति बंधी हुई रखनेका आपके आगम प्रमाणोंसे साबित कर देनेपर मैने आपके मतकी दीक्षा लेनेकी प्रतिज्ञा कीथी. जिसपर भी आप लोग अपना मंतव्य सत्य साबित न कर सके, मौन हो बैठे. और प्रथम विज्ञापनमें मुंहपत्ति हमेशा वंधी हुई रखनेमें १३ दोष बतलाये थे उसकाकुछभी प्रतिवाद न करसके, इससेभी आपकापक्ष झूठा साबित होता है.

इतने विवादपरसे आपलोग अपने मनमें समझही गये हैं कि हमारा पक्ष बिलकुल कमजोर है. अब छोड देवें तो जगतमें हांसी होती है, ऐसा भ्रम न रखते हुए सत्य वात अंगीकार करना यही सच्चे जैनीका मुख्य कर्तव्य है. इसलिये आपको मैं नम्र प्रार्थना करता हूं कि **लकीरी की फकीरी** को छोडकर सच्चे मार्गका स्वीकार करीये जिससे आपका श्रेय हो.

मन० को विषेश सूचनाः—तुम जिज्ञासुकी तौरपर आकर पूछते तो पीलेवस्त्र—लंबादंडा रखने वगैरह सब वातों का समाधान मिल जाता और अभी भी मिल सक्ता है. शास्त्रार्थ तुमारे साथ नहीं हैं तुमारे गुरुओंके साथ है. अगर सत्यताकी होश रखते हो तो अपने गुरुओंको तयार करो, भगे हुए क्यों जाते हैं. और तुमभी अपनी जाति व धर्मको छुपाकर फजुल झूठी झूठी निंदाके हेंडविलों से अपनी तुच्छता प्रकट मत करो.

सं. १९७९ माघ सुदी ४. प्यारेलाल शर्मा, जैन.

इतना छपवाकर प्रकट करने परभी ढूंढियोंके साधुओंने शास्त्रार्थ करना मंजूर न किया तब अपने झूठे पक्षका बचाव करनेके लिये किसीने अपने संकेतिक नामसे इन्दौर शहरमें चर्चाका चेलेंज छपवाकर बांटा और शास्त्रार्थ करनेकी अपनी तयारी दिखलाई उसपर हमने चर्चाके चेलेंज का स्वीकार किया और शास्त्रार्थकी व्यवस्था होनेके लिये चौथा विज्ञापन छपवाकर चेलेंज दाताको सूचना दी थीं सो नीचे मुजब है.

विज्ञापन नंबर ४.

मुंहपत्ति की चर्चाके चेलेंज का स्वीकार.

शास्त्रार्थ का व्यवस्था पत्र.

ढूंढिये साधु चौथमलजी के भक्तोंने उनके साथ इन्दोर में मुंहपत्ति की चर्चा का शास्त्रार्थ करनेका मेरेको आमंत्रण दियाथा, उसपर से मैं तयार हुआ, परंतु चौथमलजी यहांसे चले गये अब उनका पक्ष को लेकर किसीने अपने संकेतिक नामसे आज रोज इन्दोर शहरमें चर्चाका चेलेंज

प्रकट किया है, उसको मैं सूचना देताहूं कि चौथमलजी या उनका कोई भी अनुयायी अपने माने हुए आगम प्रमाणों से शास्त्रार्थ करना चाहता हो तो वो उनका सम्मतिपत्र लेकरके जाहिर में आवे सभामें उस समय जो सत्य निर्णय होगा सो उनको भी स्वीकार करना पडेगा.

इस प्रकार न्यायसे मैं शास्त्रार्थ करना चाहता हूं:—

२	साधु हमारी तरफ से	२	साधु आपकी तरफसे
२	श्रावक हमारे संघ तरफसे	२	श्रावक आपके संघ तरफसे
२	विद्वान् हमारे संघ तरफसे	२	विद्वान् आपके संघ तरफसे

१ उभय पक्ष मान्य न्यायाधीश.

इस प्रकार १३ आदमियों के मंडल में सवाल-जबाब सब लेखीत शास्त्रार्थ करना, सभामें प्रेक्षक लोग हरएक आकर चुपकीसे शास्त्रार्थ सुन सकते हैं. दोनों पक्षके मंडल वाले व न्यायाधीश के सिवाय अन्य किसीको आज्ञा बिना बीचमें बोलने का हक्क न होगा. इस शास्त्रार्थ में अपने माने हुए प्राचीन जैनागमानुसार न्यायाधीशके फैसले मुजब जिसका पक्ष सत्य साबित होवे उसी पक्षको सामने पक्षवालोंको उसी समय बिना उजर तत्काल अंगीकार करना पडेगा. न्यायाधीशके फैसले के साथ मंडल का पूरा पूरा कथन एक किताबमें छपवाया जावेगा, उसका खर्चा और सभाका सब खर्चा जिसका पक्ष झूठा ठहरेगा उसको देना पडेगा. इस प्रकार प्रतिज्ञा पालन करने का तथा सभामें शांतिपूर्वक सभ्यतासे व्यवहार करने का न्यायाधीशको लिख देना पडेगा. सरकारी प्रबंध के साथ सभा होगी, उससे किसी तरह की गरबड न होने पावे.

इन नियमोंमें कुछ ज्यादे कम या अन्य कोई विशेष नियम और नियत समय, न्यायाधीश वगैरह बातोंकी व्यवस्था करने के लिये १० रोज में दोनों पक्षके संघके ४ गृहस्थोंकी कमेटी होनेकी बहुत जरूरत है. इस लिये चौथमलजी के पक्ष तरफसे दो दो साधु-श्रावकों के नाम जाहिर होनेपर हमारे पक्ष तरफसे भी दो दो नाम जाहिर किये जावेंगे.

इस प्रकार व्यवस्था मुजब शास्त्रार्थ के लिये सही न करोगे, नियत समय पर सभामें हाजिर न होगे तथा शास्त्रार्थ न करोगे और अपनी झूठी इज्जत रखनेके लिये आडी टेढी बातोंके झूठे झूठे बहाने बतलाकर दूसरोंकी आड लेकर अपना बचाव करोगे तो उसका कुछभी प्रतिउत्तर न देकर १५ रोज बाद आपका पक्ष हाराहुआ (झूठा) जाहिर किया जावेगा.

चर्चाके चेलेंज के लेखमें दूसरों को अपवित्र लिखकर आप पवित्र बने, इससेही लेखककी बाललीला की विद्वत्ता जाहिर होती है, अस्तु. अब देखें आगे शास्त्रार्थ करने को सामने आकर कैसी विद्वत्ता दिखलाते हैं ?

सूचनाः—चौथमलजी वगैरह किसीभी ढूंढिये साधु--श्रावकोंके साथ हमारा कुछभी द्वेश नहीं है **जीव दया** वगैरह शुभ कार्योंकी हम प्रसंशा करते हैं परंतु दयाके नामसे मुंहपट्टी बांधकर अपवित्र कार्य करके जैन धर्मको व ओसवाल जातिको दोषीत कर रहे हैं. ऐसे अशुद्ध व्यवहारसे छोडवाकर शुद्ध व्यवहार में लानेकाही हमारा मुख्य उद्देश है, उसको समझे बिना द्वेष बुद्धि करना योग्य नहीं है तथा हमेशा दिनभर मुंहपत्ति बंधीहुई रखनेमें १२ दोष प्रथम विज्ञापनमें बतलाये हैं औरभी बहुत दोष हैं, उन्होंको सुधारो या शास्त्रार्थ करो. विद्वानोंकी सभामें कौन तयार रहता है और झूठे बहाने बतलाकर कौन भगता है उससेही योग्यता अयोग्यता व पवित्रता अपवित्रता जगत देख लेवेगा.

इस बातका बहुत दफे विवाद चलता है उससे आपसमें कलेश की वृद्धि--कर्मोंका बंधन व पैसेका खर्च और शासनकी हीलना होती है, परंतु निर्णय होता नहीं. इसलिये हमेशाका बखेडा मिटानेके वास्ते इन्दौर शहरमें इस बातका पूरा पूरा निर्णय अवश्यही होना चाहिये. इति शुभम्.

संवत् १९७९ माघ सुदी ७, हस्ताक्षरः—पं० मुनि **मणिसागर.**

ऐसा चौथा विज्ञापन प्रकट होनेसे ढूंढिये साधु और चेलेंज दाता सबही चुप होगये, शास्त्रार्थ करनेका नामभी न लिया, इससे भी उनके पक्षकी हरदम मुंहपत्ति बंधी हुई रखनेकी बात प्रत्यक्षझूठी साबित होती है.

विज्ञापन नंबर ५.

देखोः–ढूंढियोंका प्रत्यक्ष झूठा बकवाद.

ढूंढिये लोग नाभामें मुंहपत्तिकी चर्चामें हम जीते थे; हमारा विजय हुआ था, ऐसा बार बार कहकर भोले लोगोंको व्यर्थही भ्रममें डालतेहैं इस लिये यहांपर नाभाकी चर्चाका विद्वानोंका दियाहुआ फैसला बतलातेहैं.

फैसला शास्त्रार्थ नाभा.

ॐ श्रीगणाधिपतये नमः

श्रीमानमुनिवर वल्लभविजयजी,

पंडितश्रेणि सरकार नाभा इसलेख द्वारा आपको विदित करते हैं गत संवत्सरमें आपने हमारे यहां श्री १०८ मन्महाराजाधिराज नाभा-नरेशजी के हजूरमें छे(६) प्रश्न निवेदन करके कहाथा कि यद्यपि जैन मत और जैनशास्त्रभी सर्वथा एक है परंच कालांतरसे हमारे और ढुंढियोंमें परस्पर विवाद चला आता है बल्कि कईएक जगापर शास्त्रार्थभी हुएहैं परन्तु यह बात निश्चय नहीं हुई कि अमुक पक्ष साधु है। श्रीमहाराज की न्यायशीलता और दयालुता देशांतरोंमें विख्यात है इससे हमें आशा है कि हमारे भी परस्पर विवाद का मूल आपके न्याय प्रभावसे दूर हो जावेगा, भगवदिच्छासे इन दोनोमें ढुंढियोंके महंत सोहनलालजी यहां आये हुए हैं उनके सनमुखही हमें इन छे ६ प्रश्नोंका उत्तर जैन मतके शास्त्रानुसार उनसे दिलाया जावे। आपके कथानुसार उक्त महंतजी को इस विषयकी इत्तला दीगई, आपने इतला पाकर साधु उदयचंदजीको अपने स्थानापन्न का अधिकार देकर उनके हानी लाभको अपना स्वीकार करके शास्त्रार्थ करना मान लिया था ॥

तदनंतर श्री १०८ श्रीमन्महाराजाधिराजजी की आज्ञानुसार हम लोगोंको शास्त्रार्थ के मध्यस्थ नियत किया गया। तिस पीछे कई दिन

तक हमारे सामने आपका और उदयचंदजीका शास्त्रार्थ होता रहा, शास्त्रार्थ के समयपर जो प्रणाम आपने दिखलाये सो शास्त्रविहित थे। आपकी उक्ति और युक्तियेंभी निःशंकनीय और प्रामाण्य थीं। प्रायः करके श्लाघनीय हैं॥ उक्त शास्त्रार्थके समयपर और इस डेढ वर्षके अंतरमें भी जो इस विषयको विचारा है उससे यह बात सिद्ध नहीं हुई कि **जैनमतके साधुओंको वार्तालापके सिवाय अहोरात्र अखंड मुखबंधन और सर्वकाल मुखपोतिकाके मुखपर रखनेकी विधि है. केवल भ्रांति है। केवल वार्तालापके समयही मुखवस्त्रके मुखपर रखनेकी आवश्यकता है हमारे बुद्धिबलकी दृष्टिद्वारा यह बात प्रकाशित होती है कि आपका पक्ष ढूंढियोंसे बलवान है.**

यद्यपि आपका और ढूंढियोंका मत एक है और शास्त्रभी एक हैं इसमें भी सन्देह नहीं, साधु **उदयचंदजी** महात्मा और शान्तिमान हैं परंच आपने जैनमतके शास्त्रोंमें अतीव परिश्रम कियाहै और आप उनके परम रहस्य और गूढार्थको प्राप्त हुए हैं। सत्य वोही होता है जो शास्त्रानुसार हो और जिसमें उसके कायदोंसे स्वमत और परमतानुयायिओंकी शंका ना हो. शास्त्रके विरुद्ध अंधपरंपराका स्वीकार करना केवल हठधर्म है. पूर्व विचारानुसार जब आपका शास्त्र और धर्म एक है उसके कर्ता आचार्य भी एक हैं फिर आश्चर्य की बात है कि कहा जाता है कि हमारे आचार्यों का यह मत नहीं है. और ना वो इन ग्रंथों के कर्ता हैं। आप देखते हैं कि हमारे भगवान् कलकी अवतार की बाबत जहां आप देखोगे एकही वृत्त पावेगा ऐसेही आपके भी जरूरी है।

आपके प्रतिवादीके हठके कारण और उनके कथनानुसार हमें **शिवपुराण** के अवलोकनकी इच्छा हुई. बस इस विषयमें उसके देखने की कोई आवश्यकता नहीं थी। **ईश्वरेच्छासे उसके लेखसेभी यही बात प्रगट हुई कि वस्त्रवाले हाथको सदा मुखपर फैकता है इससे**

भी प्रतीत होता है कि सर्वकाल मुखवस्त्रके मुखपर बांधे रखनेकी अवश्यकता नहीं है किन्तु वार्तालापके समयपर वस्त्रका मुखपर होना जरूरी है। आपके शास्त्रार्थ में एक हमें बडा भारी लाभ हुवा है कि हमें मालूम हो गया कि जैनमतमें भी सुतक पातक ग्रहण किया है और जैनीसाधुओंको उनके घरोंके आहारादि के लेनेकी विधि नहीं है.

व्यतीत संवत्सर के आठ जेष्ठ सुदि पञ्चमी सं० १९६१ को जो शास्त्रार्थ मध्यमें छोडागया उससे यह आशयथा कि ढूंढियोंकी ओरसे सदा मुखबन्धनकी विधिका कोई प्रमाण मिले सो आज-दिनतक कोई उत्तर उनकी तरफसे प्रकट नहीं हुआ, अतः उनकी मूकता आपके शास्त्रार्थके विजयकी सूचिता है। बस इस विष-यमें हमारी संगति है और हम व्यवस्था याने फैंसला देते हैं कि आपका पक्ष उनकी अपेक्षासे बलवान् है, आपकी विद्याकी स्फुर्ति और शुद्धधर्माचारकी नेष्ठाअतीव श्रेष्ठतरहै प्रायः करके जैनशास्त्र विहित प्रतित होताहै और है।

इत्यलम् १८ पौह सं० १९६२ मु० रियासत नाभा।

हस्ताक्षर पंडितोंके —
१ पण्डित भैरवदत्त.
२ पण्डित श्रीधर राज्य पण्डित नाभा.
३ पण्डित दुर्गादत्त.
४ पण्डित वासुदेव.
५ पण्डित बनमालिदत्त ज्योतिषी.

उक्त फैसलेके आनेपर श्रीमुनि वल्लभविजयजीने श्रीमान नाभा नरेशको एक पत्र लिखा, उसकी नकल आगे देते हैं।

श्रीमान् महाराजा साहिब नाभा पतिजी जयवन्ते रहैं, और राय-कोटसे साधु मल्लभविजय के तरफसे धर्मलाभ वांचना देवगुरुके

प्रताप से यहां सुख शान्ति है, और आपकी हमेशह चाहते हैं, समाचार यह है कि आपके पंडितों का भेजाहुआ फैसला पहुंचा, पढकर दिल को वहुत आनन्द हुआ, न्यायी और धर्मात्मा महाराजों का यही धर्म है, कि सच्च और झूठका निर्णय करें जैसा कि आपने किया है, कितने ही समय से वहुत लोगों के उदास हुए दिल को आपने खुश करदिया, इस बारे में आपको वारवार धन्यवाद है। अब इस फैसले के छपवाने का इरादा है, सो रियासत नाभा में छपवाया जावे या और जगह भी छपवाया जा सकता है, आशा है कि इसका जवाब बहुतजल्द मिले. ता० १८-१-१९०६, द० वल्लभविजय, जैनसाधु।

पूर्वोक्त पत्र के उत्तर में नाभा नरेशने पण्डितों के नाम पत्रलिखा, उसकी नकल नीचे मुजब हैः—

ब्रह्ममूर्त पण्डित साहिवान कमेटी सलामत. नम्बर ११९३.

इन्दुल गुज़ारिश पेशगाह ख़ास से इरशाद सादर पाया कि बावा जी को इत्तला दी जावे कि जहां उनकी मनशा हो वहां इसको तबअ करावें यह उनको अखतियार है, जो कुछ पंडताननें बतलाया वह भेजा गया है, लिहाज़ा मुतकल्लिफ ख़िदमत हूं कि आप बमनशा हुक्म तामील फर्मावें, १० माघ संवत् १९६२ अज़ सरिशतह ड्योढी. पन्नालाल, सरिशतहदार।

इस पत्र के उत्तर में कमेटी पंडतानने श्रीमुनि वल्लभविजय जी के नाम पत्रलिखा, उसकी नकल यह है। ब्रह्मस्वरूप बाबासाहिब जी श्री महात्मा वल्लभ विजयजी साहिब साधु सलामत. नं. ७७६

सरकार बाला दाम हश्मतहू से चिट्ठी आप की पेश होकर बर्दी जवाब तवस्सुल ड्योढी मुबारिक व हवालह हुक्म ख़ास बर्दी इरशाद सदूर हुआ कि बाबा जी को इत्तला दी जावे कि जहां उनका मनशा हो तबअ करावें, बख़िदमत महात्माजी नमस्कार दस्त बस्तह होकर इल्तिमास किया जाता है कि जहां आपका मनशा हो छपवाया जावे, और जो फैसला तनाजअ बाहमी साधुआन् महात्मा का जो जैनमत के अनुसार पण्डितानने किया था, आपके पास पहुंच चुका है, मुतालअ हो चुका है, तहरीर ११ माघ संवत् १९२२. द० सपूर्णसिंह अज सरिशहत कमेटी पण्डितान॥

☞ उक्त फैसलेको पढकर हमारे ढूंढकपन्थी भाइयोंको जिन्होंने कि व्यर्थ मिथ्याशोर मचा रक्खाथा कि पुजेरे हारगये, पश्चाताप करना चाहिये और वतलानाचाहिये, अबकोनहारे ? जवाब—ढूंढिये ? ढूंढिये ??

उपर का लेख "ढूँढक मत पराजय" पुस्तक की चौथी आवृत्तिसे उद्धृत किया है. उक्त पुस्तक में– रात्रिको पाणी न रखना, रजस्वला न मानना, मैला पाणी लेना, ओघादि उपकरण कैसे रखने, ४ वर्ण का आहार व चेला करना, सूतक न मानने (मृतक गुरु जलाकर स्नान न करना) इत्यादि प्रश्न छपे हैं परन्तु आज तक ढूँढिये जवाब न दे सके. ऐसेही समाना, टांडा, जेजो, बंगिया, अमृतशहर, धूलिया, अहमदनगर, अमरावती, उदयपुर, अमदाबाद, जावद, निंबाहेडा. और जीरन वगैरह वहुत जगह ढूंढिये चर्चा में झूठे होनेसे भग गये हैं। तथा शिवपुराण के नाम से भी मुंहपत्ति हमेशा बांधने का व्यर्थ ही कहते हैं और मुखव-स्त्रिका निर्णय में भी वहुत शास्त्रों के नाम से हमेशा मुंहपत्ति वंधी रखने का प्रत्यक्ष ही झूठ लिखा है. उन शास्त्रों में हाथ में रखने का लिखा है, यह सर्व शास्त्र यहां पर श्री मणिसागर जी महाराज के पास मौजूदहैं, पाठक गण आकर देख सकते हैं।

विशेष सूचनाः— इस परभी दिल की उमंग पूरी न हो तो सभ्यता पूर्वक विद्वत्ता के साथ शास्त्रार्थ करने के लिये कटिवद्ध होइये पीछे पैर न धरियेगा. संवत् १९८०, चैत्र शुदी ३, सूरजमल नाहटा, इन्दौर.

॥ श्री गुरु गौतमस्वामिने नमः ॥

इन्दौर शहर में ढूंढियो की हार (शास्त्रार्थ से भाग नाश.)

१ आजतक ढूंढियेलोग किसीजगह संवेगियोंके साथ न्यायपूर्वक आगम प्रमाणानुसार सभा में शास्त्रार्थ करसके नहीं, कभी शास्त्रार्थ करने का मोका आवे तब चुप लगा देते हैं या क्रोधसे निंदा–ईर्षा करते हुए शास्त्रार्थ का विषय छोडकर निष्प्रयोजन आडी टेढी दूसरी दूसरी बातों का विषय बीच में लाकर विषयांतर करके झगडा मचाकर वहां से भग जाते हैं. वैसे ही इन्दौर शहर में भी ढूंढियों ने किया है, यह बात इन्दौर शहर में मुंहपत्ति की चर्चा के उपर के विज्ञापनों के लेखों से पाठकगण अच्छी तरह से समझ सकते हैं।

२. ढूंढिये कहते हैं कि हम बत्तीस (३२) सूत्र मूल मांनते हैं,

मूल सूत्रोंके अनुसार ही हमलोग हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखते हैं, ऐसा कहते हैं, परंतु न्याय से शास्त्रार्थ करके किसी एक भी आगमके पाठ से अपनी बात साबित कर सकते नहीं. देखो—पहिले, तीसरे और चौथे विज्ञापनमें छपेहुए नियमानुसार ढूंढिये साधु चौथमल जी या प्यारचंद जी शंकरलाल जी आदि उन्हों के शिष्यों के साथ अथवा अन्य कोई भी ढूंढिये साधुओं के साथ इन्दौर शहर में वा अन्य किसी दूसरे शहर में जहां ढूंढियों की मनसा हो वहां उन्हों के साथ शास्त्रार्थ करने का मैंने जाहिर किया था, तिसपरभी किसी भी ढूंढियेकी मेरे साथ शास्त्रार्थ करने की ताकत हुई नहीं तथा आजतक कोई ढूंढिया साधु तैयार हुआ भी नहीं और न कोई इस विषय में आगेको शास्त्रार्थ करने को तैयार हो सकेगा (जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण इस ग्रंथ को पूरा वांचो) यही ढूंढियों की वडी हार जग जाहिर हो रही है।

३. चौथमलजी के भक्तों ने छपवाया कि "चौथमलजी का मास कल्प पूरा होगया था, इसलिये शास्त्रार्थ न करके विहार कर गये" यह भी झूठा बचाव है, क्योंकि अगर सत्यता होती तो इन्दौर शहर के सिवाय अन्य दूसरे किसी शहर में शास्त्रार्थ करना मंजूर करते, मैंतो सर्व जगह तैयारथा. शास्त्रार्थ कर सकते नहीं, और अपना झूठा पक्ष छोडतेभी नहीं इसलिये मायाचारी से ऐसे प्रपंच बाजी के लेख छपवाकर भोले लोगों को धोखे में डालकर अपनी सत्यता प्रकट करना चाहते हैं सो कभी नहीं हो सकती।

४. फिरभी देखिये-जैसे कोटवाल भगतेहुए चौरको पकड़ लेताहै, वह उसका अन्याय नहीं कहा जाता. वैसेही इन्दौर शहर में चौथमलजी ने व उन्हों के शिष्यों ने जैन मुनिको हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का प्रत्यक्ष झूठ छपवा कर जाहिर करवाया; तब हमारे साधुओंने इन्दौर शहर के भर बाजार में बहुत ढूंढिये साधु—श्रावकों के सामने शांति पूर्वक खुद चौथमलजी का हाथ पकड़ा और इस विषय संबंधी शास्त्र प्रमाण मांगा व शास्त्रार्थ करने का कहा, इस बातमें हमारे साधुओंका कोई अन्याय नहीं कहा जासकता. इस लिये अब ढूंढिये निन्दा ईर्षा क्रोधसे झगडा फैलाते हैं सो व्यर्थहै।

५ अगर कोई कहे कि शास्त्रार्थ हुए बिनाही हार कैसे मानी

जावे, इस बातका समाधान इतनाहीहै कि—किसीभी विषयकी चर्चा खडी करके शास्त्रार्थ करनेके समय झगडा फैलाकर वहांसे भग जावे तो उससे सभा हुए बिनाभी उसकी हार समझी जातीहै, वैसेही इन्दौरमेंभी ढूंढियोंने चर्चा खडी की व शास्त्रार्थ करनेका चेलेंज निकाला, उसपर हमने चौथे विज्ञापन मूजिब नियमानुसार शास्त्रार्थ करनेका मंजूर किया, तव ढूंढियोंने चुप लगादी, शास्त्रार्थ करने से भग छुटे, शास्त्रार्थ करनेके लिये किसीभी ढूंढिये की सभामें सामने आनेकी हिम्मत न हुई, उससे चौथे विज्ञापनके नियम मुजब ढूंढियोंकी हार हो ही चुकी और सबने स्वीकारभी कर ली नहींतो आजतक कोई तय्यार होते.

६ ढूंढियोंने मुखवस्त्रिका निर्णय, वगैरह जो जो अपनी पुस्तकों में आज तक सिर्फ शास्त्रोंके नाममात्र लिखकर कुयुक्तियें लगाकरके अथवा कहीं २ शास्त्रोंके नामसे अधूरे २ पाठ लिखकर खोटे २ अर्थ करके हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का ठहराया है, उन्हीं सर्वशास्त्रों के पूरे २ पाठोंके साथ और सर्व तरह की शंकाओंका व कुयुक्तियोंका समाधान सहित मैंने इस ग्रंथमें अच्छी तरह से खुलासाकरके हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखना सर्वथा जिन आज्ञा विरुद्ध दिखलादिया है और हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेसे अनेक दोष आतेहैं व हाथमें रखकर हाथसे नाक मुंह दोनोंकी यत्ना करके उपयोगसे बोलनेमें अनेक लाभ होतेहैं यहभी बतलादियाहै और भगवती, आचारांग, विपाक निशीथ, महानिशीथ, दशवैकालिक, आवश्यकादि अनेक आगम तथा प्रकरणादि अनेक शास्त्रोंके पाठ बतलाकर अनादि काल से जैन मुनि मुंहपत्ति हाथमें रखकर मुंहकी यत्ना करके बोलतेथे, ऐसा अच्छी, तरहसे साबित करके दिखलायाहै. इसलिये जो २ ढूंढिये जिनाज्ञा अनुसार चलकर अपनी आत्माका कल्याण करना चाहते होवें सो इस ग्रंथ को पूरा २ बांचकर, विचारकर, और सत्य बातको समझकर अपनी अंध रूढिकी झूठी परंपराको व लोकलज्जाको छोड़कर हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का अवश्य त्याग करें, इति शुभम् ।

विक्रम संवत् १९८० चैत्र शुदि १५, हस्ताक्षर परम पूज्य परमगुरु श्रीमन्महोपाध्यायजी श्रीसुमतिसागरजी महाराजके चरणकमलोंका दास पं०- मुनिमणिसागर. ठि.-मोरसलीगली नया जैनउपाश्रय, मु-इन्दौर.

॥ ॐ नमः सिद्धेभ्यः ॥

अविसंवादी श्रीसर्वज्ञप्रवचनाय नमोनमः।

आगमानुसार मुहपत्ति का निर्णय.
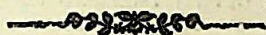
अविसंवादी अनादि सर्वज्ञशासनमें जैनी साधुओंके रजोहरण और मुंहपत्तिके लिंगमें किसी तरहका भेद [विसंवाद] नहीं होता, सबके एक समान होता है, उससे किसीको कोई शंका नहीं होने पाती. अभी ८४ गच्छोंके अनेक समुदाय मौजूद होनेपरभी लिंग का भेद नहीं है और श्री जिनप्रतिमाको वंदन-पूजन करनेकी मर्यादाभी अनादि कालसे चली आती है. परंतु अनुमान ढाईसौ (२५०) वर्ष हुए जबसे ढूंढिये निकले तबसे उन्होंने लिंगका भेद किया, प्रमाणरहित लंबा रजोहरण रख्खा, हमेशा मुंहपत्ति मुहपर बांधनेका नवीन रिवाज चलाया और जिन प्रतिमाके दर्शन-वंदन-पूजन करने वगैरह बहुत बातोंका उत्थापन किया है. सर्वजैन शास्त्रोंमें जैन मुनियोंको मुंहपत्ति मुंहके आगे रखकर उपयोग से बोलनेका कहा है परंतु ढूंढियोंकी तरह हमेशा बंधी हुई रखनेका किसी जैन शास्त्रमें नहीं लिखा, जिसपरभी ढूंढिये साधु शास्त्र विरुद्ध हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखते हैं, फिर अपने झूठे पक्षको स्थापन करनेके लिये **भगवतीजी** वगैरह शास्त्रपाठोंके भावार्थ समझे बिनाही अपनी कल्पनासे उलटे उलटे अर्थ करके उत्सूत्रप्ररूपणासे **गणधर-पूर्वधरादि** सर्व महर्षियोंको हरदम मुंहपत्ति बंधी रखनेका झूठा दोष लगाकरके पापके भागी बनते हैं और झूठी झूठी कुयुक्तियें लगाकर भोले जीवोंको जिनाज्ञा विरुद्ध उन्मार्गमें डालकर अपने पक्षमें फँसाते हैं, उन्होंके तथा अन्य आत्मार्थी भव्यजीवोंके सत्य बातका बोध होनेरूप उपकारके लिये शास्त्रकार महाराजोंके अभिप्रायसहित

आगमपाठानुसार मुंहपत्तिके विवादका निर्णय यहां बतलाता हूं. उसमें मैं मेरी तरफ से शास्त्रोंके प्रमाणोंको बतलाता तो ढूंढियें लोग अमुक अमुक शास्त्र प्रमाण हम नहीं मानते; ऐसा कह देते, परन्तु खास ढूंढिये साधुओंनेही अपनी बनाई, '**मुखवस्त्रिका निर्णय**' में और '**मिथ्यात्वनिकंदन भास्कर**' पुस्तक में जिस जिस शास्त्रके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराया है उन्हीं शास्त्रपाठोंको बतलाकर मैं सर्व जैनसाधुओंको उपयोगसे बोलने के लिये मुंहपत्ति हाथमें रखनेका साबित करके दिखलाता हूं, इसलिये उन शास्त्र प्रमाणोंको नहीं माननेका वहाना अब ढूंढिये कभी नहीं ले सकते. अपने मतकी पुष्टिके लिये अपनी बनाई किताबोंमें अपने बतलाये हुए शास्त्रोंके प्रमाणोंको अवश्य ही मान्य करने पडेंगे और जो जो आत्मार्थी भव्यजीवहोंगे वो भी झूठे पक्षको छोडकर जिनाज्ञानुसार शास्त्र प्रमाणमुजब सत्यबातको अवश्यही ग्रहणकरके आत्मकल्याणमें लगेंगे.

मुखवस्त्रिका निर्णय, मिथ्यात्व निकंदन भास्कर, गुरु गुण महिमा वगैरह ढूंढियोंके पुस्तकोंके व्यक्तिगत लेखोंकी अलग अलग समीक्षा लिखनेमें पुनरुक्ति जैसा होवे, ग्रंथभी बहुत बढजावे और इन अनपढ ढूंढियोंकी भाषाभी अशुद्ध, छपवानाभी अशुद्ध, शास्त्रोंके पाठभी अशुद्ध लिखने, उसके अर्थभी खोटे खोटे करने इत्यादि बातें लिखनेमेंभी घृणा (कंटाला) होती है, इसलिये उन लोगोंके लेखोंको अलग अलग न लिखते हुए उसका सार लेकर मुहपत्ति बांधनेवाले सर्व ढूंढियोंकी सब शंकाओंका समाधान ढूंढियोंके सामान्य नामसे इस ग्रंथमें लिखते हैं.

प्रथम **भगवतीसूत्र** के नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराते हैं सो प्रत्यक्ष झूठ है, क्योंकि श्री **भगवतीसूत्र** के १६ वें शतक के २ उद्देश में छपे हुए सूत्रवृत्तिके पृष्ट ७०१ में देखिये ऐसे पाठ है :-

"संक्के णं भंते ! देविंदे देवराया किं सावज्जं भासं भासति, अणवज्जं भासं भासति?. गोयमा! सावज्जंपि भासं भासति, अण

वज्जंपि भासं भासति. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चई सावज्जंपि भासं भासति, अणवज्जंपि भासं भासति ?. गोयमा ! जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं अणिजूहित्ताणं भासं भासति, ताहे णं सक्के देविंदे देवराया सावज्जं भासं भासति. जाहे णं सक्के देविंदे देवराया सुहुमकायं णिजुहित्ताणं भासं भासति, ताहे णं सक्के देविंदे देवराया अणवज्जं भासं भासति"

२ **श्रीअभयदेवसूरिजी**की रचीहुई वृत्ति का पाठः-'**सक्के ण**' मित्यादि, '**सावज्जं**' ति सहावद्येन-गर्हितकर्मणेति सावद्या तां '**जाहे णं**' ति यदा '**सुहुमकायं**' ति सूक्ष्मकायं हस्तादिकं वस्तु इति वृद्धाः, अन्ये तु आहुः- '**सुहुमकायं**' ति वस्त्रम् '**अनिजूहित्त**' ति '**अपोह्य**' अदत्त्वा, हस्ताद्यावृतमुखस्य हि भाषमाणस्य जीवसंरक्षणतो अनवद्या भाषा भवति, अन्यथा तु सावद्येति"

३ **प्रश्नोत्तररत्नचिंतामणि** ग्रंथ के पृष्ठ २४२ वे में ऊपर के सूत्र वृत्तिके पाठ का ऐसा भावार्थ लिखा है "प्रश्न :—श्रावक खुले मुंहसे बोले तो उचित है? उत्तरः—श्रावकों को अवश्य मुखपर कपडा या हाथ या मुंहपति रखकर बोलना परंतु खुल्ले मुंहसे न बोलना चाहिये, इस संबंधी **भगवतीजी** सूत्र में **गौतमस्वामीजी** ने प्रश्न पूछा है कि **इन्द्र सावद्यभाषा** बोलता है या **निरवद्यभाषा** बोलता है? उसका उत्तर **भगवंतजी** ने दिया है कि इन्द्र जिस वख्त **मुहपर कपडा या हाथ रखकर** बोलता है उस वख्त **निरवद्यभाषा** बोलता है और खुले मुंहसे बोले उसवक्त **सावद्य भाषा** बोलता है, इस तरह **भगवती** सूत्र के पत्र १३०२ में अधिकार है" (यह सूत्रपाठ की पृष्ठ संख्या सूत्र वृत्ति और भाषासहित पहिले छपी हुई **भगवतीजी** की समझना.)

४ देखो **श्रीभगवती सूत्र**के उपरके मूलपाठ में बोलनेके समय मुंहपर हाथ अथवा वस्त्र रखकर बोलने का कहा है इससे प्रत्यक्ष तया

साबित होता है कि बोलनेके सिवाय अन्य समय मुंहखुल्ला रहता है परंतु हमेशा मुंहपर वस्त्र बंधा हुआ रखना ऐसा सूत्रकार तथा टीकाकार और प्रश्नोत्तरकार का आशय नहीं है, जिसपर भी ढूंढिये लोग भगवती सूत्र के नामसे और प्रश्नोत्तरकार के नामसे हरदम मुंह बंधा रखने का कहकर भोले जीवोंका बहकाते हैं, सो प्रत्यक्षही झूठ है. और उपरके मूल पाठमें सर्व प्रकार के जीवोंकी रक्षा करने के लिये सूत्रकारका कथन है उसका आशय समझे बिना केवल वायुकायके जीवोंकी रक्षा करनेका ठहराते हैं सो भी बडी भूल है क्योंकि सूत्रपाठमें तथा टीकाके पाठमें वायुकायका नाम नहीं है इसलिये केवल वायुकायका कहना बे समझ है.

५ तीर्थंकर भगवान् के जन्म-दीक्षा और केवल ज्ञानके समय इन्द्र आदि देव पहिले भक्ति करते हैं उसके बाद में मनुष्य करते हैं इसलिये शास्त्रकार महाराजाओंने निर्मल अवधिज्ञानी सम्यग्दृष्टि इन्द्रादिक देवोंको विनय विवेकमें श्रेष्ठ कहे हैं, देखो-दशवैकालिक सूत्रके "धम्मो मंगल मुक्किडं, अहिंसा संजमो तवो ॥ देवा वि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो ॥ १ ॥" इस पहिले वाक्य में मुनियोंको धर्ममें दृढ करनेके लिये विवेकी देवोंका दृष्टांत बतलाया है और खास तीर्थंकर भगवान्भी इन्द्रादि देवोंका या गणधरादि मुनियोंका अथवा राजादि आगेवानों का नाम उद्देश लेकरके धर्मोपदेश करते हैं, उसीकेही अनुसार आत्मार्थी भव्य जीव अपनी यथाशक्ति धर्मकार्य करते हैं, इसलिये सावद्य और निर्वद्य भाषा बोलने बाबत प्रसंगवश भगवतीजीमें इन्द्रका नाम ग्रहण किया है. ऐसा समझकर यदि ढूंढिये लोग इन्द्रकी तरह सर्व साधु-साध्वियोंको और श्रावक-श्राविकाओंको भी बोलती वख्त मुंहके आगे हाथसे मुंहपात्ति को या एकेला हाथ को या अन्य वस्त्र को रखकर उपयोग से बोलने का मानते होंवे तब तो इस न्याय के अनुसार भी सर्व साधु और साध्वियों को मुंहपत्ति हाथमें रखना साबित होता है, यही भगवान्की भी खास आज्ञा है और

सूत्रकार व टीकाकार महाराजकाभी यही अभिप्राय है परंतु बिना बोले मौन रहनेपरभी हमेशा मुंह बंधाहुआ रखना यह भगवान्‌की आज्ञानहीं है और सूत्रकार व टीकाकार महाराजकाभी ऐसा अभिप्राय नहीं है, जिसपरभी ढूंढियेलोग भगवान् की आज्ञा के और सूत्रकार व टीकाकारके अभिप्राय विरुद्ध होकर उत्सूत्रप्ररूपणारूप हमेशा मुंहबंधा रखनेका आग्रह जमाते हैं, यह कैसी अज्ञानता है. जब इंद्रका दृष्टांत देते हैं तब तो इन्द्रकी तरह ढूंढियेसाधुओंको भी बोलनेकी वक्त मुंह आगे वस्त्र या हाथ रखना योग्य है, आगमार्थका ऐसा सीधा सरल न्यायको छोडकर हमेशा मुंह बांधनेका अनर्थ क्यों करते हैं. आगम के नामसे इन्द्रका दृष्टांत देते है और आगमार्थ विरुद्ध अपनी कल्पना मुजब करते हैं यह कैसी बे समझी है, भवभीरुओंको ऐसा आगम विरुद्ध करना योग्य नहीं है.

६ अगर कहा जाये कि जीव दयाके लिये हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति बांधते हैं, ढूंढियोंका ऐसा कहनाभी एक प्रकारकी मायाचारीसे प्रत्यक्ष झूठ है, क्योंकि जीव दयाकेलियेही तो **भगवान्**ने मुंहके आगे कपडा या हाथ रखनेका फरमाया है. ढूंढिये लोग दृष्टांत तो इन्द्रका आगे रखनेका बतलाते हैं फिर बांधना अपनी तरफसे लगाते हैं यदि बांधनेमें जीव दयाका लाभ होता तो भगवान् ने जैसे आगे रखनेका बतलाया है, वैसे ही हमेशा बांधनेका भी बतलादेते अथवा आगे रखनेका न बतलाते हुए केवल बांधनेकाही बतला देते. भगवान् के ज्ञानमें तो बांधने में जीव दयाका लाभ देखने में नहीं आया, इसलिये मुंहके आगे हाथमें रखनेका बतलाया है और यह कलयुगी नवीन मतवाले भगवानके भी विरुद्ध बांधनेमें जीवदया का लाभ बतलाते हैं. इससे साबित होता है कि ढूंढिये लोगोंने अपनी अज्ञानता से जीव दयाके नामसे भोले जीवोंको अपने मतमें फंसानेके लिये केवल प्रपंच रचा है परंतु अंतर में सच्ची जीव दया नहीं है. यदि अंतरमें ज्ञान दशा सहित सच्ची जीवदया होती तो भगवान् की आज्ञा मुजब मुंहके

आगे हाथमें रखनेकी सत्य बात को अवश्यही अंगीकार करते और अपनी कल्पना मुजब भगवान्की आज्ञा विरुद्ध होकर हमेशा मुंह को बांधने का अपना नवीन मत कभी न चलाते. देखो विचार करो-ढूंढिये लोग जीव दयाके लिये बांधने का कहते हैं और मुंहके आगे हाथमें रखनेवालों को जीवहिंसा करनेवाले ठहराते हैं तो क्या भगवानने भी जीवहिंसाके लिये हाथमें रखने का फरमाया है. ढूंढिये लोगोंके कहने मुजब तो भगवान् हिंसा का उपदेश देनेवाले ठहरे और आप [ढूंढिये] दयाका उपदेश देनेवाले बने. भगवान् से भी ढूंढियोंकी जीव दया ज्यादे बढ गई. अफसोस है कि भीखमपंथियोंने (तेरहापंथियोंने) तो भगवान्को छद्मस्थावस्थामें भूले बतलाये और इनढूंढियोंने केवलज्ञानी सर्वज्ञअवस्थामेंभी उपरके उनके न्यायसे भूलगये ठहराये, कैसीभारी अज्ञानताहै. आत्मार्थी भव्यजीवोंको मेराइतनाही कहनाहैकि तुम्हारेको भगवान्के वचनपर दृढश्रद्धाहोवे, जन्म मरणादि संसारी दुःखसे छुटने की इच्छा होवे और अन्य भव्यजीवोंकोभी सर्वज्ञ भगवान्का सत्य जैनधर्म बतलाकर परोपकार करनेके लाभ लेनेकी चाहना होवे तो अनादि अविसंवादी जैनलिंगका भेद करके विसंवादरूप मिथ्यात्वका हेतु भूत हमेशा मुंह बांधनेके कलयुगी नवीन मतके प्रपंचको जलदीसे छोड-करके भगवान्की आज्ञामुजब सत्यबातको अवश्यही अंगीकार करो.

७ ढूंढिये कहते हैं कि हम वायुकाय की रक्षाके लिये हमेशा मुंहपत्ति बांधते हैं, यहभी प्रत्यक्ष झूठ है. क्योंकि देखो विचारकरो—मौन रहनेपरभी शरीरके हिलनेसे मुंहपत्ति हर समय हिलतीही रहती है और रास्ते चलनेके समय भी विशेष ज्यादे ज्यादे मुंहपत्ति हिलती रहती है, उससे वायुकायके जीवोंकी रक्षाकरनेके बदले विशेष ज्यादे हिंसा होती है. इसलिये भी हमेशा मुंहपत्ति बांधनेमें कोई लाभ नहीं हैं. और मौनरहने परभी नाकसे तो हरसमय जोरका गरम गरम श्वास चलता रहता है उससे तो वायुकाय व अन्य सूक्ष्म त्रसजीवोंकोभी पीडा होती है. अगर ढूंढियों

के दिलमें वायुकाय के जीवोंकी दया होती तो नाकपर अवश्यही हमेशा मुंहपत्ति बंधी हुई रखते, परंतु नाकपर बांधी नहीं, इससे साबित होता है कि ढूंढियोंने वायुकाय के जीवोंकी रक्षाके लिये मुंहपत्ति नहीं बांधी. किन्तु वायुकायके नामसे बालजीवोंको अपने मतमें फंसानेके लिये ढोंग रचा है औरभी देखो मुंहपत्ति बांधनेमें वायुकायकी रक्षा मानते हैं तो फिर शास्त्र मर्यादा विरुद्ध हो करके हरसमय नीचे लटकता हुआ लंबा ओघा क्यों रखते हैं, शास्त्रकारोंने जीवदयाके लिये ही तो चौवीस (२४) अंगुल दंड के प्रमाणवाला छोटा ओघा रखने का कहा है. जिसपरभी ढूंढिये साधु प्रमाण रहित ज्यादे लंबा रखते हैं इससेभी वायुकाय के जीवोंकी विशेष ज्यादे हिंसा ढूंढिये प्रत्यक्ष करनेवाले हैं.

८ ढूंढिये कहते हैं कि—जैसे बंदुक के फोडने (छोडने) के समय पर उपर के छोटेमुंह (लैंगी) से जीवनहीं मरते वैसेही नाक की हवासेभी जीव नहीं मरते इसलिये हम नाकखुला रखते हैं, यह भी ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठ है, क्योंकि देखो नयेजमानेकी बंदुक फोडने के समय उपरकी लैंगी दब (बंध हो) जाती है इस लिये उससे जीव नहीं मरते, इसी तरह अगर ढूंढिये लोग भी अपने नाक को हमेशा के लिये बंध कर देते होवें तब तो बंदुकका दृष्टांत देनायोग्य है, देखिये—मौनरहनेसे मुंह तो बंध रहता ही है परंतु बंदुक की तरह यदि नाक से भी श्वास बंध कर दिया जावे तो मनुष्य मर जाता है, अगर ऐसेही ढूंढिये लोगभी नाक बंद कर देवें तो जगत में जींदे न रहें. बंदुक के नामसे भोले लोगों को बह-काते हैं. और फिर नाकको खुल्ला रखते हैं यह भी ढोंगबाजी हैं. क्योंकि नाक से तो इतना वेगसे जोरका श्वास चलता है कि कभी कभी डांस, मच्छरादि भी उश्वासके झपाटे से नाक में घुस जाते हैं यह बात जगतमें प्रसिद्ध है. इसलिये नाकसे जीव हिंसा अवश्य ज्यादे होती है, जिसपरभी ढूंढिये नहीं कहते हैं, सो प्रत्यक्ष जूठ है.

९ ढूंढिये कहते हैं कि हमने जीवदयाके लिये हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका स्वीकार किया है परंतु आगमानुसार तो भगवान् की आज्ञाके विरुद्ध होनेसे उत्सूत्र प्ररूपणारूप भाव हिंसाका कारण है, क्योंकि देखो अनादि कालसे सर्व जैनसाधुओंको मुंहपत्ति हाथमें रखनेकी भगवान्की खास आज्ञा थी और है भी. उसके विरुद्ध हमेशा बांधनेका चलाकरके सर्वज्ञ शासनमें विसंवाद खडा कियाहै, उससे अनंत **तीर्थंकर गणधरादि** महाराजाओंकी आज्ञाको उत्थापन किया है तथा भोलेजीवोंको सच्चा जैनसाधु मुंहपत्ति हाथमें रखनेवाला या हमेशा बांधनेवाला कौन है ? ऐसा संशयका कारण होनेसे मिथ्यात्व बढानेका बडा अनर्थ खडा किया है और फिर अपना झूठा पक्ष स्थापन करनेके लिये अनंत **तीर्थंकर** महाराजाओंके **गणधरादि** सर्व साधुओंको हमेशा मुंह बंधा रखनेका प्रत्यक्ष झूठा दोष लगानेकी भारी आशातना करके महान् भयंकर दुर्लभ बोधिका कर्म उपार्जन करनेका हेतु किया है. व करते भी हैं इससे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहरानेमें और बांधनेमें जीवदया नहीं किंतु अनंत संसार परिभ्रमण करनेरूप भावहिंसा है. इसालिये आत्मार्थी भव्यजीवोंको जिनाज्ञा विरुद्ध हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका झूठा पक्ष को छोडकर उपयोगसे बोलनेके लिये हाथमें रखनेका जिनाज्ञानुसार सच्चा जैन मार्ग स्वीकार करनाही हितकारी है.

१० ढूंढिये लोग **भगवतीसूत्र** के अनुसार **इंद्रका** दृष्टांत बतलाकर अपना मत स्थापन करते हैं परंतु इन्हीं **भगवतीसूत्र** के १० वें शतकके ६ उद्देशमें खास इन्हीं **इंद्रने मोक्षके लिये जिनप्रतिमा** की बावना चंदनादिसे **द्रव्यपूजा** विधिपूर्वक भक्ति सहित करके मुकुटादि आभूषण और पुष्पोंके हार वगैरह चढाये हैं, उसके बाद **भावपूजारूप नमुत्थु णं** किया है और **जंबूद्वीपपन्नत्ति, ज्ञाताजी** तथा **जीवाभिगमसूत्रके** कथन मुजब **तीर्थंकर भगवान्का जन्माभिषेक इन्द्रादिदेव मेरुपर्वतके** उपर १६००००००० कलशोंसे करतेहैं और जन्म-दीक्षादि कल्याणकोंकी महीमा

करने के लिये नंदीश्वरद्वीपमें शाश्वतचैत्योंमें जिनप्रतिमाओं की पूजा भक्ति करते हुए अठाई महोत्सव करते हैं, वहां शुभ भावना से इंद्रादि देवोंको कर्मोंकी निर्जरा व अनंतलाभ होता है. उसीके अनुसार एकाँत नर्जराकेलिये मोक्षप्राप्तिके वास्ते श्रावकलोक भी अपनी यथाशक्ति जिन प्रतिमाकी पूजाभक्ति करते हैं, उसका आशय समझे विना निषेध करके धर्मकार्य में अन्तराय बांधकर पापके भागी क्यों बनते हैं ? इन्द्रका कृत्य आप स्वीकार करते हैं और इन्द्रकी तरह श्रावक लोग जिन प्रतिमा की पूजा भक्ति करते हैं उसका निषेध करते हैं. यह कैसी भारी अज्ञानता है।

११. भगवती सूत्र के उपर के मूल व टीकाके पाठमें 'अणिजूहित्ताणं' 'अपोह्य-अदत्त्वा' ऐसा पाठ होनेसे बोलनेके समय उसीवक्त मुंह आगे वस्त्र या हाथ रक्खे विना बोले तो सावद्य भाषा होवे ऐसा वर्तमानकालका कथन है अगर ढूँढिये साधुओं की तरह पहिले से हमेशा मुंह बंधाहुआ रक्खें तो सूत्रकारका वर्तमानकाल आश्रयी ऊपर का कथन नहीं बन सकता, इसलिये ऊपरके सूत्रपाठसे हमेशा मुंहबंधा रखनेका कभी नहीं ठहर सकता. इसबातको संस्कृत प्राकृत व्याकरण पढनेवाले बुद्धिवान् विद्वानूजन अच्छी तरहसे समझ सकते हैं. ढूँढिये बिचारे संस्कृत-प्राकृत व्याकरण पढतेनहीं और गुरुगम्यतासे आगम बांचते नहीं, इसलिये सूत्रपाठका सच्चा अर्थ समझ सकते नहीं. अपनी अज्ञानतासे खोटे २ अर्थ करके भोले लोगोंको अपने पक्षमें फंसालिये और पूजा मान्यताके लिये मतपक्ष जमा बैठे. भगवती सूत्रके नाम से हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका ठहराना प्रत्यक्ष ही सूत्रपाठ की आज्ञा विरुद्ध है. दूसरे विद्वान् आगमपाठ का सच्चा अर्थ बतलावें तो भी लोक लज्जा से अपना झूठाहठ छोड़ना नहीं, परभवसे डरना नहीं, यही भारी अज्ञानता है।

१२. मुंहपर मुंहपत्ति बाँधकर बोलने वालेकी भाषाको एकांत निरवद्य भाषा कहना यहभी ढूँढियोंकी बडी भूल है, क्योंकि मुंह बांध करके भी अपना मतपक्ष स्थापन करनेके लिये शास्त्रविरुद्ध होकर भोले जीवोंको उन्मार्गका उपदेश करते हुए क्रोधादिसे रागद्वेषको बढ़ानेरूप दूसरोंकी निंदा अवर्णवाद बोलने वाले की निश्चय करके सावद्य भाषा कहनेमें आवेगी और मुंहबांधे बिना भी उपयोगसे यत्नपूर्वक शास्त्रानुसार भव्यजीवोंको सत्य धर्मोपदेश करते हुए कषायरहित दूसरोंको प्रीति-हर्ष-संतोष

उत्पन्न करनेवालेकी और मधुर भाषण करनेवालेकी निश्चय करके निरवद्य भाषा कहनेमें आवेगी. देखिये– तीर्थंकर भगवान् मुंहपत्ति नहीं रखते हैं तो भी परोपकारके लिये धर्मोपदेश देनेसे सर्वज्ञ भगवान्की भाषाको एकांत निरवद्य भाषा कहनेमें आती है, इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधनेमें ही एकांत निरवद्य भाषा बोलने का ठहराना बडीभूल है. सर्वज्ञ भगवान्की आज्ञानुसार साधुको मुंहआगे मुंहपत्ति रखकर उपयोगसे हितकारी वचन बोलनेमें ही निरवद्य भाषा कही जाती है परंतु शास्त्रविरुद्ध होकरके हमेशा मुंहबंधा रखनेमें निरवद्य भाषा कभी नहीं हो सक्ती।

१३. ढूंढियोंकी विवेक बुद्धिका नमूना देखिये—भगवती सूत्र के ऊपरकें पाठ पर सें हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का अर्थ ढूंढिये करते हैं, इसपाठ को ही मुंहपत्ति बंधी रखने में दृढ प्रमाण समझ ते हैं परन्तु विवेक बुद्धि से इतना विचार नहीं करते हैं कि 'इन्द्र अपने मुंह आगे वस्त्र या हाथ रखकर बोले तो निरवद्य भाषा बोले' ऐसा अधिकार खास इन्द्र महाराज के लिये ही भगवतीसूत्रमें है एकइन्द्र के जैसाही अधिकार अतित, अनागत और वर्तमानकें सर्व (अनंते) इन्द्रोंका अधिकार समझा जाता है, इसलिये यदि इस अधिकार से मुंहपर मुहपत्ति बंधी रखनेका अर्थ लिया जावे तो सर्व इन्द्र महाराजों को भी अपने मुंहपर मुंहपत्ति बंधी रखने का ठहर जावेगा और गये काल में अनंत तीर्थंकर होगये, आगेकें कालमें अनंत तीर्थंकर होवेगें तथा वर्तमानकाल में अभी २० विरहमान तीर्थंकर विद्यमान हैं उन्होंको वंदनादि करने के लिये, प्रश्नादि पूछकर शंका समाधान करने के लिये, सेवा-भक्ति-पूजा करने कें लिये अनंते इन्द्र आगये, आगे अनंते इन्द्र आवेगें और अभी अनेक इन्द्र महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर महाराजों की सेवा में आते हैं, प्रश्नादि पुछते हैं, वार्तालाप करते हैं, धर्म देशना सुनते हैं परन्तु किसी भी इन्द्रने किसी भी तीर्थंकर महराज के सामने कभीभी अपना मुंह बांधा नहीं, बांधेगे नहीं और बांधते भी नहीं, इसलिये इन्द्र महाराज संबंधी ऊपर के पाठ पर से मुंहपर हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का ले बैठना सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्ध है. अगर ढूंढियों को जिनाज्ञा विरुद्ध कार्य करनें से संसार परिभ्रमण का भय लगता होवे तो उपर के पाठपर से हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनें का अपना झूंठा मत पक्षका कल्पित नये रिवाज को छोड़ देना ही उचित है।

(मुंहपत्ति शब्दसे मुंहपर बांधना नहीं किन्तु हाथमें रखना सावित होता है और मुंहपर बांधे सो मुंहपत्ति; हाथमें रक्खे सो हाथपत्ति, ऐसी ऐसी ढूंढियोंकी सब शंकाओंका समाधान आगे लिखने में आवेगा. यहां तो आगमोंके नामसे भोले लोगों को भ्रम में डाले हैं, उसका खुलासा लिखते हैं)

---

१४. 'मिथ्यात्व निकंदन भास्कर' पुस्तक में भगवती सूत्रके नाम से जमालिके दीक्षा अधिकार वाले पाठसे आठपडवाली मुंहपत्ति जैनी साधुओंको हमेशा वंधीरखनेका ठहरायाहै, सो भी प्रत्यक्ष झूंठ है. क्योंकि भगवती सूत्र के ७ वें शतक के ३३ वें उद्देश में जमालिके दीक्षा अधिकार बावत सूत्रवृत्ति सहित छपे हुए पृष्ठ ४७२ वे में ऐसा पाठ है:—

" जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया तं कासवगं एवं वयासी तुमं देवाणुप्पिया ! जमालिस्स खत्तियकुमारस्स परेणं जत्तेणं चउरंगुलवज्जे निक्खमणपयोगे अग्गकेसे पडिकप्पेहि, तएणं से कासवे जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणा एवं वुत्ते समाणे हट्ठ तुट्ठे करयल जाव एवं सामी तहत्ताणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सुरभिणा गंधोदएणं हत्थपादे पक्खालेइ, पक्खालित्ता सुद्धाए अट्ठपडलाए पोत्तीए मुंहबंधई, मुंहबंधित्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स परेणं जत्तेणं चउरंगुलवज्जे निक्खमणपयोगे अग्गकेसे कप्पइ "

१५. देखो—ऊपरके पाठ में जमालिके पिता ने नाईको बुलवा कर कहा कि तुम जमालिक्षत्रीयकुमारके दीक्षा समय लोच करने के लिये चार अंगुल केश रखकर बाकी के सब केश काट डालो. ऐसी जमालिके पिता की आज्ञानुसार नाईने सुगन्धि जलसे अपने हाथ पैर साफ़ करके शुद्ध आठ पडवाले 'पोत्तीए' याने—अपने धोती दुपट्टे जैसे वस्त्र से अपना मुंह; याने—नाक मुंह दोनों बांधकर जमालिके शिरके केश काटे.

१६. इस पाठपर ढूंढिये कहते हैं कि—यदि नाईके हाथ में मुंहपत्ति होती तो एक हाथ से मुंहपत्ति को मुखपर रखकर एक हाथ से जमालिके शिरके केश कैसे काट सकता. इससे नाईके मुंहपत्ति बंधी हुई थी, इसलिये जैनी साधुओंको भी उसी नाई की तरह हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति बंधी रखना चाहिये. ऐसा ढूंढियों का कहना और 'मिथ्यात्व निकंदन भास्कर.' आदि अपने पुस्तकों में लिखना सर्वथा अज्ञानता जनक प्रत्यक्ष

झूंठ है, क्योंकि केश काटे थे तब नाईने साधुपना नहीं लिया था, वह तो कुटम्बवाला गृहस्थी था और उसने जीव दया के लिये धर्मबुद्धि से अपना मुंह नहीं बांधा था किन्तु प्राचीन काल में राजा महाराजाओं की हजामत करने के समय धोती, दुपट्टा, रुमाल जैसे वस्त्रसे नाईलोग अपना मुंह बांधते थे, उस रिवाज मुजब जमालिके शिरके केश काटनेके समय धनके लोभ से व राज्य कुलकी मर्यादा का विनय करनेके लिये सिर्फ केश काटे थे तब तक मुंह बांधा रक्खा था, मगर हमेशा बंधा नहीं रक्खा था, इस बातका भावार्थ समझे विना नाईके मुख बांधनेको जीवदया के लिये धर्मबुद्धि का हेतु ठहराना और नाईका दृष्टांत बतला कर हमेशा जैनी साधुओं को भी मुंह बांधनेका ले बैठना, यही ढूंढियों की बड़ी अज्ञानता है।

---

१७. श्री ज्ञाताजी सूत्रके नामसे हरदम मुहपत्ति बंधी रखने का कहते हैं सो भी प्रत्यक्ष झूंठ है, क्योंकि देखो-ज्ञाताजी सूत्र के प्रथम अध्ययन में (छपे हुए सूत्रवृत्ति के) पृष्ठ ५३ में मेघकुमार के दीक्षा महोत्सव संबंधी ऐसा पाठ है:—

" सेणिएराया कासवयं एवं वयासी गच्छाहिणं तुमं देवाणुप्पिया! सुरभिणा गंधोदएणं णिक्के हत्थपाए पक्खालेह, सेयाए चउप्फालाए पोत्तीए मुहबंधेत्ता, मेहस्स कुमारस्स चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाउग्गे अग्गकेसे कप्पेहि, तते णं से कासवए सेणिएणं रन्ना एवंवुत्ते समाणे हट्ठ जाव हियए जाव पडिसुणेति २ त्ता सुरभिणा गंधोदएणं हत्थपाए पक्खालेति २ त्ता सुद्धवत्थेणं मुहबंधेति २ त्ता परेणं जत्तेणं मेहस्स कुमारस्स चउरंगुलवज्जे णिक्खमणपाउग्गे अग्गकेसेकप्पति "

१८. ऊपर के सूत्र पाठमें भी श्रेणिक राजा ने नाईको कहा कि तुम सुगंधि जल से अपने हाथपैर साफ़ करके चार पडवाले वस्त्रसे अपना मुंह बांधकर मेघकुमारके दीक्षा के समय लोच करनेके लिये चार अंगुल केश रखकर बाकी के शिर पर के सब केश काट डालना. ऐसा श्रेणिक राजाका हुक्म सुनकर नाईने सुगंधि जलसे हाथ पैर साफ़ करके अपने शुद्ध वस्त्रसे अपना मुंह अर्थात्-नाक मुंह दोनों बांधकर मेघकुमार के दीक्षा समय लोच करने योग्य ४ अंगुल केश रख कर बाकीके सब केश काटे.

१९. प्रिय पाठकगण! देखो ऊपरके पाठमें राजाकी आज्ञा से नाईने सिर्फ उस प्रयोजन के लिये मेघकुमार को अपने नाककी दुर्गंधी का

स्पर्श न होनेके लिये अपने नाक मुंह दोनों बांधे थे, मगर हमेशा मुंह बंधा नहीं रक्खा था और दीक्षा लेकरके मेघकुमारने भी अपनी मुंहपत्ति सें ढंढियों की तरह हमेशा अपना मुंह बंधा नहीं रक्खा था, तिसपर भी ढूंढिये लोग सूत्रकार महाराजके अभिप्राय को व सूत्रपाठ के शब्दार्थ को भी समझे विना ही जैनी साधुओं को हमेशा हरदम मुंहपत्तिसे अपना मुंह बंधा हुआ रखनेका ठहराने वाले कैसी भारी भूल करते हैं।

२०. देखो-श्रावकलोग जिनमन्दिरमें पूजा करने को जाते हैं, तब अपने शिरके उपरके भागमें गांठ आवे वैसा लम्बा वस्त्र लेकर अपने नाककी दुर्गन्धि से जिनराजकी (जिन प्रतिमाकी) आशातना न होनेके लिये मुखकोश, याने-अपने नाक और मुंह दोनों बांधते हैं. वैसेही उस नाईने भी मेघकुमार की आशातना न होने के लिये अपने वस्त्रसे नाक-मुह दोनों बांधे थे, मगर ढूंढिये साधुओंकी तरह दोरा डालकर हमेशा अकेला मुंह नहीं बांधा था. तिसपर भी ढूंढिये लोग उपरके पाठको आगे करते हैं तो फिर दोरा क्यों डालते हैं और नाक खुल्ला क्यों रखते हैं ? अगर उपर के पाठ मुजब मुंहपत्ति बांधनेका मानते होवें और ढूंढियोंकी ऊपर के पाठ उपर दृढ श्रद्धा होवे तब तो मुखकोशकी तरह लंबा वस्त्र लेकर हमेशा नाक और मुंह दोनों बंधे रखने चाहिये. वडे अफसोस की बात है कि ढूंढिये साधु आगमोंका आशय समझे विना राजनीति सम्बन्धी नाईका अनुकरण करके धर्ममार्ग में हमेशा मुंह बन्धा हुआ रखकर जैन शासन की बड़ी हीलना करवाते हैं. और हमेशा मुहपत्ति बन्धी रखनेका स्थापन करते हुए उत्सूत्र प्ररूपणा से अपने संयमकी हानी करके भोले जीवोंको उन्मार्गमें डालकर अपना भव बढ़ाते हैं, इसलिये आत्मार्थी भव्यजीवोंको हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखने रूप मिथ्यात्वी रिवाज को छोड़ देना ही योग्य है.

२१. देखो-मेघकुमार, जमालि, महाबल, गौतम, समुद्र, सागर, गंभीर, स्तिमित, अचल, कपिल, अक्षोभादि सैंकडों, हजारों राजकुमार व राजा, महाराजा और सेठ, सेनापति, सार्थवाह वगैरके दीक्षा लेने के अधिकार भगवती, ज्ञाताजी, अन्तगडदशा, अनुत्तरोववाई वगैरह आगमों में आये हैं वहां सब जगहों पर मेघकुमार व जमालि क्षत्रीय कुमारकी तरह दीक्षा समय लोच करने योग्य केश काटने के लिये उसी समय गृहस्थी

नाई अपना नाक-मुंह बांधकर राजकुमारोंके शिरके केश काटते थे. ऐसा अधिकार भगवती आदि आगमों में आया है परन्तु दीक्षा लेकर किसी भी राजकुमारादि मुनिने अपना मुंह मुहपत्ति से बांधा ऐसा अधिकार किसी भी आगममें किसी जगह भी नहीं आया. इससे भी साबित होता है कि ढूंढ़ियों की तरह जैन मुनियोंको हमेशा मुह बन्धा रखना जैनागमों में नहीं लिखा. जिस पर भी ढूंढ़िये लोग नाईके मुख बांधने का पाठ बतलाकर उसका आशयसमझे विना साधुपने में हमेशा मुह बन्धा रखतेहैं यह कैसी भारी लज्जा कारक निर्विवेकता है, नाईने केश काटने (हजामत बनाने) के लिये धनके लोभसे अपना मुह बांधा था.केश काटे बाद खुला कर दिया था, परन्तु हमेशा बन्धा नहीं रक्खा था, यह बात प्रसिद्धही है, तो भी ढूंढ़िये लोग हमेशा अपना मुंह बन्धा रखते हैं, सो किस के केशकाटने के लिये बांधते हैं ? साधु कहलाकर उलटा गृहस्थी के जैसा आचरण करते हैं इससे इन लोगों में वीतराग भगवान्का शुद्ध संयम धर्म नहीं है।

२२. ढूंढियों की दया का नमूना देखो—ढूंढिये कहते हैं कि-देखो दीक्षा लेने के समय जमालि कुमार ने और मेघकुमारने कैसी दया पलाई; नाईको भी खुल्ले मुंह बोलने न दिया, नाई को मुंह बंधवाकर यत्नासे केश काटने का कार्य करवाया था, ऐसेही हम लोग भी नाई की तरह यत्ना के लिये ही मुंह बांधते हैं. यह भी ढूंढियों का कथन वे समझ काही है, क्यों कि केश काटने (हजामत करने) के समय तो प्रायः करके नाई मौन हो करके ही हजामत करता है वहाँ बातें करने का अवसर नहीं हैं, इसलिये हजामत करने के समय मुंह बाँधने का कोई भी कुछ भी प्रयोजन नहीं हैं किन्तु उस समय तो सिर्फ नाक से ही दुर्गंधी आती हैं उसका ही बचाव करने का प्रयोजन होनें से मुंह बाँधा जाता हैं, उसके साथ नाकभी बाँधनें में आता हैं, इसलिये नाईनें नाक की दुर्गंधी का बचाव करने के लिये मुंह बाँधा था किन्तु यत्ना पूर्वक बोलनें के लिये नहीं. और इतने पर भी नाईके मुहबाँधनेंको ढूंढिये लोग यत्ना समझते होंवे तो ढूंढियों की दीक्षा समय ऐसाक्यों नहीं करवाते. दीक्षाके वरघोडे में हाथी, घोडे, बग्गी, रथ वगैर लेजाते हैं व हिन्दू-मुसलमानोंको बुलवाकर अनेक तरहके वाजित्र क्यों बजवाते हैं, स्त्रियें भी खुल्ले मुंह गीत गाती हुई रास्ता में चलती हैं और

हजारों लोग दीक्षा की प्रसंशा करते हुए खुल्ले मुंह बोलते हैं परन्तु उस समय नाई की तरह कोई भी मुंह बाँधकर नहीं बोलता. अगर ढूंढियों के दिल में सच्ची दया की यत्ना होवे तबतो दीक्षा के वरघोडे में हाथी घोडे वगैरह न लाने चाहिये, वाजित्र बजाने वालों को खुल्ले मुह से वाजित्र न बजाने देने चाहिये, अपनी भक्त स्त्रियों को भी मुह बंधवाकर गीत गवाने चाहिये, और सब भक्तों को मुह बन्धवा कर वरघोडे में दीक्षामें बुलवाने चाहिये, उस समय नाई को भी मुंह बंधवा कर हजामत करवाने को बुलवाना चाहिये और परदेशी भक्त उस प्रसंग पर आवें उन्हों की भोजन भक्तिके लिये भट्टी न चलाते हुए सबको उपवास करवाने चाहिये, तबतो नाई के मुंह बाँधने की यत्ना का दृष्टाँत देना ढूंढियों का वाजवी हो सके और सच्ची दयाकी यत्ना समझी जावे परन्तु उपर मुजब सबके मुंह बाँधने का कार्य करते व करवाते नहीं, इसलिये मायाचारी से व्यर्थ ही भोले लोगोंको भ्रममें डाल कर हमेशा मुह बाधने का झुठाही ढोंग ले बैठे हैं.

---

२३. आचारांग सूत्रके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बाँधने का ढूंढिये कहते हैं सो भी झूंठ है, क्योंकि देखो आचारांग सूत्रके ११ वें अध्ययनके ३ उद्देश में मूलसूत्र गुजराती भाषांतर सहित छपेहुए पृष्ठ २४७ वें में ऐसा पाठ है,

"जे भिक्खुवा वा भिक्खुणी वा ऊसासमाणे वा णीसासमाणे वा कासमाणे वा छीयमाणे वा जंम्भायमाणे वा उड्डोएण वा वायणिसग्गे वा करेमाणे पुव्वामेव आसयं वा पोसयं वा पाणिणा परिपिहित्तातओ संजयामेव ऊससेज्ज वा जाव वायणिसग्गं वा करेज्जा"

२४. देखो—इस पाठ में साधु साध्वीको उश्वास; निश्वास लेते, खांसी, छींक, उवासी, डकार वातोत्सर्ग करते पहिले मुह व अधोभाग हाथ से ढांककर पीछे यत्नापूर्वक करने का कहा है, इससे सावित होता है कि साधु साध्वियोंके मुंह हमेशा खुल्ले रहते हैं परन्तु बंधे हुए नहीं यदि बंधेहुए होते तो उश्वासादि लेते हाथसे मुंह ढांकने का सूत्रकार कभी न कहते और यहां तो खास मूलपाठ में मुंह आगे हाथ रखनेका खुलासा कहा है, इस लिये मुंहपत्ति हाथ में रखना निश्चय होता है, यहांपर सूत्रकार महाराज का खास अन्तर आशय यही है कि उश्वास या छींक वगैरह करते हाथ से मुंह ढांकना, याने-भगवती सूत्रके उपर के पाठानुसार हा-

थसे वा मुंहपत्ति आदिवस्त्र से नाक-मुंह दोनों ढकने चाहिये, इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधते हैं सो सूत्र विरुद्ध है।

२५. यहां पर ढूंढ़िये कहते हैं कि मुंहपत्ति बंधी हुई होने पर भी उश्वासादि लेते मुहके उपर चली जाती है इसलिये हाथ से दबाने का कहा है. ढूंढ़ियोंका ऐसा कहना भी झूंठ है, क्योंकि मुंहपत्ति लंबी चौडी होने सें यदि बंधी हुई होवे तो भी उश्वास डकार लेते मुंहपरसे अलग नहीं होसकती यह प्रत्यक्ष प्रमाण है. और मुंहपत्ति का उपयोग ही खास करके मुंहके लिये है याने-छींक उबासी वगैरह आवे तब नाक मुंह दोनों से मुंहपत्ति द्वारा जीव रक्षा करने के लिये मुहपत्तिका उपयोग होता है. यदि मुंहपत्ति केवल मुहपर हमेशा बंधी हुई होवे तो जब २ छींक आवे तब २ नाकपर मुंहपत्तिका उपयोग नहीं होसकता उससे तो मुंहपत्ति का रखना ही निष्फल हो जावेगा, और सूत्रकार महाराज ने नाक मुंह दोनोंपर उपयोग करनेका कहा है इसलिये हमेशा मुंह पर बंधीहुई रखना सूत्र विरुद्ध है. देखो-विचार करो जब कभी छींक आवे तब नाक आड़ा हाथ रख कर जीवरक्षा करनेका मान लेओगे तो छींककी तरह भाषण करनेके समय भी मुंहके आगे केवल अकेला हाथ रखकर जीवरक्षा करने का मान लेना पडेगा और मुंहपत्ति रखने का हेतुही उड़ जावेगा. तथा मुंहपर मुंहपत्ति व नाक पर हाथ ऐसी दो बातें अलग २ उपयोग में लानेंका किसी भी आगम में नहीं लिखा, किन्तु एकही लिखा है इसलिये यहां हाथ कहनेसें सूत्रकार महाराजने मुंहपत्ति रखनेका अन्तरंग अपना आशय बतलाया है. इसलिये अतीव गंभीर आशय वाले, नयगर्भित व अनंत गम, पर्याय, अर्थयुक्त आगमार्थका और स्थीवरकल्पि साधुसाध्वी व जिनकल्पि आदि सामुदाायिक इस सामान्य पाठका यथायोग्य भवार्थको गुरु गम्यता सें धारण किये बिना अपनी कल्पना मुजब अर्थका अनर्थ करके उत्सूत्र प्ररूपणासे हमेशा मुहपत्ति बंधी रखने की खोटी प्ररूपणा करना किसी भी आत्मार्थी ढूंढ़िये को योग्य नहीं है।

२६. ऊपर के पाठ पर फिर भी ढूंढिये ऐसा कहते हैं कि- रात्रिको साधु साध्वी सो जावें, सोने बाद मुंहपत्ति को मुंहपरसे खोलकर अलग रक्खी होवे और जब छींक-उबासी-डकार आदि आवे तब मुंह आगे हाथ रखने का कहा है परंतु दिन में तो मुंहपत्ति मुंह पर बंधी हुई होवे

उस वक्त छींक उबासी वगैरह आवें तब मुह आगे हाथ रखने की कोई भी जरूरत नहीं है, इसलिये आचारांग सूत्र का ऊपरका पाठ रात्रि संबंधी है परन्तु दिन संबंधी नहीं है. ऐसा ढूंढियों का कहना प्रत्यक्ष झूंठ है, क्यों-कि ऊपर के पाठको रात्रि संबंधी समझकर दिन में हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखने का ढूंढियों ने मान लिया है सो भी नहीं बन सक्ता. देखिये- ऊपर के पाठमें छींक आवे तब मुंह आगे हाथ रखनेका कहा है सो छींक दिन में भी आती है और रात्रि में भी आती है, इसलिये ऊपर का पाठ रात्रि-दिन (अहोरात्रि) हमेशाके लियेही है और छींक की तरह उबासी, डकार, उश्वास, निश्वास आवे तब भी मुंह आगे हाथ रखने का कहा है यह सब बातें रात्रि में और दिन में हमेशाही होती हैं, इसलिये रात्रि की तरह दिन में भी साधु साध्वियों के मुंह हमेशा खुल्लेही रहते हैं. जब मुंह खुल्ले होवें और डकार, उबासी, उश्वास, निश्वास आवे तब मुंह द्वारा निकलती हुई जोर की गरम श्वास (बाफ) से किसी जीव को तकलीफ़ न होने पावे इसलिये मुंह आगे हाथ (मुंहपत्ति) रखने का कहा है, अगर मुंह बंधे हुए होवें तो मुंह आगे हाथ रखनेका सूत्रकार महाराज कभी न कहते, यह बात अल्प बुद्धि वाला भी अच्छी तरह से समझ सक्ता है, इसलिये ऊपर के पाठ से दिनमें हमेशा मुंह बन्धा रखने का ठहराना प्रत्यक्ष ही झूंठ है।

---

२७. फिरभी देखिये खास ढूंढियोंकाही छपवाया हुआ आवश्यक सूत्र के चौथे प्रतिक्रमण आवश्यक में साधु प्रतिक्रमण सूत्रके अधिकार में छपे हुए पृष्ठ १५ वें में " कुइए कक्कराइए छीए जंभाइए" इस मूल पाठ के अर्थ में " उघाडे मुख बोलाया हो या छींक उबासीली हो" ऐसा लिखा है. तथा छट्ठे पच्चक्खाण आवश्यक के अधिकार में छपे हुए पृष्ठ ४० वें में नवकारसी पौरषी आदि पच्चक्खाणके " अणत्थणाभोगेणं सहसागारेणं " इस पाठके अर्थमें नवकारसी पौरषी एकासणा आदि पच्चक्खाण किये होवें उसमें पच्चक्खाण का समय पूरण हुए बिनाही " भूलसे अनायास खानेमें आजावे और सहसात्कार वर्षाद में या दुग्धादि परिवर्तन करते अनायास-उच्छलकर छांटा मुखमें पड़ जावे" तो पच्चक्खाण भंग न होवे ऐसा लिखा है. और दूसरा चौवीसत्था आवश्यक के अधिकारमें काउसग्ग करने संबंधी " अन्नत्थ उससीएणं नीससीएणं खासीएणं छीएणं जंभाइएणं " इस पाठ के अर्थ में काउसग्ग में " ऊंचा श्वास लेनेका, नीचा श्वास लेनेका

खांसीका छींकका उबासीका डकार आदिका आगार है" याने-काउसग्ग में खांसी छींक उबासी आदि आवें तब उसकी यत्ना करनी पडे तो काउसग्ग भंग न होवे ॥ ऊपरके लेखोंपर विवेकबुद्धि पूर्वक दीर्घदृष्टिसे विचार किया जावे तो साधु-साध्वियों के मुंह हमेशा बंधे हुए नहीं किन्तु खुल्ले रखनेका ही ठहरता है, मुंह खुल्ले होंवे तभी बिना उपयोगसे अकस्मात उघाडे मुख बोला होवे, छींक उबासी ली होवे तो शामको प्रतिक्रमण में उसका मिच्छामि दुकडं देनेमें आता है. अगर हमेशा दिनभर मुंह बंधा हुआ होवे तो खुल्ले मुख बोलने का, छींक, उबासी लेनेका संभवही नहींहै. परन्तु खुल्ले मुख होंवे तभी उघाडे मुख बोलनेका छींक उबासी लेनेका बन सकता है। और नवकारसी पौरषी आदि पच्चख्खाण में भी दिनमें हमेशा साधु-साध्वियों के मुख खुल्ले होंवे तभी अनायास से भूलकरके कोई वस्तु मुखमें डालने में आजावे या हवा आदि के संयोग से वर्षा के जलका बिंदु अकस्मात उच्छल कर मुखमें गिरजावे अथवा दूध-दही-छाछ-दाल-कढी क्षीर वगैरह कोई वस्तु पात्र में लेते समय वा एक पात्रमें से दूसरे पात्र में परिवर्तन करते समय छाँटा उच्छलकर अकस्मात मुखमें गिर जावे तो पौरषी एकासणा आयंबिल उपवास वगैरह के पच्चख्खाण भंग न होवें. यह बात जब साधु-साध्वियों के हमेशा मुख खुल्ले होवें तभी अकस्मात बन सकती हैं परन्तु हमेशा मुख बंधे होवें तो कभी नहीं बनसकती. इसी तरह से आहार-पाणी-लघुनीत-(पैशाब) बडीनीत (जंगल) और देव-गुरु को वंदनादि करने को जाने आने (गमनागमन) संबंधी या शाम-सवेर (देवसी राई) प्रतिक्रमण करने संबंधी काउसग्ग करने पड़ते हैं उसमें भी साधु साध्वियों के मुख खुल्ले होवें तभी काउसग्ग में छींक-उबासी डकार आदि के आगार रक्खे जाते हैं, अन्यथा नहीं. क्योंकि काउसग्गमें छींकादि आवे तब नाक द्वारा जोरसें गरम श्वास बाहिर निकलने से छोटे जीवोंको तकलीफ होती है और छींकादिककी यत्नाके लिये पहिले से ही नाकको बांधकर कोई भी काउसग्ग नहीं करता, इसलिये काउसग्गमें छींक आवें तब मुख की तरह नाककी भी अवश्यही यत्ना करनी पडती है. याने-छींक वगैरह के समय जीव रक्षाके लिये मुंहपत्तिको नाक और मुंह दोनों के आगे रखने का काम पडे तब हाथ उंचा करने में काउसग्ग भंग न होवे, इसलिये आवश्यक सूत्रके ऊपर के पाठोंके प्रमाणों से और खास

ढूंढियों के ही छपवाये हुए अर्थ के प्रमाण से भी साधु साध्वियों के दिन में भी हमेशा मुख खुल्ले रखने का अच्छी तरह से साबित होता है. जिस पर भी दिन में मुख बंधा रखने का कहते हैं, मानते हैं, आग्रह करतेहैं, सो प्रत्यक्ष ही झूंठ है। छींक के समय जैसें मुख से जोरकी गरम हवा निकलती है, वैसेंही नाकसें भी जोर की गरम हवा निकलती है. यह बात जगत मान्य और सर्व दर्शन सम्मतही है. इसको ढूंढिये भी इनकार नहीं कर सकते, इससे छींक वगैरह आवें तब मुखकी तरह नाक कीभी यत्ना करना (ढकना) प्रत्यक्षही सिद्ध है. इसलिये अगर ढूंढिये सच्चे दयालु कहलाना चाहते होवें तो मुख की तरह नाक भी हमेशा बांधा हुआ रक्खें या नाक की तरह मुखभी हमेशा खुल्ला रखना स्वीकार करें, नहीं तो झूंठे हठाग्रह से आत्म कल्याण कभी नहीं हो सकेगा.

२८. ढूंढियोंकी न्यायबुद्धिका नमूना देखिये– रात्रि और दिनमें हमेशा मुंहपत्ति से मुख बन्धा रखनेका ढूंढियोंका मंतव्य है, इसलिये दिन में मुख बन्धा रखना और रात्रि को खुल्ला कर देना, यहभी भोले लोगोंको अपने मतमें लानेका मायाप्रपंच ही है. अगर ढूंढिये कहें कि रात्रिको बोलनेका काम नहीं पड़ता इसलिये सोनेंके समय मुंहपत्ति खोल डालते हैं, यह भी ढूंढियों का कहना उचित नहीं है, क्योंकि देखो–अगर रात्रि को बोलने का काम न पडने से मुंहपत्ति मुखपरसे खोल डालने का ढूंढियों को मान्य होवे तब तो रात्रिकी तरह दिन में भी जब बोलनेका काम न पडे तब मुंहपत्ति को खोलकर अलग रखने का ढूंढियों को मान्य करना ही पडेगा और बिना बोलने के समय जब मुंह खुल्ला रखने का मान्य करेंगे तो दो चार घंटे या एक दो पहर अथवा २, ४, ८, दिन मौनव्रत लेनेवाले या ध्यान में मौन रखने वालों को मुख खुल्ला रखने का ढूंढियोंको मान्य करना ही पड़ेगा और जब मौन रहने के समय मुख खुल्ला रखने का मान्य हुआ तो हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का ढूंढियों का मंतव्य ढूंढियों के कथनसे ही (ढूंढियो के न्याय से ही) झूंठा ठहर जाता है और बिना बोले मौनस्थ ध्यानमें भी मुंहपत्ति बंधी हुई रखनेका ढूंढिये मान्य रक्खेंगे तो रात्रिको भी हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका मान्य करनाही पडेगा. जब बिना बोलने के समय भी रात्रि-दिन हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका मान्य करेंगे तो बिना प्रयोजन हमेशा मुंह बंधा रखने रूप अज्ञानियों की तरह निष्फल

क्रिया की प्राप्तिरूप दोष आवेगा, इसलिये आचारांग सूत्र के ऊपरके पाठ पर दिन में मुंह बंधा रखने का और रात्रि को मुख खुला रखनेका मानना ढूंढियोंका कभी नहीं बन सक्ता, इस बातको विवेकी पाठक गण अच्छी तरह से समझ सकते हैं

---

२९. ढूंढियेलोग विपाक सूत्र के नाम से हमेशा मुंहपत्ति बंधी हुई रखनेका कहते हैं सो भी बडी भूल है, क्योंकि देखो पूर्वभव में उपार्जन किये हुए अशुभ कर्मोंके ऊदयसे मृगापुत्र जन्मसें अन्धा व रोगी और बहुत दुर्गंधी शरीरवाला होनेसे मृगाराणीने ऊसको भूमिघर (भौंयरा) में गुप्त रक्खा था तथा खास आपही उसको भोजनादि ले जाकर पहुंचाती थी. एक समय गौतमस्वामी श्री वीरभगवान् की आज्ञा लेकर जन्मांध रोगी मृगापुत्र को देखनेके लिये मृगारानीकें पास गये थे, तब वहां पर उस प्रसंगसे सूत्रकार महाराज ने 'विपाक' सूत्रकें प्रथम अध्ययन में छपेहुए सूत्रवृत्तिके पृष्ठ ३७ में ऐंसा पाठ कहा है:—

" मियादेवी भगवं गोयमं एवं वयासी–एहणं तुब्भे भंते ! मम अणुगच्छई जहाणं अहं तुब्भं मियापुत्तं दारगं उवदंसेमि, ततेणं से भगवं गोयमे मियादेविं पिट्ठओ समणुगच्छत्ति, ततेणं सा मियादेवी तं कट्ठसगडियं अणुकढ्ढमाणी, अणुकढ्ढमाणी जेणेव भूमिघरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता चउप्पुडेणं वत्थेणं मुंह बंधेति, मुहबंध माणी भगवं गोयमं एवं वयासी–तुब्भे वि णं भंते ! मुहपोत्तियाए मुहबंधह. ततेणं से भगवं गोयमे मियादेवीए एवं वुत्तेसमाणे मुहपोत्तियाए मुहबंधति, ततेणं सा मियादेवी परम्मुही भूमिघरस्स दुवारं विहाडेति. तते णं गंधे निगच्छति से जहा नामए अहिमडेति "

३०. देखो—इस सूत्र पाठ में मृगाराणीने गौतमस्वामीको कहा कि हे भगवन् ! आप मेरे पीछे २ आओ मेरा पुत्र आपको बतलाऊं, ऐसा कह कर मृगाराणी मृगापुत्रके लिये आहारादि भोजन की हाथ गाड़ी, खींच ती हुई आगे चली, गौतमस्वामी उसकें पीछे २ चले, जहाँ भूमिघर (भौंयरा) का दरवाजा था, वहाँ आये, वहां आकर चार पड़ वाले वस्त्रसें मृगापुत्रकें शरीर की दुर्गन्धीका बचाव करने कें लिये मृगारानी ने पहले अपना मुंह, याने–नाक मुंह दोनों बाँधलिये, फिर गौतमस्वामी को भी कहा कि हे भगवन् आपभी आपनी मुहपत्ति से अपना मुंह बांधो, अर्थात्–नाक

मुंह दोनों बांध लेवो, ऐसा मृगाराणीका वचन सुनकर गौतमस्वामीने भी दुर्गन्धि का बचाव करने के लिये अपनी मुंहपत्ति से अपने-नाक मुंह दोनों बाँधलिये, उसके बाद मृगाराणी ने भूमिघरको पीठ देकरके पिछाडी हाथ करके दरवाज़ा खोला तब उसमें से सर्प के मुर्दे से भी अधिक दुर्गन्धि निकली और मृगापुत्रको महान् तीव्र वेदनाको भोगता हुआ गौतमस्वामी ने देखा, देख कर अशुभ कर्मों की विटम्बना से वैराग्य भावना करते हुए वहाँ से निकल कर भगवान् श्री वीर प्रभुके पास में आये।

३१. देखो—ऊपर के पाठ में मृगाराणी ने पहले अपने वस्त्र से अपना मुंहबांधा और पीछे गौतमस्वामि को भी अपनी मुंहपत्तिसे अपना मुंह बाँधने का कहा है, जिस पर भी ढूंढिये लोग गौतम स्वामीको अन्य वस्त्र से मुंह बाँधनेका कहते हैं, मूल पाठमें खुलासा पूर्वक मुंहपत्ति शब्द होने पर भी मुंहपत्ति के अर्थ को छुपाते हैं, यह भी मायाचारी ही है और उपरके मूल पाठसे यह भी साबित होता है कि ढूंढियोंकी तरह यदि गौतमस्वामी के मुंहपर मुंहपत्ति बंधीहुई होतीतो मृगाराणी गौतमस्वामी को अपनी मुंहपत्तिसे मुंह बाँधनेका कभी न कहती, किन्तु दूसरे अन्य वस्त्र से या हाथ से नाक ढकने का कहती, सो कहा नहीं और मुंहपत्ति से ही मुंह अर्थात् नाक मुंह दोनों बाँधनेका कहा है; इससे गौतम स्वामीके हाथ में मुहपत्ति थी, ऐसा मूल सूत्र पाठसे प्रकटतया अच्छी तरह से साबित होता है. जिसपर भी ढूंढिये लोग गौतम स्वामीके मुंह पर मुंहपत्ति बंधी हुई थी; ऐसा कहते हैं, सो गणधर महाराज पर प्रत्यक्ष झूठा दोष लगाते हैं और उत्सूत्रप्ररूपणा से महान् दोष के भागी बनते हैं, तथा हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखते हैं सो भी उपरके सूत्रपाठ से सर्वथा विपरीत है।

३२. यहांपर ढूंढिये कहतेहैं कि गौतमस्वामीका मुंहतो बंधा हुआ था परन्तु नाक बांधने का कहाहै, ढूंढियों का ऐसा कहना भी प्रत्यक्ष झूंठ है. क्योंकि देखो- मृगाराणी के और श्रीगौतमस्वामीके बाबत दोनों जगह मुंह बांधने का एकसाही पाठ है, इसलिये यदि गौतमस्वामी का मुंह बन्धा हुआ मानोंगे तो मृगाराणी का भी पहिलेसेही मुंह बंधा हुआ मानना पडेगा. और मृगाराणी का मुंह खुला था परन्तु उस वक्त बांधा था, ऐसा मानोंगे तो इसी तरहसे गौतमस्वामीका भी पहिलेसे मुंह खुला था.ऐसा मान्य करनाही पडेगा क्योंकि उस वक्त मुंहको बांधनेके बाबत

सूत्र पाठ दोनों के लिये एकही समान होने पर भी एक जनेका मुंह बंधा हुआ और एक जने का मुंह न बन्धा हुआ ऐसा पूर्वापर विरोधी (विसंवादी) अर्थ कभी नहीं होसकता. ढूंढिये लोग मृगाराणी का मुंह खुला मानते हैं उसी तरह गौतम स्वामी का मुंह भी खुला मानना यहतो सर्व दर्शन सम्मत जगत प्रसिद्ध न्याय की बात है. इसलिये गौतम स्वामीका मुंह बंधा हुआ कहना प्रत्यक्ष झूंठ है।

३३. गौतम स्वामीजी जैसे बडे पुरुषोंको नाक बांधो ऐसा कहना शोभेनहीं इसलिये मुंहबांधो ऐसाकहाहै. ढूंढियोंका ऐसाकहना भी प्रत्यक्ष झूठ है, क्योंकि मुंह बांधो ऐसा कहने से नाक मुंह दोनों बांधनेका अर्थ खास मूल आगमों में प्रसिद्ध है देखिये- भगवती-ज्ञाताजी वगैरह आगमों में जमालि-मेघकुमारादि राज्य कुमारों की दीक्षाके लिये लोंच करने योग्य केश रखकर बाकीके सब केश काटनेके लिये श्रेणिकादि राजाओंने नाईयों को मुंह बांधो ऐसा कहाथा उससे नाक मुंह दोनों बांधेथे परन्तु नाईयों के मुंह पहिलेसे खुले थे, इसीतरह से यहां परभी मुंह बांधो ऐसा कहनेसे उसी समय नाक मुंह दोनों बांधे गये परन्तु पहिलेसे गौतम स्वामीका मुंह खुला था ऐसा ठहरता है इसलिये गौतम स्वामीके पहिलेसे मुंह बंधाहुआ ठहराना प्रत्यक्षझूठहै. यद्यपि दुर्गन्धी नाकसेंआतीहै परन्तु "मुहपोत्तीयाए मुहबंधेह" ऐसाकहनेसे उसीसमय नाक मुंह दोनों बांधेहैं इसलिये पहिले से मुंह बंधाहुआ कभी नहीं ठहर सकता. जगत में यह बात प्रसिद्ध ही है कि 'मुख कोशबांधो' ऐसा कहने से नाक मुंह दोनोंके मुख कोश बांधा जाता है और 'मुंह आगे वस्त्र रक्खो' ऐसा कहने से नाक मुंह दोनोंके आगे वस्त्र रखने में आता है इसलिये गौतम स्वामीके पहिलेसें मुंह बंधा हुआ ठहराने बाबत ढूंढियोंकी कुतर्क करना सब मिथ्या होनेसे निष्फल है।

३४. फिरभी देखो विचारकरो- कोई राजा-महाराजा-सेठ-सेनापति वगैरह पुन्यवान् उत्तम पुरुष कदाचित् कुछ कार्यके प्रसंग से किसी दुर्गंधीकी जगह चले गये हों तो उस वक्त दुर्गंधीका बचाव करनेके लिये अपने मुख आगे वस्त्र देते हैं, याने-अपने नाक और मुख दोनोंको ढकते हैं. तथा बड़े बड़े डोक्टर लोगभी किसी रोगीके दुर्गंधी वाली जगहकी चीर फाड करने के समय अपने मुख बांधते हैं, याने-नाक मुख दोनों को वस्त्र से आच्छादित करते हैं और राजाओंके आपसके युद्धमें भी शत्रुकी तरफ

सें जहरी धुआं आता होतो उसका बचाव करनेके लिये नाक मुख दोनों बाँधे जाते हैं, यह सब बातें प्रसिद्ध हैं। इन बातोंका विचार किया जावे तो राजा-महाराजा व बडे २ डाक्टर और राज्य सैन्यके सब लोग हमेशा अपना मुख बंधा हुआ रखने वाले हैं व दुर्गंधी वगैरह के बचावका काम पडने पर केवल अकेला अपना नाक ढकने (बांधने) वाले हैं, ऐसा कभी नहीं ठहर सक्ता और कोई विवेकी बुद्धिवान् इस बातको मान सकता भी नहीं. इसीतरहसें गौतमस्वामी भगवान् ने भी मृगापुत्र के शरीरकी दुर्गंधी का बचाव करने के लिये अपनी मुंहपत्ति के वस्त्र से अपना मुख बाँधाथा, थाने-नाक मुंह दोनों बांधे थे, इसलिये गौतम स्वामी भगवान् का मुख पहिले से ही हमेशा खुल्ला ही था. यह ऊपरके जगत प्रसिद्ध बातोंके न्याय से भी साबित होता है. परन्तु मुख पहिले से बंधा हुआ था ऐसा किसी तरह से साबित नहीं हो सक्ता. इसलिये ढूंढिये लोग गौतमस्वामी भगवान् का पहले से मुख बंधा हुआ ठहराते हैं, सो ऊपर की बातों के न्याय से प्रत्यक्ष झूठ है. (मुंहपत्तिसे नाक मुख दोनों किस तरहसे बांधनेमें आते हैं, इसबात का खुलासा आगे लिखने में आवेगा).

---

३५. ढूंढिये लोग उत्तराध्ययन सूत्र के और उत्तराध्ययन सूत्र की सम्वत् ११ सौ की लिखी प्राचीन टीका के नाम सें हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का कहते हैं सोभी प्रत्यक्ष झूंठ है, क्योंकि उत्तराध्ययन सूत्रके (२६) वें अध्ययन में ऐसे पाठ हैं "पुव्विल्लंमि चउभागे, पडिलेहिताण भंडयं। गुरु वंदित्तु सज्झायं, कुज्जा दुक्ख विमुक्खणिं ॥ २१ ॥ पोरिसीए चउब्भाए, वंदित्ता ण तओ गुरुं। अपडिक्कमित्तु कालस्स, भायणं पडिलेहिए ॥ २२ ॥ मुहपत्तिं पडिलेहित्ता, पडिलेहिज्ज गुच्छयं। गुच्छगलइयंगुलिओ, वत्थाइं पडिलेहए" ॥ २३ ॥

३६. उत्तराध्ययन सूत्रकी ११ सौ सम्वत् की लिखीहुई वृत्तिमें भी ऐसा पाठ है "पादोन पौरुष्यां भाजन प्रतिलेखयेदितिसंबंधः, स्वाध्यायादुपर तश्चेत् कालस्य प्रतिक्रम्यैव कृत्यांतरमाहब्ध्व्यमित्याशंक्येतात आह—अप्रतिक्रम्य कालस्य तत्प्रतिक्रमार्थं कायोत्सर्गमविधाय, चतुर्थ पौरुष्यामपि स्वाध्यायस्य विधास्यमानत्वात्। प्रतिलेखनाविधिमेवाह-'मुखवस्त्रिका'- प्रतितामेव 'प्रतिलेख्य' प्रतिलेखयेत् 'गोच्छकं' पात्रकोपरि-वस्तुपकरणं, ततश्च 'गोच्छगलइअंगुलिउ' त्ति, प्राकृतत्वादंगुलिभिला-

तोगृहीतो गोच्छकोयेन सोऽयमंगुलिलातगोच्छकः, 'वस्त्राणि' पटलक रूपाणि 'प्रतिलेखयेत्' प्रस्तावात् प्रमार्जयेदित्यर्थः। इत्थं तथाऽवस्थितान्येव पटलानि गोच्छकेन प्रमृज्य" इत्यादि

३७. देखो ऊपर के मूल सूत्र पाठ में और टीकाके पाठ में साधु के दिन चर्य्या के अधिकार में प्रातःकाल में कर्मों को नाश करनेवाली स्वाध्याय करके गुरु महाराज को वंदना किये बाद आहार पाणीके लिये वस्त्र पात्रादिकी पडिलेहरणाके संबंध में सूत्रकार व टीकाकार महाराज ने कहा है कि, साधु पहिले मुंहपत्ति की पडिलेहणा करे, मुंहपत्तिकी पडिलेहणा किये पीछे पात्रों के उपर बांधने के वस्त्रकी और उनके गुच्छे की पडिलेहणाकरके गुच्छे को अंगुलियों में ग्रहण करके पडलों को, याने-गौचरी जावे तब पात्रोंके उपर रखनेके लिये तीन वा पांच या सात पड़के पड़ला नामक संज्ञा वाले वस्त्रोंकी पड़िलेहणा करे. पीछे पात्र आदिकी पड़िलेहणा करके अवसर आवे तब विधि सहित उपयोग पूर्वक गौचरी जावें. ऐसा खुलासा अधिकार सूत्र पाठ में और टीका के पाठ में विस्तार से लिखा है. परन्तु हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति बंधी रखने का किसी जगह नहीं लिखा. इसलिये उत्तराध्ययन सूत्र के २६ वें अध्ययन के नाम से और इसीसूत्र की टीकाके नाम से हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहरानेवाले प्रत्यक्ष उत्सूत्र भाषण करते हैं. आत्मार्थी भव्यजीवोंको हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका झूंठा रिवाज छोड़ देनाही उचित है।

---

३८. उपासक दशा, अनुत्तरोववाई तथा अन्तगड दशासूत्रके नाम से हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का ढूंढ़ियों का कहना प्रत्यक्ष झूंठ है, क्योंकि देखो छपेहुए सूत्रवृत्ति सहित 'उपासक दशांग' सूत्रके प्रथम अध्ययनके पृष्ठ १७ वें में ऐसा पाठ है " भगवं गोयमे छट्ठक्खमण पारणगंसी पढ़माए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बिईयाए पोरिसीए झाणं झायई तईयाए पोरिसीए अतुरियं, अचवलं, असंभंते मुहपत्तिं पडिलेहेई, मुहपत्तिं पडिलेहित्ता भायण वत्थाई पडिलेहेइ" इत्यादि

३९. श्री अनुत्तरोववाई सूत्र वृत्तिके छपे हुए पृष्ठ ३ में धन्नाजी अणगार के अधिकार में धन्नाजी अणगार छट्ठ छट्ठ तपका पारणा करते हुए तप संयम में आत्माको भावते हुए विचरने लगे. वहां पर ऐसा पाठ है:-
"से धण्णेअणगारे पढ़म छट्ठक्खमणपारणगंसि पढ़माए पोरिसीए सज्झायं

करेति, जहा गोयम सामी तहेव आपुच्छति जाव जेणेव कायंदीणगरी तेणेव उवागच्छति " इत्यादि ।

४०. श्री अन्तगड़ दशा सूत्र वृत्ति सहित छपे हुए सूत्र के पृष्ठ पाँचवें में श्री कृष्णवासुदेवके (६) भाई अणगार मुनियों के अधिकारमें ऐसे पाठ है "छ अणगारा अन्नया कयाइं छट्ठक्खमणपारणयंसी पढ़माए पोरिसीए सज्झायं करेंति, जह गोयमो "

४१. भगवान् राजगृह नगरीके गुण शीलक चैत्यमें समोसरे थे तब भगवती सूत्र के दूसरे शतक के पाँचवें उद्देश में छपे हुए सूत्र वृत्ति के पृष्ठ १३९ वे में गौतम स्वामी सम्बंधी ऐसे पाठ बतलाया है:—

" भगवं गोयमे छट्ठक्खमण पारणगंसी पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियायइ, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभंते मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, मुहपोत्तियं पडिलेहित्ता भायणाइं वत्थाइं पडिलेहेई, भायणाइं वत्थाइं पडिलेहित्ता, भायणाइं पमज्जइ, पमज्जइत्ता भायणाइं उग्गहेई; उग्गहित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ"

४२. देखिये प्राचीन कालके जैन साधू हमेशा प्रातःकालमें प्रथम प्रहरमें स्वाध्याय करते, दूसरे प्रहरमें मौनपने ध्यान करते और तीसरे प्रहरमें गौचरीजाते, इसलिये उपासक दशामें, अन्तगडदशामें, अणुत्तरोववाईमें और भगवतीजीमें गौतमस्वामी, धन्नाजी अणगार वगैरह मुनियोंके अधिकार आये हैं. उसमें छट्ठतपकेपारणे पहिले प्रहर में स्वाध्याय किया, दूसरे प्रहर में ध्यान किया और तीसरे प्रहर में उतावल रहित, चपलता रहित, संभ्रान्तरहित, स्वस्थपने, शांत चित्तसे प्रथम मुंहपत्ति की पडिलेहणा करें, मुंहपत्ति की पड़िलेहणा करके भाजनों की (पात्रों की) और वस्त्रों की (पात्रों के उपर ढकने के पडलों की) पडिलेहणा करके झोली में पात्रोंको लेकर पात्रों के उपर पडलें ढांककर भगवानके पास आकर भगवान्को वंदना नमस्कार करके भगवान् की आज्ञा लेकर नगरीमें गौचरी गये. ऐसे अधिकार मूलसूत्र पाठों में खुलासा पूर्वक आये हैं. ऐसेही गौतम स्वामी की तरह भगवान्के सर्व मुनियोंका अधिकार समझ लेना.

४३. ऊपरके आगम पाठोंमें तीसरे प्रहरमें गौचरी जानेके लिये मुंहपत्ति की पडिलेहणा करके पात्रोंकी और पडलों की पडिलेहणा करनेका और गौचरी जानेका अधिकार आया है. परन्तु किसी भी सूत्रपाठमें जैन

मुनियों को हमेशा अपने मुंहपर मुंहपत्ति बंधीहुई रखनेका देखने में नहीं आता, तोभी ढूंढिये लोग उपासकदशा, अन्तगडदशा और अणुत्तरोववाई सूत्रके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका ठहराते हैं. सो प्रत्यक्षही सूत्र पाठों के विरुद्ध होने से उत्सूत्र प्ररूपणा हैं. और आगमों में जहाँ २ मुंहपत्ति पडिलेहणा का लिखा हैं वहां २ हमेशा मुंह पर बंधी रखने का अपनी तरफ से ठहराकर भोले जीवोंको आगमके नामसे अपने मतमें फँसा लेना यह तो प्रत्यक्ष ही माया मृषा की ठग बाजी है. इसलिये आत्मार्थी भवभीरुओं को ऐसे झूठे पक्षका त्याग करनाही हितकारी है।

---

४४. प्रश्न व्याकरण सूत्र के नामसे हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखनेका ढूंढिये ठहराते हैं सो भी प्रत्यक्ष झूंठ है, क्योंकि देखो-श्री प्रश्नव्याकरण सूत्रके पंचम धर्म द्वार में सूत्र वृत्ति सहित छपे हुए पृष्ठ १४८ वें में ऐसा पाठ है:— "समणस्स सुविहियस्स तु पडिग्गह धारिस्स भवति भायणभंडोवहिउवकरणं, पडिग्गहो १, पादबंधणं २, पादकेसरिया ३, पादठवणं ४ च, पडलाइं तिन्नेव ५, रयत्ताणं च ६, गोच्छओ ७, तिन्निव य पच्छाका १०, रयोहरणं ११, चोलपट्टकं १२, मुहणंतकमादीयं १३, इयंपिय संजमस्स उववूहणट्ठाए" व्याख्या—श्रमणस्य-सुविहितस्य, तुशब्दो भाषामात्रे पतद्ग्रहधारिणः सपात्रस्य भवति; भाजनं च पात्रम्, भांडं च मृन्मयं, तदेव, उपधिश्च- औधिकः, उपकरणं च औपग्रहिकं, अथवा भाजनं च भांडं चोपधिश्चेत्येवरूपमुपकरणं, भाजन—भाण्डोपध्युपकरणम् तदेवाह- पतद्ग्रहः- पात्रम्, पात्रबंधनं- पात्रबन्धः, पात्रकेसरिका- पात्रप्रमार्जनपोतिका, पात्रस्थानं- यत्र कंबलखण्डे पात्रं निधीयते, पटलानि- भिक्षावसरे पात्रप्रच्छादकानि वस्त्रखण्डानि, 'तिन्नेव' त्ति तानि च यदि सर्वस्तोकानि तदा त्रीणि भवन्ति, अन्यथा पञ्च सप्त चेति, रजस्त्राणं च पात्रवेष्टनचीवरम्, गौच्छकः पात्रवस्त्रप्रमार्जनहेतुः कम्बलशकलरूपः, त्रय एव प्रच्छादाः द्वौ सौत्रिकौ तृतीय और्णिकः, रजोहरणं प्रतीतम्. चोलपट्टकः- परिधानवस्त्रम्. मुखानंतकं- मुखवस्त्रिका, एषां द्वन्द्वः, तत एतान्यादिर्यस्य तत् तथा, एतदपि संयमस्योपवृंहणार्थम्—उपष्टम्भार्थम्, न परिग्रहसंज्ञा, इत्यादि पृष्ठ १५६ वृत्तिः।

४५. देखो, उपरके पाठ में सुविहित- संयमी साधूको संयम धर्मकी रक्षाकरने के लिये उपकरण रखने का कहा है सो पात्र, व पात्रों को बांधनेकी

कपडे की झोली, पात्रों को प्रमार्जन करने के लिये उनके कपडेका टुकडा या पूजणी को पात्र केशरिका कहते हैं, कंबल के खंडपर पात्रे रक्खें उसको पात्र स्थापन कहते हैं, गौचरी जावें तब झोली व पात्रोंके उपर आच्छादन करने के लिये कमसे कम तीन पड वाले वस्त्र को पडले कहते हैं, ऋतु भेद से पांच या सात पडवाले पडले रखने में आते हैं, उससे सचित्त रज या जलादि वस्तु आहार पर गिरने न पावे इसलिये गौचरी जावें तब पडलों से पात्रों को अवश्य आच्छादित करें, गौचरी लाकर पात्रे रक्खे तब उपर से ढकने के वस्त्र को रजस्त्राण कहते हैं, अथवा पात्रों को बांधने के बीच में वस्त्र लपेटा जावे उसको रजस्त्राण कहते हैं. गौचरी के वादमें पात्रे बाँधकर ऊपरसे उनका वस्त्र खंड बांधने में आता हैं. उसको गोच्छा कहते हैं, वह गोच्छा झोली पड़ले वगैरह पात्रों के उपकरणों को प्रमार्जन करने के काम में भी आता है, तथा दो सूत की व एक ऊन की कम्वल ऐसी तीन चद्दर रखने में आती हैं, और रजोहरण, चोलपट्टा, मुंहपत्ति आदि यह उपकरण संयम के आधार भूत होने से परिग्रह रूप नहीं हैं.

४६. देखिये ऊपर के पाठ में साधू को रजोहरण और मुंहपत्ति रखने को कहा है. परन्तु मुंह पर हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का नहीं कहा तो भी ढूंढिये लोग हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका कहते हैं सो प्रत्यक्ष झूंठ है, और गौचरी जावें तब पात्रों को आच्छादित करने के लिये पड़ले रखनेका सूत्रमें कहाहै. सो ढंढियेसाधू रखते नहीं हैं और बाजारमें गलियों में लम्बी झोली लटकाते हुए खुल्ला आहार लेकर चलते हैं उसको देख कर कभी २ लोग हंसी करते हैं १, गरीब भिखारियों का दिल लोभ से-चलायमान होता है उनको न देने परअन्तराय कर्म बंधता है २, हवासे सचित्त (धूल) रज ३, व वर्षा के दिनों में सचित्त जल आदि भी आहार पानी पर गिर जाते हैं ४, आकाश में उड़ते हुए चिल्लादि पक्षियों की विष्टा भी कभी आहोर पर गिर जाती है ५, गरिष्ट आहार देख कर लोक साधु की देखो कैसा माल उड़ाते हैं इत्यादि निंदा करते हैं ६, और नीरस आहार देख कर दातारकी देखो कैसा खराब आहार साधुको दीयाहै इत्यादि निंदा करने लगते हैं ७, इत्यादि पात्रोंके उपर पड़लें न रखनें से वहुत दोष आते हैं. ऐसा आहार करना साधूको योग्य नहीं है तोभी ढूंढिये साधू वैसा आहार करते हैं और मूल पाठ में कहे अनुसार पड़ले, गुच्छे आदि उपकर-

ण रखते नहीं. इसलिये जिनाज्ञानुसार इन लोगोंको शुद्ध जैन साधू नहीं कह सकते; किन्तु विना प्रयोजन हमेशा मुंह बंधा रखकर नवीन वेष बनाने वाले जैनाभास कहने चाहिये- *

४७. यहां पर ढूंढिये शंका करते हैं कि जैसे चोलपट्ट बांधने का नहीं लिखा तो भी बांधने में आता है. वैसेही मुंहपत्ति बांधने का नहीं लिखा तो भी बांधने का समझ लेना चाहिये. ऐसा ढूंढियोंका कहना वे समझ काही है, क्योंकि देखो चोलपट्ट तो गुदा और लिंग लज्जनीय गुह्य स्थान ढकने के लिये बाँधने में आता है परन्तु मुंह तो गुदा व लिंग जैसा

* ढूंढिये साधुओं को आगमपाठका पूरा पूरा सच्चा अर्थ समझने में आता नहीं, इस लिये अर्थ का अनर्थ करदेते हैं, देखिये- ढूंढियों का छपवाया हुआ प्रश्नव्याकरण सूत्र के पृष्ठ २१० में "पडिग्गहो, पायबंधणं, पायकेसरिया, पायठवणं च, पडलाइंतिणिव, रयताणं च, गोच्छओ, तिणिव पच्छागा, रयहरणं चोलपट्टग मुहणंतकमादियं, एवंपिय संजमस्स उववूहणट्ठाए" इस पाठ का ऐसा अर्थ छपवाया हैं '१ पात्र, २ पात्र का बंधन झोली, ३ पात्र की प्रमार्जना करने का गोच्छा, ४ पात्ररखने को पाट पाटला, ५ पात्र लपेटनेका लपेटा, ६-८ तीन पात्र, ९-११ तीन पात्रे के ढक्कन, १२ रजस्त्राण, १३ गोच्छा १४-१६ तीन पछेवड़ी, १७ रजोहरण, १८ चोलपट्टा, १९ और २० मुखवस्त्रिका इत्यादि उपकरण संयम निर्वाह के लिये रखे' इसमें 'पायठवणं' का अर्थ पाट पाटला किया है, सो अनुचित है, क्योंकि साधु को चौमासे बिना हमेशा पाट पाटले वापरने कल्पते नहीं, तथा विहारमें साधु पाटपाटले साथमें रख सकते भी नहीं और पात्र स्थापन साधु को हमेशा उपयोगमें आता हैं इसलिये उनके वस्त्रखण्ड को पात्र स्थापन कहना युक्तियुक्त हैं। और 'पडलाइं तिन्नेव' का अर्थ पात्र लपेटने का लपेटा लिखा है; सो भी झूठ है, क्योंकि 'रयताणं' (रजस्त्राण) पात्र लपेटने के काम में आता है, यह मूल पाठ में अलग बतलाया है इस लिये 'पडलाइं तिन्नेव' इस पाठ का सच्चा अर्थ साधु गौचरी जावे तब झोली पात्रों के उपर तीन पडवाले वस्त्र ढके उसी को पडलें कहते हैं, ढूंढिये पडलें रखते नहीं इसलिये तीन पडवाले पडलों के सच्चे अर्थ को उडा देते हैं, यही माया चारीकाप्रपंच है और उनके कम्बल के टुकडे को या पूंजणी को पात्र प्रमार्जन के लिये पात्र केशरिका कहते हैं। और गुच्छा अलग बतलाया है, वह गुच्छा पात्र के उपर बांधने में आता है, इस लिये गुच्छे का अर्थ पूंजणी नहीं होसकता, अगर गुच्छे का अर्थ पूंजणी मान लेवे तो पात्र केशरिका जो पाठ मूल में है सो निष्फल हो जावे, इस लिये पात्रकेशरिका पात्रा प्रमार्जन के लिये और गुच्छे पात्रों के उपर बांधने के लिये. यह अर्थ जो प्राचीन व्याख्याकारों ने किया है, वही युक्त है और 'पडिग्गहो' का अर्थ पात्रें होता है, इसलिये 'पडलाइं तिन्नेव' का अर्थ 'तीनपात्र और तीन पात्रा के ढक्कन' लिखा है सो सर्वथा झूंठ है। इस प्रकार ढूंढिये लोग आगमार्थ को समझे बिना अपनी कल्पना मुजब मनमें आवे वैसे अर्थ के अनर्थ कर डालते हैं। यही भव वृद्धि करने वाली उत्सूत्र प्ररूपणा हैं।

जगत में लज्जनीय नहीं है और आचारांग, भगवतीजी, आवश्यक, विपाक, महानिशीथ. अगंचूलिया, दशवैकालिक आदि आगमानुसार मुंह खुल्ला रखना, मुंहपत्ति हाथमें रखना व बोलने का प्रयोजन होवे तब हाथसे मुंह आगे रखना ऐसा खुलासा लिखा है, इसलिये गुदा लिंग ढकनेको चोलपट्ट बांधने की तरह मुंह ढकने के लिये हमेशा मुंहपत्ति बांधने की कोई भी जरूरत नहीं है, तिस पर भी ढूंढिये लोग गुदा लिंगके जैसे मुंह को भी लज्जनीय समझकर चोलपट्टे की तरह मुंहपत्ति भी मुंह पर बांधने को हमेशा ले बैठे होवें तो उन्हों के कर्मों की गति विचित्र है. जैन शासन व जगत गुदा व लिंग की तरह मुंहको ढांकने का नहीं कहता. इस बात को विशेष तत्त्वज्ञ पाठक गण आपही विचार सकते हैं. और जो ढूंढिये लोग भी आत्मार्थी भवभीरू होंगे तो वो लोग भी ऊपरके आगम प्रमाणोंको व युक्ति पूर्वक शंका समाधान के लेख को पढ़कर हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने के झूठे आग्रह को अवश्य ही छोड देवेंगें।

---

४८. निशीथसूत्रमें मुंहपत्ति हमेशा बंधी रखने का लिखा है ऐसा ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठ हैं, क्योंकि निशीथसूत्रके पाठों से तो हाथमें रखना साबित होता हैं, देखिये ढूंढियों के छपवाये हुए निशीथसूत्रके ३ उद्देशके पृष्ठ ३४-३५ में ऐसा पाठ है " जे भिक्खू अप्पाणोदंतं आघसेज्ज वा पघसेज्ज वा आघसंतं वा पघसंतं वा साइज्जइ ॥ ५० ॥ जे भिक्खू अप्पणोदंते सीउदगवीयडेण वा उसिणोदगवियडेण वा उच्छोलेज्ज वा पधोवेज्ज वा उच्छोलंतं वा पधोवंतं वा साइज्जइ ॥ ५१ ॥ जे भिक्खू अप्पणोदंते फूमेज्ज वा, रएज्ज वा फुमंतं वा रयंतं वा साइज्जइ ॥ ५२ ॥ जे भिक्खू अप्पणोउठे अमज्जेज्ज वा पमज्जेज्ज वा अमज्जंतं वा पमज्जंतं वासाइज्जइ ॥ ५३ ॥ एवं उठ्ठे पायगओ भाणियव्वो जाव फुमेज्ज वा, रएज्ज वा, फूमंतं वा, रयंतं वा, साइज्जइ ॥ ५८ ॥ जे भिक्खू अप्पणो दीहाइं उत्तरोठाइं कप्पेज्ज वा संठवेज्ज वा कप्पंतं वा संठवंतं वा साइज्जइ ॥ ५९ ॥ एवं दीहाइं अत्थिपत्ताइं जाव साइज्जइ ॥ ६० ॥".

४९. अर्थ- " जो साधु साध्वी अपने दांतों को दांतन कर घसे अथवा वारम्बार घसे, घसते को अच्छा जाने ॥ ५० ॥ जो साधु साध्वी अपने दांतों को अचित्त ठन्डे पानी कर, अचित्त गरम पानीकर एक वख्त धोवे, वारम्बार धोवे, धोते को अच्छा जाने ॥ ५१ ॥ जो साधु साध्वी

अपने दांत खटाई कर खट्टे करे, रंग लगावे, खटाई देते, रंगते को अच्छा जाने ॥ ५२ ॥ जो साधु अपने होठों को एक वख्त घसे, घसते को अच्छा जाने ॥ ५३ ॥ ऐसे ही होठ का गमा कहना, २ मैल निकाले, ३ धोवे, ४ खटाई दे, ५ रंग चडावे, धोते, खटाइ, देते, रंग चडाते को अच्छा जाने ॥ ५८ ॥ जो साधु अपने लंबे होठों को काटे, सुधारे, काटते, सुधारते को अच्छा जाने ॥ ५९ ॥ ऐसे ही दीर्घ आखों के पापणीयों को छेदे, समारे, समारते को अच्छा जाने, तो प्रायश्चित्त आवे"

५० फिरभी पांचवे उद्देश के छपेहुए पृष्ठ ५६ में ऐसे पाठ हैः—

" जे भिक्खू मुहे वीणियं वाएइ, वायंतं वा साइज्जइ ॥ ४८ ॥ जे भिक्खू दंत वीणियं वाएइ, वायंतं वा साइज्जइ ॥ ४९ ॥ एवं उट्ठ वीणियं ॥ ५० ॥ एवं णास विणीयं ॥ ५१ ॥"

५१. अर्थ– " जो साधु मुख को वैणा नामक वादित्र जैसा बना कर बजावे, बजाते को अच्छा जाने ॥ ४८ ॥ ऐसे ही– दांतको, होठको नाकको, काँक्षको, हाथको, नखको, बीना की तरह बजावे, बजाने को अच्छा जाने ४९–५४ ॥"

५२. फिरभी पदरहवें उद्देशके पृष्ठ १६५ में भी ऐसे पाठ हैः—

" जे भिक्खू अण्णउत्थिएण वा गारत्थिएण वा अप्पणो दंताइं आघसीयेज्ज वा पघसीयेज्ज वा जाव पघसीयंतं वा साइज्जइ ॥ ५१ ॥ एवं अप्पणो दंताइं सीउदय वीयडेण वा जाव पधोवंतं वा साइज्जइ ॥ ५२ ॥ एवं अप्पणो दंताइं फुमावेज्ज वा जाव मखंतं वा साइज्जइ ॥ ५३ ॥ एवं अप्पणो होट्ठे अमज्जावेज्ज वा"

५३. अर्थ– " जो साधु अन्य तीर्थिक व ग्रहस्थके पास अपने दाँत घसावे, विशेष घसावे, घसाते को अच्छा जाने ॥ ५१ ॥ ऐसे ही जो साधु अपने दाॅत अन्य तीर्थिक व ग्रहस्थ के पास अचित्त ठन्डे पानीसे गरम पाणी से धोलावे, धोवते को अच्छा जाने ॥ ५२ ॥ ऐसेही अपने दाँतको खटाइ देवावे, रंग लगवावे, खटाई देवाते को, रंग लगवाते को अच्छा जाने ॥ ५३ ॥ ऐसेही अपने होष्ठ साफ करावे "

५४. फिर भी पृष्ट १७६ में ऐसा पाठ हैंः– " जे भिक्खू विभूसा वडियाए अप्पणोदंते आघसेज्ज वा पघसेज्ज वा जाव साइज्जइ ॥ १४० ॥ जे भिक्खू विभूसा वडियाए अप्पणोदंते सीउदग वीयडेण वा जाव पधो-

वंतं वा साइज्जइ ॥ १४१ ॥ जे भिक्खू विभूसा वडियाए अप्पणोदंते तेलेण वा जाव फुमेज्ज वा जाव साइज्जइ ॥ १४२ ॥"

५५.. अर्थः- " जो साधू विभूषा के लिये अपने दांत को घसे घसते को अच्छा जाने ॥ १४० ॥ जो साधु विभूषा के लिये अपने दांत को अचित ठन्डे पानी से गरम पानी से धोवे, धोते को अच्छा जाने ॥ १४१ ॥ जो साधु विभूषाके लिये अपने दांतको खटाईदे, रंगे, रंगतेको अच्छा जाने ॥१४२॥" तो प्रायश्चित्त आता है.

५६. ऊपरके सब पाठ और सब पाठों के अर्थ- ढूंढियों के छपवाए हुए निशीथ सूत्र के हैं. देखिये नीशीथ सूत्र के उपर के पाठोंमें साधु साध्वी अपने मुखकी विभूषा (शोभा) करनेके लिये दांत घिसकर साफ करें, जलसें धोवे, खटाई लगाकर साफ करें, रंग लगावें, ऐसे ही शोभा के लिये अपने ओष्ठ (होट) को घसें, धोवें, रंगे, काट कर सुन्दर बनावें, यह कार्य आप करें, अन्यदर्शनी या ग्रहस्थी कें पास करावें वा ऐसे कार्य करने वाले को अच्छा जाने, और मुंहसे, दांत को होठ को वाजित्र, जैसे बजावे, बजाने वाले को अच्छा जाने तो प्रायश्चित आवे. इस से साबित होता है कि-साधु-साध्वीयों कें मुंह मुंहपत्तिसें बंधे हुए नहीं रहते किन्तु खुल्ले रहते हैं, अगर हमेशा मुंहपत्ति से मुंह बंधे हुए होंवे तो शोभा के लिये दाँत होठ दोनों- रंगनेके लिये उपरके कार्य कभी नहीं होसकतेऔर मुंह बंधाहुआ होवे तो दांत होठ को वाजित्र जैसें कभी नहीं बजा सकते, इसलिये ऊपरमें बतलाये हुए कार्य्य तो मुंह खुल्ला होवे तभी हो सकतेहैं. निशीथ सूत्र कें ऊपर कें पाठों सें साधु-साध्वियोंका मुंह खुल्ला और हाथ में मुंहपत्ति रखना साबित होता है परंतु हमेशा मुंह बन्धा हुआ रखना किसी तरहसे साबित नहीं हो सकता, जिसपर भी निशीथ सूत्रके नामसे ढूंढिये लोग मुंहपत्ति हमेशा बन्धी रखने का ठहराते हैं सो उत्सूत्र प्ररूपणासे प्रत्यक्ष झूठ बोलकर भोले जीवों को उन्मार्ग में डालते हैं और जिनाज्ञा भंगकरकें दोषके भागी बनते हैं. आत्मार्थी होगा सो ऐसे झूठे पक्ष को अवश्य ही छोडेगा.

---

५७. दशवैकालिक सूत्रके पाठों पर से भी मुंहपत्ति हाथमें रखने का साबित होता है, तीसरे अध्ययन के " अंजणे दंत वण्णेय, गायाभंग विभूसणे ॥ ९ ॥" इस पाठ में साधु साध्वियों को शोभा के लिये सुरमा

या काजल को आंखमें अंजन करना तथा दांतणकरना व तैलादिक का शरीर पर मर्दन करनेका औरआभूषण पहिरनेका निषेध किया है, सो शोभा के लिये दांतण करना मुंह खुल्ला होवे तभी हो सक्ता है परंतु बंधा होवेतो नहीं, इससे भी साधु—साध्वियों के मुख खुल्ले रखनेका ठहरता है तथा चौथे अध्ययन के "जयंचरे जयंचिट्ठे, जयंमासे जयंसए ॥ जयं भुजंतो भासंतो, पावकम्मं न बंधई ॥ ९ ॥" इस गाथा में यत्ना पूर्वक चले, खडा रहे, बैठे, सोवे, आहार करे, भाषण करे तो साधु पापकर्म को न बांधे. इसप्रकार यत्नापूर्वक भाषण करने का लिखा है. सो हमेशा मुंह बंधा हुआ होवेतो यत्ना करनेकी कुछ भी जरूरत नहीं रहती, किन्तु हमेशा मुंह खुल्ला होवे तभी मुख की यत्ना करके बोलने में आताहै, इसलिये इसपाठ से भी हमेशा मुख बन्धा रखना कभी नहीं ठहर सक्ता और खुल्ला रखना व बोलने का काम पडे तब यत्ना करके बोलना यही खास जिनाज्ञा है. और पांचवें अध्ययन के प्रथम उद्देश के " अणुन्नविनु मेहावी, पडिच्छन्नमि संवुडे ॥ हत्थगं संपमज्जित्ता, तत्थ भुंजिज्ज संजये ॥ ९३ ॥ " इसपाठ में भी साधु गौचरी गया होवे तब कारण सर किसी जगह एकांत में आहार करने का अवसर होवे तो जगह के मालिक की आज्ञा ले करके इरियावही करके 'हत्थगं' हस्तकं, याने–मुखवस्त्रिका (मुंहपत्ति) हाथ में होती है उससे मुखकी प्रमार्जना करके उपयोग सहित आहार करे. इस पाठ में साधु को मुंहपत्ति हाथमें रखने का लिखा है, अगर हमेशा मुंह बंधा हुआ होवे तो मुख की प्रमार्जना करनें कीं कोई भी जरूरत नहीं रहती, किन्तु मुख खुल्ला होवे तभी मुखपर सूक्ष्म सचित रज या सूक्ष्म जीव होनें का संभव होता है उससे आहार करने के समय मुंहपत्ति से प्रमार्जन किया जाता है, इसलियें हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखना सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है।

---

५८. अंगचूलिया सूत्र में मुंहपत्ति हाथ में रखनें का कहा है, देखिये उसका पाठ ऐसा है–" तओ सूरी दंती दंतुन्नएहिं पिट्टोवरी कुप्परसंठिएहिं करेहिं रयहरणंठवित्ता वामकरानामिआए मुहपत्तिं लंबंतिं धरितु सम्मं उवओगपरो सीसं अद्धावणयकायं इक्किक्कवयं नमुक्कारपुव्वं तिन्नि वारे उच्चारावेइ " ऊपरके पाठ में दीक्षा लेने के समय दीक्षा लेने वाला अपने धर्माचार्य महाराज समक्ष अपनें दोनों हाथों की कौणियों को अपने पेट पर स्थापन करके; याने–दोनों हाथ जोडे हुए जीमणे स्कंध को लगता हुआ

रजोहरण रक्खे और डावे हाथ की अनामीका अंगुली पर मुंहपत्ति को लटकती हुई धारण करके उपयोग सहित नीचा नमा हुआ एक एक महाव्रत को नवकार सहित तीन तीन दफे उच्चारण करे। इस पाठ में मुंहपत्ति हाथमें रखनें का लिखा है, सो जब बोलने का काम पडे तब उपयोग सहित मुख की यत्नाकरके, याने-मुंहपत्ति से मुख को ढक कर बोले. इसलिये निशीथ-दशवैकालिकादि आगमों के ऊपर के पाठों में साधु-साध्वियों के मुख खुल्ले रहने का लिखा है. अतएव हमेशा मुंह बंधाहुआ रखना सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्ध है।

---

५९. महानिशीथ सूत्र के नाम से हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठ है. देखो श्रीमहानिशीथ सूत्र के ७ वें अध्ययन में आलोयणा के अधिकार में लिखी हुई प्रतिकें पृष्ठ ६६ में ऐसा पाठ है " मुहणंतगेण विणा इरियंपडिक्कमिज्झा, वंदणं, पडिक्कमणं वा करिज्झा जंभाएज्झ वा सज्झायं वा करिज्झा वायणादी सव्वत्थ पुरिमड्ढं" तथा पृष्ठ ६८ वें में गोचरी लेकर आयेबाद " इरियाए अपडिक्कंताए भत्तपाणाइयं आलोएज्झा पुरिमड्ढं, ससरक्खेहिं पाएहिं अपमज्झिएहिं इरियंपडिक्कमिज्झा पुरिमड्ढं, इरियंपडिक्कमिउ कामो तिन्निवाराओ चलणगाणं हिट्ठिमं भूमिभागं न पमज्झिज्झा निव्विइगं, कन्नेट्ठियाए वा मुहणंतगेण वा विणा इरियं पडिक्कमे मिच्छुक्कडं, पुरिमड्ढंच पोहुडियं आलोइत्ता सज्झायं पट्ठावत्तु निरासराइं 'धम्मो मंगलाइं' ण कड्ढिज्झा चउत्थं. धम्मोमंगल गेहिंच अपरियट्टिएहिं चेइयं साहूहिं च अवंदिएहिं पाराविज्झा पुरिमड्ढं" इत्यादि-

६०. ऊपर के पाठ में मुहपत्ति के बिना, अर्थात्-मुंहपत्ति को मुंह के आगे रखे बिना इरियावही करे, गुरु को वंदना करे, प्रतिक्रमण करे, उबासी लेवे, स्वाध्याय करे, दूसरे साधुओं को सूत्रादिक की वाचना देवे और गौचरी लेकर आयेबाद इरियावही किये बिनाही आहार-पाणी की आलोयणा करे, रजादि पैरों के लगी हो उसको प्रमार्जन किये बिनाही इरियावही करे तो इन सर्व कार्यों में पुरिमड्ढं का प्रायश्चित्त आता है. तथा इरियावही का प्रतिक्रमण करने वाले अपने पैरोंके नीचे की भूमिभाग को तीन दफे प्रमार्जन न करे तो निवीका प्रायश्चित्त आता हैं. और इरियावही करने वाले अपनी मुंहपत्ति को प्रमादवश कानों पर स्थाप देवें अथवा

मुंह के आगे भी न रख कर इरियावही करें तो मिच्छामि दुक्कडं का और पुरिमड्ढं का प्रायश्चित्त आता है तथा गौंचरी आलोयेबाद सज्झाय करने के लिये संतोष पूर्वक "धम्मो मंगल" इत्यादि की सज्झाय न करे तो चौथभक्त का प्रायश्चित्त आवे और 'धम्मो मंगल' की सज्झाय करके चैत्य को व साधु को वंदना किये बिना पच्चक्खाण को पार लेवे तो पुरिमड्ढं का प्रायश्चित्त आता है.

६१. देखिये- ऊपरके पाठ में मुंहपत्ति को मुँह के आगे रखे विना इरियावही करे; गुरुको वंदे, उवासी लेवे, स्वाध्यादि करे और इरियावही करने वाला जैसे गृहस्थी लोग नामा लिखते हुए कभी कभी कलम को कानों पर रख देते हैं. वैसेही साधू भी अपनी मुंहपत्ति को कानों पर रख देवे वा मुँहके आगे भी रखे विनाही इरियावही करे और चैत्य व साधू को वंदना न करे तो प्रायश्चित्त बतलाया है. इसलिए मुंहपत्ति हाथमें रखना प्रत्यक्ष ही सिद्ध है. तो भी ढूंढिये लोग आगमपाठका भावार्थ समझे विना भोले जीवों को अपने मत में फँसानेके लिये आगेके और पीछेके संबंध वाले सब पाठको छोड़करके विना संबंध वाला अधूरा थोड़ासा पाठ लिख कर उसका खोटा अर्थ करके हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का ठहराते हैं सो बड़ी भूल है. क्योंकि "कन्नेट्ठियाए वा मुहणंतगेण वा विना" याने- प्रमादवश साधु मुंहपत्ति को कानोंपर रख करके व मुंह आगे रखे विना इरियावही करे तो प्रायश्चित्त आवे, यह सीधा अर्थ है. इसमें कानों पर रखने वालों को प्रायश्चित्त कहा है उसको समझे बिनाही बांधने का ठहराते हैं सो बड़ी अज्ञानता है "मुहणंतगेण विना" यह पाठ मुंहपत्ति हाथ में रखे बिना इरियावही करे तो प्रायश्चित्त बतलाता है परंतु हाथसे मुंह आगे रखकर इरियावही करे तो दोष नहीं बतलाता, इसलिये महानिशीथ सूत्रके पाठसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी हुई कहने वाले अज्ञानी होने से प्रत्यक्ष मिथ्यावादी ठहरते हैं।

६२. फिरभी देखिये विचार करिये- श्रीहरिभद्रसूरिजी महाराजने आवश्यक सूत्र की बाईसहजारी बड़ी प्राचीन टीकामें तथा दीक्षा विधि आदि अपने बनाये बहुत शास्त्रों में मुंहपत्ति हाथ में रखने का ही जगह २ खुलासा लिखा है और इन्हीं महाराजने महानिशीथ सूत्र का उद्धार किया है, आप खास मुंहपत्ति हाथमें रखने वाले थे, इसलिये महानिशीथ सूत्र

के नाम से मुंहपात्ति बंधी हुई रखना कभी सिद्ध नहीं हो सकता. जिस पर भी यदि इसीही सूत्र के नामसे हमेशा मुंहपात्ति बंधी हुई रखने का ठहरावें तो इन महारज के वचनों में विसंवाद आवे, जैनाचार्य अविसंवादीहोते हैं, इसलिये इस सूत्र के पाठ से मुंहपत्ति बंधी रखने का कभी नहीं ठहर सकता. यह प्रत्यक्ष ही युक्ति युक्त प्रमाण है तो भी ढूंढिये लोग इससूत्रके नाम से मुंहपत्ति बंधी रखनेका कहते हैं सो प्रत्यक्ष ही झूठ है.

६३. फिरभी देखो– " मुहणंतगेण विना " इस पाठ का मुखानंतकेन विना (मुखवस्त्रिकां विना) ऐसा अर्थ होता है, उसका भावार्थ समझे विना ढूंढिये लोग ' तगेण ' शव्द का अर्थ तागा (दोरा–धागा) करते हैं, सो भी प्रत्यक्ष झूंठ है. क्योंकि 'तगेण विना' याने–वस्त्रेण विना ऐसा अर्थ है, इसलिए 'तगेण' शब्द का अर्थ दोरा करने वाले ढूंढियों की बड़ी भूल है, 'तगेण' शव्द का अर्थ दोरा कभी नहीं होसकता. यदि 'तगेण' शव्दका अर्थ दोरा करोगे तो मुखवस्त्रिका का अर्थ कौनसे पाठसे करोगे, क्योंकि वस्त्र के अर्थ वाला अन्यदूसरा कोई पाठ ही नहीं है इस लिये वस्त्र विना ही दोरा का अर्थ करना सो तो वाप के विना ही वेटा पैदा करने जैसा अयुक्त होता है, इसलिये 'मुहणंतगेण' का मुखवस्त्रिका ऐसा सत्य अर्थ को छोड़कर मुख का दोरा ऐसा अयुक्त व असंगत अर्थ करना यह प्रत्यक्ष ही वाल चेष्टा है।

६४ " कन्नेट्ठियाए " इसपाठ से ढूंढिये लोग हमेशा मुंहपात्ति बंधी रखने का ठहराते हैं सो भी वड़ी भूल है, क्योंकि यह पाठ सम्बन्ध रहित अधूरा है आगे पीछे के संबंध वाले सब पाठ को छोड़ कर अधूरे पाठ भोले जीवों को बतलाकर अपनी कल्पना मुजव खोटा अर्थ करके उन्मार्ग को स्थापन करना यही मायाचारी है. हमने पूर्वापर के संबंध वाला पूरा सब पाठ ऊपर में बतलाया है, यह अधिकार गौचरी जाकर आये वाद गौचरी की आलोयणा करने संवधी इरियावही करने का है, इसलिये ऊपर के पाठ से गौचरी लेकर आये वाद गौचरी की आलोयणा करने के लिये ढूंढिये लोग 'कानों में मुंहपत्ति को डाले विना इरियावही नहीं करना' ऐसा यदि मानते होवे तो भी ढूंढियों के कहनेसे उसी वक्त कानों में डालने का ठहरता है, इससे गौचरी गये तब कानोंमें मुंहपात्ति डाली हुई नहीं थी, ऐसा ढूंढियों के कथन से ही सावित होता है. देखो बिचा-

र करो- गौचरी गये तब भी पहिले से ही मुंहपत्ति बंधी हुई होती तो फिर दूसरी दफे बांधने का कभी नहीं कह सकते थे, इससे गौचरी गये तब मुंहपत्ति बंधी हुई नहीं थी. इसबात परसेभी हाथ में मुंहपत्ति रखना ठहरही चुका. इस बात को दीर्घ दृष्टि से विवेक बुद्धि पूर्वक विचारी जावे तो ऊपर के पाठ से हमेशा मुंहपत्ति बांधने का कभी नहीं कह सकते, निर्विवेकी चाहें सो कहें, तोभी वह प्रमाण भूत कभी नहीं हो सकता. और 'कन्नेट्ठियाए' इसपाठ के पहिले के 'मुहणंतगेण विना इरियंपडिक्कमें' इत्यादि पाठमें मुंहपत्ति हाथ में रखना लिखाहै, इसलिए इसपाठ का भी हाथ में रखना ही अर्थ होता है पूर्वापर के सब पाठ को छोड़कर अधूरे पाठ का खोटा अर्थ करके भोले जीवों को बहकाना यही मिथ्यात्व है.

६५. महानिशीथ सूत्र की संस्कृत टीका को किसीभी पूर्वाचार्य महाराज ने नहीं बनाई जिसपर भी ढूंढिये लोग "कन्नेट्ठियाए वा मुहणंतगेण वा विना इरियं पडिक्कमे मिच्छुक्कडं पुरिमड्ढं च " इस अधूरे पाठकी (कर्णेस्थितया मुखपोतिकया इति विशेष्यम् गम्यमम्, मुखानन्तकेन वा विना इरियाप्रतिक्रमेन मिथ्यादुष्कृतम् पुरिमार्धं वा प्रायश्चितम्) यह संस्कृत टीका लिखते हैं और लोगों को बतलाते हैं सो बिलकुल अपनी कल्पना से सूत्रकार महाराज के अभिप्राय विरुद्ध होकर नवीन अशुद्ध संस्कृत वाक्य बना लिया है और सूत्र की टीका के नाम से भोले लोगों को अपने फन्दे में फँसाते हैं यह भी ठग बाजी ही है *

---

* उपरके संस्कृत वाक्य को लिखकर ढूंढिये लोग कानों में मुंहपत्ति डाले बिना इरियावही करेतो मिच्छामिदुक्कंड का या पुरिमड्ढंका इन दोनों में से कोई भी एक प्रायश्चित्त आवे, ऐसा ठहराते हैं, यही ढूंढियोंकी अज्ञानता है, क्योंकि देखो- "कन्नेट्ठिया" इत्यादि "कर्णेस्थितया मुखवस्त्रिकया यदि इर्यां प्रतिक्रमेत् तदा तस्य मिथ्यादुष्कृतं प्रायश्चित्तं च पुनः मुखानंतकेन विना मुखवस्त्रिका विनैव यदा इर्यां प्रतिक्रमेत् यदा तस्य पुरिमार्धं प्रायश्चित्तं" अर्थात् साधू गौचरी लेकर आये बाद उसकी आलोयणा करने सम्बन्धी इरियावही करने के लिये कानों के उपर मुंहपत्ति रखकर जो इरियावही करे तो उस साधु को मिच्छामि दुक्कडं का प्रायश्चित्त आवे और मुंहके आगे बिलकुल ही मुंहपत्ति रखे बिनाही जो इरियावही करे तो उसको पुरिमड्ढका प्रायश्चित्त आवे. ऐसे दोनों बातों के लिये यथा संख्या से अलग २ दोनों प्रकार के प्रायश्चित्त बतलाये हैं, इस प्रकार से उपरके पाठका संस्कृत में व भाषा में अर्थ होता है, इसमें कानों पर मुंहपत्ति रखने वालों को मिच्छामिदुक्कडं का दोषी बतलाया है तथा उपरके पाठ में मुहणंतगेण विना

६६. देखिये ढूंढियों की मायाचारीका नमूना- माहनिशीथ सूत्र के ऊपर के अधूरे पाठ का उलटा अर्थ करके सूत्रकार महाराज के अभिप्राय विरुद्ध होकर मुंहपत्ति हमेशा बंधी रखने का झूठा आग्रह करते हैं और खास सूत्रकार महाराज ने इन्ही सूत्र में जगह २ मोक्षप्राप्ति के लिये जिन प्रतिमा को वन्दन पूजन करने का विधिवाद बतलाया है उस को नहीं मानते हैं और सूत्रकार महाराज की अनेक तरह से निन्दा करते हैं, सूत्र को खोटा बतलाते हैं. यह अभिनिवेशिक मिथ्यात्व का कैसा भारी हठाग्रह है सो पाठक गण स्वयं विचार लेंगे.

---

६७. ढूंढिये लोक निरीयावलि सूत्र के नामसें कहते हैं कि सोमिल तापसने अपने मुंहपर लकडे की काष्ट मुद्रा बांधी थी उसी तरह से जैनमुनिओं को भी अपने मुंहपर हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखना योग्य है. ऐसा ढूंढियों का कहना व लिखना सर्वथा अनुचित होने से मिथ्यात्व वढाने वाला है. देखिये—सूत्रवृत्ति सहित छपेहुए 'निरीयावलि' सूत्रके पृष्ठ.२७ से २९ तक ऐसे पाठ हैः—

इरियं पडिक्कमे " इस वाक्य में मुंहपत्ति मुंह आगे रखे विना इरियावही करने वाले को दोप बतलाया है. इससे हाथ से मुंह आगे मुंहपत्ति रखे तो दोप नहीं और साधु गौचरी लेने को गया होवे तब साधु के मुंहपर मुंहपत्ति बंधी हुई नहीं होती यह बात ढूंढियों के कथनसे भी उपर के लेखमें मैं साबित करचुका हूं इसलिये इस पाठसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका कभी नहीं ठहर सकता.

फिरभी देखिये- उपरके मूल सूत्र पाठ में " कन्नेट्ठिया " और " मुहणंतगेण विना " ऐसे दोनों वाक्य अलग २ हैं, इसमें "विना" शब्द पडा है सो मुंहपत्ति के साथ सम्बन्ध वाला है परन्तु कानों के साथ सम्बन्धवाला नहीं है. इसलिये ढूढिये लोग 'विना' शब्द को कानों के साथ भी जोड देते हैं सो अनुचित है, क्योंकि 'मुहणंतगेण विना' याने-मुख आगे मुंहपत्ति रखे विना इरियावही नहीं करना, इसमें 'विना' शब्द का युक्तियुक्त सम्बन्ध लग गया. यह पाठ मुंहपत्ति हाथ में रखना बतलाता है और अब 'विना' शब्दको 'किन्नेट्ठियाए' के साथ लगा कर कानों में मुंहपत्ति डाले विना इरियावही नहीं करना, ऐसा अर्थ करनेसे 'मुहणंतगेण विना' इस वाक्य के साथ विसंवाद विरोधभाव आता है और जैनागम अविसंवादी है इसलिये एक ही जगह पर एकही बातमें पूर्वापर विसंवादी वचन सूत्रोंमें कभी नहीं आसकते तथा सूत्रकार महाराज ऐसे विसंवादी वचन कभी लिख सकते भी नहीं. इसलिये 'कन्नेट्ठियाए' के साथ 'विना' शब्द को जोडकर ढूंढिये लोग एकही जगह एकही पाठमें पूर्वापर विरोध भाव खडा करते हैं, सो सर्वथा अनुचित है. और

" तं सेयं खलु इयाणिं कल्लं पादु जाव जलंते वहवे तावसे दिट्ठा भट्ठे य पुव्वसंगतिए य परियायसंगतिए अ आपुच्छित्ता आसमसंसियाणि य बहुइं सत्तसयाइं अणुमाणइत्ता वागलवत्थनियत्थस्स कढिणसंकाइयगहितसभंडोवकरणस्स कट्ठमुद्दाए मुहंवंधित्ता उत्तरादिसाए; उत्तराभिमुहस्स महपत्थाणं पत्थावेइत्तए एवं संपेहेति २ कल्लं जाव जलंते वहवे तावसे य दिट्ठा भट्ठे य पुव्वसंगतिते य तं चेव जाव कट्ठमुद्दाए मुहं वंधति, वंधित्ता अयमेतारूवं अभिग्गंहं अभिगिण्हति जत्थेव णं अम्हं जलंसि वा एवं थलंसि वा दुग्गंसि वा निन्नंसि वा पव्वतंसि वा विसमंसि वा गड्डाए वा दरीए वा पक्खालिज्ज वा पवडिज्ज वा नो खलु मे कप्पति पच्चुट्ठित्तए त्ति कट्टु अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हति, उत्तराए दिसाए उत्तराभिमुहं पत्थाणं (महपत्थाणं) पत्थिए से सोमिले माहणरिसी पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागते, असोगवरपायवस्स अहे कढिणसंकाइयंठवेति २ वेदिं वड्ढेइ २ उवलेवणसंमज्जणं करेति २ दब्भकलसहत्थगते जेणेव गंगा महानई जहा सिवो जाव गंगातो महानईओ पच्चुत्तरइ जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ २ दब्भेहि य कुसेहि य वालुयाए वेदि रतेति २ सरगं करेति २ जाव

दूसरी बात यह भी है कि " मुहणंतगेण विना इरियं पडिक्कमिअ वंदणं पडिक्कमणं वा करिज्झा जंभाएज्झ वा सज्झायं वा करिज्झा वायणादी सव्वत्थ पुरिमड्ढं" इसपाठ में मुंहपत्ति हाथ में रखना कहा है सो मुंहपत्ति मुहके आगे रखे विना इरियावही वगैरह करे तो इसपाठ में पुरिमड्ढ का प्रायश्चित्त कहा है और " कन्नेट्ठियाए वा मुहणंतगेण विना इरियं पडिक्कमे मिच्छुक्कडं पुरिमड्ढं च" इसपाठसे मिच्छामिदुक्कडं का या पुरिमड्ढका इन दोनोंमें से कोईभी एक प्रायश्चित्त ढूंढिये ठहराते हैं. इससे प्रायश्चित्त की विधीमें भी पूर्वापर विरोध भाव जाता है इसलिये कानों पर मुंहपत्ति रखने वाले थोडे प्रमादी को मिच्छामिदुक्कडं का और मुंह आगे बिलकुल न रखने वाले ज्यादे प्रमादी को पुरिमड्ढ का इस प्रकार भिन्न २ कार्यों के प्रमादों में भिन्न २ प्रायश्चित्त माननेसे पहिले के पाठके साथ भी प्रायश्चित्त विधीमें किसी तरह का विरोधभाव भी नहीं आता, इसलिये पूर्वापर सम्बन्ध रहित अधूरे पाठ को आगे करके अर्थ का अनर्थ कर देना. यही संसार बढाने वाली उत्सूत्र प्ररूपणा है और तीसरी बात यह भी है कि " कन्नेट्ठियाए " इत्यादि पाठके मध्यमें 'मुहणंतगेण विना इरियं पडिक्कमे " यह पाठ बीचमें पडा है इसपाठ में मुहपत्ति हाथमें रखना लिखा है, इस पाठका सच्चा अर्थ छुपादेते हैं और "कन्नेट्ठियाए" ऐसा अधूरा पाठ का उलटाही अर्थ करते हैं, यहभी बडी अज्ञानता है।

वलिं वइस्सदेवं करेति २ कट्ठमुद्दाए मुहं वंधति तुसिणीए संचिट्ठति त-
तेणं तस्स सोमिलमाहणरिसिस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे
अंतियं पाउब्भूते तते णं से देवे सोमिलं माहणं एवं वयासी- हं भो
सोमिलमाहणा ! पव्वइया दुप्पव्वइतं ते, तते णं से सोमिले तस्स देव-
स्स दोच्चं पि तच्चं पि एयमट्ठं नो आढाति नो परिजाणइ जाव तु-
सिणीए संचिट्ठति तते णं से देवे सोमिलेणं माहणरिसिणा अणा-
ढाइज्जमाणे जामेव दिसिं पाउब्भूते तामेव जाव पडिगते. तते णं से
सोमिले कल्लं जाव जलंते वागलवत्थनियत्थे कढिणसंकाइयं गहिय-
ग्गिहोत्तभंडोवकरणे कट्ठमुद्दाए मुहं वंधति २ उत्तराभिमुहे संपत्थिते.
तते णं से सोमिले वितियदिवसम्मि पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव
सत्तिवन्ने अहे कढिणसंकाइयं ठवेति २ वेदिं वड्ढेति २ जहा असोगवरपा-
यवे जाव अग्गिं हुणति, कट्ठमुद्दाए मुहं वंधति, तुसिणीए संचिट्ठति.
तते णं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतियं
पाउब्भूए, तते णं से देवे अंतलिक्खपडिवन्ने जहा असोगवरपायवे जाव
पडिगते. तते णं से सोमिले कल्लं जाव जलंते वागलवत्थनियत्थे कढिण-
संकाइयं गेण्हति २ कट्ठमुद्दाए मुहं बंधति २ उत्तरदिसाए उत्तराभिमुहे
संपत्थिते. तते णं से सोमिले ततियदिवसम्मि पुव्वावरण्हकालसमयंसि
जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवा० २ असोगवरपायवस्स अहे कढिणसं-
काइयं ठवेति, वेतिं वड्ढेति जाव गंगं महानइं पच्चुत्तरति २ जेणेव असो-
गवरपायवे तेणेव उवा २ वेतिं रएति २ कट्ठमुद्दाए मुहं बंधति २ तुसिणी-
ए संचिट्ठति. तते णं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे अं-
तियं पाउ० तं चेव भणति जाव पडिगते. ततेणं से सोमिले जाव जलंते
वागलवत्थनियत्थे कढिण संकाइयं जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधति २ उत्तराए
दिसाए उत्तराए संपत्थिए. तते णं से सोमिले चउत्थदिवसपुव्वावरण्ह-
कालसमयंसि जेणेव वडपायवे तेणेव उवागते वडपायवस्स अहे कढिणं
संठवेति २ वेइं वड्ढेति उवलेवणसंमज्जणं करेति जाव कट्ठमुद्दाए मुहंबं-
धति, तुसिणीए संचिट्ठति तते णं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे
देवे अंतियं पाउ० तं चेव भणति जाव पडिगते. तते णं से सोमिले जाव
जलंते वागलवत्थनियत्थे कढिणसंकाइयं जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधति,
उत्तराए उत्तराभिमुहे संपत्थिते. ततेणं से सोमिले पंचमदिवसंमि पुव्वा-

वरण्हकालसमयंसि जेणेव उंबरपायवे उंबरपायवस्स अहे किढिणसंकाइयं ठवेति, वेइं वड्ढेति जाव कट्ठमुद्दाए मुहं बंधति जाव तुसिणीए संचिट्ठति. तते णं तस्स सोमिलमाहणस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे जाव एवं वयासी–हं भो सोमिला ! पव्वइया दुप्पव्वइयं ते पढमं भणति तहेव तुसिणीए संचिट्ठति, देवो दोच्चं पि तच्चं पि वदति सोमिला ! पव्वइया दुप्पवइयं ते तए णं से सोमिले तेणं देवेणं दोच्चंपि तच्चंपि एवं वुत्ते समाणे तं देवं एवं वयासी—कहण्णं देवाणुप्पिया मम दुप्पव्वइयं ? तते णं से देवे सोमिलं माहणं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! तुमं पासस्स अरहओ पुरिसादाणियस्स अंतियं पंचाणुवए सत्त सिक्खावए दुवालसविहे सावगधम्मे पडिवन्ने, तए णं तव अण्णदा कदाइ पुव्वरत्ता० कुडुंब० जाव पुव्वचिंतितं देवो उच्चारेति जाव जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवा० २ कढिणसंकाइयं जाव तुसिणीए संचिट्ठसि. ततेणं पुव्वरत्तावरत्तकाले तव अंतियं पाउब्भवामि हं भो सोमिला ! पव्वइया दुप्पव्वइयं ते तह चेव देवो नियवयणं भणति जाव पंचमदिवसंमि पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव उंबरवरपायवे तेणेव उवागते किढिणसंकाइयं ठवेहि वेदिं वड्ढति उवलेवणं संमज्जणं करेति २ कट्ठमुद्दाए मुहं बंधति, बंधित्ता तुसणीए संचिट्ठसि, तं एवं खलु देवाणुप्पिया तव दुप्पव्वयितं. तते णं से सोमिले तं देवं वयासी– (कहण्णं देवाणुप्पिया ! मम सुप्पव्वइतं ततेणं से देवे सोमिलं एवं वयासी) जइ णं तुम देव्वाणुप्पिया ! इयाणिं पुव्वपडिण्णाइं पंच अणुव्वयाइं सयमेव उवसंपज्जित्ता णं विहरसि, तो णं तुज्झ इदाणिं सुपव्वइयं भविज्जा. तते णं से देवे सोमिलं वंदति नमंसति २ जामेव दिसिं पाउब्भूते जाव पडिगते. तते णं सोमिले माहणरिसी तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे पुव्वपडिवन्नाइं पंच अणुव्वयाइं सयमेव उवसंपज्जित्ताणं विहरति. तते णं से सोमिले बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठम जाव मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोवहाणेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूहिं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणति २ अद्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेति २ तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेति २ त्ता तस्स ठाणस्स अणालोइय अपडिक्कंते विराहिअसम्मत्ते कालमासे कालं किच्चा सुक्कवडिंसए विमाणे उववातसभाए देवसयणिज्जंसि जाव तोगाहणाए सुक्कमहग्गहत्ताए उववन्ने " इत्यादि

६८. उपरके पाठका सारांश ऐसा है कि– वणारसी नगरी में तेवीसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के पासमें धर्म देशना सुनकर सोमिल ब्राह्मण ने सम्यक्त्व सहित श्रावक के वारह व्रतोंको अंगीकार किये थे परंतु पीछे से साधुओं के समागम के अभाव से सोमिल पीछा मिथ्यात्व में गिरगया, श्रावक धर्म छोड़दिया और दिशा पोषण करने वाले तापसों के पास तापसी दीक्षा ली. उसके वादमें सोमिल तापसने अपने पासमें रहने वाले, परिचय वाले तापसों की आज्ञा लेकरके अपने कावड़ आदि भंडोपकरण साथमें लिये और काष्टमुद्रा; याने– लकड़े की पटड़ी से अपना मुँह वांधकर उत्तर दिसी में चलना शुरू किया, तव ऐसा नियमलिया कि– रास्ते में चलते हुए मेरे सामने जल आवे, स्थल आवे, दुर्ग आवे, नीची खाडी आवे, ऊँचे पर्वत आवे, विषम स्थल आवे, गड्डाआवे उसमें चलते हुए यदि पैरचुक कर गिरजावुं तो फिर वहाँ से मेरे को उठनाही नहीं. ऐसा नियम लेकर उत्तर दिशामें चलते हुए शाम को अशोक वृक्ष के नीचे जाकर वेदी बनाई, वहां कावड़ वग़ैरह अपना सामान को रखकर गंगा नदी में जाके स्नान किया, पीछा आकर वेदीके उपर अग्नि जलाई, होम किया तथा वैश्वानर देवको बलि चढाया और काष्टकी पटड़ीसें मुंह वांधकर मौन हो वैठा. वहाँ पर अर्ध रात्रि को एक देव आया और बोलने लगा कि हे सोमिल ! तापसी दीक्षालेना, काष्टकी पटड़ीसें मुँह को वांधना वगैरह यह सव तेरे कर्तव्य दुष्टप्रव्रज्या रूप, याने– अनुचित हैं. ऐसें दो तीन वार कहने पर भी सोमिलने कुछ जवाब दिया नहीं, हृदय में धारण भी कियानहीं, मौनमें ही वैठा, उससे देव पीछा चलागया. फजर में फिर अपने कावड वगैरह भंड उपकरण लेकर काष्टकी पटडी को मुँहपर वांधकर उत्तर दिशी में चला, दूसरे दिन शाम को सीतवन वृक्ष के नीचे पहिले दिन की तरह वेदी बनाकर स्नान, होम, देव पूजनादि नित्यकृत्य करके मौन हो वैठा. वहाँ भी पहिली रात्रि की तरह देव आया और सोमिल को कहा कि यह तेरे कार्य दुष्ट हैं, तो भी सोमिल ने कुछ जवाब दिया नहीं, देव पीछा चला गया. इस माफक पांच रोज तक हमेशा रात्रि को देव आकर समझाने लगा. जव पांचवीं रात्रि को सोमिल के मनमें विचार आया, तव देव को पूछा कि तू मेरी तापसी दीक्षा की क्रिया को दुष्ट (खोटी) क्यों कहता है ? उसपर देव बोला कि तेने पहिले तेईसवें तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ स्वामि के पास में धर्म की देशना सुनकर

सम्यक्त्व सहित श्रावक के बारह व्रतलिये थे, परन्तु पीछे से साधुओं के समागम के अभाव से तेने श्रावक धर्म छोड दिया और मिथ्यात्वियों की संगत से मिथ्यात्व में गिरगया और काष्टमुद्रासे मुँह को बांधना, अग्नि जलाना, कंदमूल खाना व तापसी दीक्षा लेकर अज्ञान कष्ट करता हुआ मिथ्यात्व की क्रिया करता है; इसलिये यह तेरे कार्य दुष्ट कहे जाते हैं, ऐसा देवका वचन सुनकर फिर सोमिल बोला कि अब मेरी प्रव्रज्या (दीक्षा) कैसे अच्छी होवे, तब फिर भी देव बोला काष्ट मुद्रादि मिथ्यात्व की क्रिया को छोडकर पहिले मुजब सम्यक्त्व सहित श्रावक के बारह व्रतोंको अंगीकार कर, उससे तुमारी क्रिया सफलहोवे. इस प्रकार देवका वचन सुनकर सोमिलने मुँह बांधनादि तापसी दीक्षाकी मिथ्यात्वी क्रिया छोडकर फिरसे श्रावक धर्म अंगीकार किया. तब देवने सोमिल को वंदना नमस्कार किया और अपने स्थान चला गया, उसके बाद सोमिल तापसने श्रावक धर्म पालन करते हुए उपवास, छट्ठ, अट्ठम, मासार्द्ध, मास क्षमाणादि बहुत तपस्यादि धर्म कार्य करते हुए अंतमें १५ दिन का अणशन करके अपना आयुः पूर्ण कर ज्योतिषी निकाय में शुक्र नामा बडे ग्रहपने में उत्पन्न हुआ [यद्यपि सम्यग्दृष्टि व्रत धारी तपस्या करने वाला श्रावक वैमानिक देवलोक में जाता है, परंतु सोमिलने श्रावक धर्म की विराधना करके काष्टमुद्रासे मुँह बंधनादि मिथ्यात्व सेवन किया था, फिर उसकी आलोयणा (प्रायश्चित) नहीं ली, बिना आलोयणा किये आयुः पूर्ण करने से विराधक हुआ, इसलिये ज्योतिषी में उत्पन्न हुआ है. यदि मिथ्यात्वी क्रिया की शुद्ध भावसे आलोयणा करलेता और आराधक होता तो अवश्य ही वैमानिक देवलोक में उत्पन्न होता.] वहां देवभवका आयुः पूर्ण करके महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य जन्म लेवेगा. और संयम लेकर यावत् मोक्षमें जावेगा।

६९. देखिये- ऊपर के पाठ में मिथ्यात्वी तापसने काष्टकी मुद्रा अपने मुंहपर बांधी उसको देवताने दुष्ट कह कर त्याग करवाया और शुद्ध श्रावक धर्म अंगीकार करवाया, काष्ट की मुद्रादि मिथ्यात्वी क्रिया की आलोयणा न लेने से विराधक हुआ, इस बाबत का सब पूरा पाठ को छोड़ कर सिर्फ 'निरयावली' सूत्र के नाम से ढूंढिये लोग जैन मुनियोंको भी हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति बंधी रखने का ठहराते हैं, और भोले जीवों को बहकाते हैं, यह कैसी मायाचारी की ठगबाजी है. 'ति-

रयावली ' सूत्र में हमेशा तो क्या परन्तु एक दिन भी जैन मुनियों को मुहँपर मुंहपत्ति बंधी रखने का किसी जगह नहीं लिखा मगर दिशा पोषण करने वाले सोमिल तापसने काष्टमुद्रा मुंहपर बंधी थी, उसवक्त सोमिल मिथ्यात्वकी क्रिया में था. उसको देखकर उसीके अनुसार ढूंढिये साधूलोग कपड़े की पट्टी को मुंहपत्तिके नाम से हमेशा मुंहपर बाधते हैं, उससे ' निरयावली ' सूत्र के पाठानुसार तो (सोमिल की तरह हमेशा मुंहबंधा रखने वाले) सब ढूंढिये मिथ्यात्वी ठहरते हैं. इससे यहबात साबित होती है कि-जो आत्मार्थी सम्यग्दृष्टि भव्यजीव होगा वह तो सोमिल तापसकी तरह हमेशा मुँहबंधा हुवा कभीभी न रखेगा, और मिथ्यात्वी होगा वह सोमिल की तरह हमेशा मुँहबंधा हुआ रक्खेगा. इस बातको अल्पबुद्धि वाले सामान्य पुरुषभी अच्छी तरह से समझ सक्ते हैं, तोभी बड़े अफसोस कि बात है, कि-साधू नाम धारण करने वाले व लोगोंको धर्मका उपदेश देनेवाले ढूंढिये लोग जैनी कहलाते हुए भी जिनाज्ञा विरुद्ध होकर मिथ्यात्वी तापस की तरह हमेशा मुँहबंधा रखते हैं. फिर उसी कोही पुष्ट करनेके लिये 'निरयावली' सूत्रका सिर्फ "मुहं बंधेत्ता" ऐसा अधूरा पाठको बतलाते हैं, और जान बूझकर मायाचारीसे भोले लोगों को उनमार्ग में फंसाते हैं, यह कैसा अभिनिवेशक मिथ्यात्वका हठाग्रह है, आत्मार्थी होगा वह ऐसा कभी न करेगा *

---

* ढूढियों के छपवाये हुए " निरयावली" सूत्र के तीसरे अध्ययनमें शुक्रदेव के अधिकार में छपेहुए पृष्ठ १०४-१०५-१०६ मे ऐसा लेख है:-

" सोमिल ब्राह्मण के पास आधिरात्रि में एक देवता आया वह यों कहने लगा अहो सोमिल ! तेरी प्रव्रज्या है यह दुष्ट (खोटी) प्रव्रज्या है ॥ २७ ॥ तब उस सोमिल ने उस देवता के मुख से दो तीन वक्त उक्त वचन श्रवणकर उस देवता से ऐसा बोला हे देवानुप्रिय ! किस कारण मेरी प्रव्रज्या यह दुष्ट प्रव्रज्या है ॥ २८ ॥ तब देवता सोमिल ब्राहमण से इस प्रकार बोला यों निश्चय अहो देवानुप्रिय ! तेंने पार्श्वनाथ अर्हन्त पुरुषोत्तम के पास पांच अणुव्रत सातशिक्षा व्रत बारा प्रकार का श्रावक धर्म अंगीकार किया था, फिर तुम अन्यदा किसी वक्त साधुके दर्शन नहीं करने से सम्यक्त्व की हानी हुई और मिथ्यात्व की वृद्धि हुई यावत् कुटुम्ब जागरनाकर तुमने अम्बाराम वगैरह लगाया, लोह कुडछा वगैरह कराया, तापस हुवा, यावत् अभिग्रह धारन कर उत्तर दिशा की तरफ चला अशोकवृक्ष के नीचे रहा, कावड स्थापन कर यावत् मौन रहा. तब आधिरात्रि को तेरे पास मैं आया और बोला कि अहो सोमिल तेरी दुष्ट प्रव्रज्या है. या-

७०. फिर भी देखिये विचार करीये—उपरके 'निरयावली' सूत्रके पाठके कथन मुजब जब तक सोमिल तापस की मुखबंधनादिक मिथ्यात्वी क्रिया रही तबतक देवता ने उसको वंदना नमस्कार नहींकिया था, परन्तु मिथ्यात्वी क्रिया छुड़ानेके लिये उपदेशतो हमेशा देताही रहाथा, और जब सोमिल तापस प्रतिबोध पाकरके मिथ्यात्वी क्रिया छोडने वाला व शुद्ध श्रावक धर्मको अंगीकार करने वाला हुआ, तब देवताने सोमिलको वंदना नमस्कार कियाथा. इसी तरह से अभी भी श्रीजिनाज्ञा के आराधक आत्मार्थी जो २ गृहस्थ भव्य जीव होंगे उन्हों को तो सोमिल की तरह हमेशा मुंहबंधा रखने रूप मिथ्यात्व की क्रियाको करने वाले सब ढूंढियों को वंदना नमस्कार करना कल्पे नहीं परन्तु ढूंढियोंका यह

वत् आज पांच वां दिन है, आधिरातको जहां उबर वृक्ष तहां आया, आकर कावड स्थापन की, वेदिका बनाई, गोबरसे लीपी, झाडकर साफकरी, यावत् काष्टकी मुंहपत्ति मुखपर बांधकर मौनस्थ रहा, यों निश्चय अहो! देवानुप्रिय ! तेरी प्रव्रज्या दुष्ट प्रव्रज्या है ॥ २९ ॥ तब वह देवता सोमिल ब्राह्मण से यों बोला यदि अहो देवानुप्रिय ! प्रथम अंगीकार किये पांच अणुव्रत सात शिक्षाव्रत स्वयमेव अंगीकार कर विचरो तो तुमारी इस वक्त सुप्रव्रज्या होवे" इत्यादि।

देखो खास ढूंढिये लोग अपने छपवाये निरयावली " सूत्र में सोमिल मिथ्यात्व में गिरकर अपने मुंहपर काष्टकी मुंहपत्ति बांधी थी उसको दुष्ट (खोटी) कहकर देवता ने छुडवाया, और श्रावक धर्म अंगीकार करने से सुप्रव्रज्या (अच्छी दीक्षा) कही, ऐसा ढूंढिये ही लिखते हैं. तिसपर भी सोमिलके काष्ट मुद्रा बांधने का प्रमाण आगे करके जैन मुनियों को हमेशा मुंहपत्ति बांधने का ठहराकर उत्सूत्र प्ररूपणा से मिथ्यात्व फैलाते हैं, यह कितना बडा भारी अधर्म ह सो पाठकगण आपही विचार सक्के ह।

और "जैन तत्त्वादर्श" नामा ग्रन्थ के चौथे परिच्छेद में श्री विजयानंद सूरि आत्मारामजी महाराज ने सांख्यमत के साधुओं का स्वरूप बतलाया है, उसमें काष्ट मुद्रा मुंहपर बांधने का लिखा है. ढूंढिये लोग इस बातको अपने मन में समझते हुए भी मायाचारीका प्रपंच करके भोले जीवों को अपने मत में फँसानेके लिये "जैनतत्वादर्श" के नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधने का ठहराते ह, सो भी सर्वथा झूंठ है। क्योंकि-इन्ह महाराज ने ढूंढकमत को झूंठा समझ कर त्याग किया है और "सम्यक्त्वशल्योध्धार" नामा ग्रन्थ में हमेशा मुह बांधने का निषेध करके श्रीजिन मूर्तिको मानने पूजनेका आगमपाठानुसार अच्छी तरह से सिद्ध करके बतलाया है उस ग्रन्थके बांचने से हजारों जीवोंने ढूंढक मतको झूंठा जानकर त्याग किया है अभी त्याग कररहे हैं और आगे त्याग करेंगे. इसलिये इन महाराजके नामसे हमेशा मुहपत्ति बांधनेका ठहराना यही बडी मायाचारी है।

मिथ्यात्व छुडाने के लिये उपदेश तो हमेशाही देना योग्य है, उसमेंसे जो जो आत्मार्थी ढूंढिये सोमिल की तरह अपनी मुंह बंधने रूप मिथ्यात्व की क्रियाको छोडकर शुद्ध धर्म अंगीकार करने वाले होगें वह तो उपरके देवाता के दृष्टान्त की तरह वंदन करने के योग्य होगें परंतु सोमिल की तरह मुंह वंधा रखने रूप मिथ्यात्वी क्रिया करने वाले वंदनादिकरने के योग्य कभी नहीं होसकते. जिसपरभी ऐसे मिथ्यात्वी क्रिया करने वालों को शुद्ध संयमी जानकर दृष्टिराग से जो वंदनादि करेगा, वह अवश्य जिनाज्ञा का विरोधक होगा. इस वात को विवेकी दीर्घदृष्टिवाले पाठकगण अच्छी तरह से विचार सकते हैं।

७१. फिर भी देखिये विचार करिये—सम्यक्त्वमूल वारह व्रत के शुद्ध श्रावक धर्म से भ्रष्ट होकरके मिथ्यात्व में गिरने वाला, कन्दमूलादि अनन्त जीवों को भक्षण करने वाला, गंगानदी में स्नान करके अग्नि होम बलिदानादि मिथ्यात्व की क्रिया करने वाला सोमिल तापस नेअपने मुखपर लकडेकी पटडी वांधीथी और हमेशा सर्वथा मौन रहता था। ढूंढिये लोग उनका प्रमाण बतलाते हैं तव तो सोमिल की तरह सब ढूंढियों को भी सोमिल जैसा वेष बनाकर सोमिल की तरह गंगा नदीका स्नान-अग्नि होम वलिदानादि सर्व कार्य करते हुए अपने मुखपर लकडे की पटडी बांधना योग्य है. और हमेशा मौन रहेना चाहिये, क्यों कि सोमिल तापसके काष्ट मुद्रा बांधनेका प्रमाण बतलाकर जैन मुनियों को हमेशा मुंहपात्ति से मुंह बंधा रखना ठहराना यह कभी नहीं बन सकता। इसलिये अगर ढूंढियों को मुख बांधनाही पसंद हो तो जैन नाम धारण करना छोडदें और जैन शासन पसंद हो तो हमेशा मुंह बांधने रूप मिथ्यात्व को छोड दें. इसलिये जो आत्मार्थी ढूंढिया होगा वह ऐसे मिथ्यात्व को अवश्य ही त्याग करेगा। देखो-सोमिल ने देवता के उपदेश से अपना मिथ्यात्व त्याग करके अपनी भूलको सुधार ली तो उसीसे शुद्ध धर्म को प्राप्त करने वाला हुआ और आत्म कल्याण करके मोक्ष में जावेगा. परन्तु अपनी भूलको न सुधारने वाले ढूंढियों की क्या २ गति होगी ? जैन नाम धारण करके हमेशा मुख बंधने रूप मिथ्यात्वकी क्रिया करने वाले व ऐसे मिथ्यात्वकी प्ररूपणा करके उसीको पुष्ट करने वाले तथा भोले जीवोंको ऐसे उन्मार्ग में फँसाने वाले और जैन शासन में हमेशा मुख बांधने रूप मिथ्यात्वका झगडा फैलाने वाले ढूंढियों को

कितना संसार परिभ्रमण करना पडेगा सो तो ज्ञानी जी महाराज जाणे, तोभी " उस्सुत्तभासगाणं बोहिनासो अणंत संसारो " इस प्रमाणसे ऐसी खोटी प्ररूपणा करने वालोंको सम्यक्त्वका नाश और अनन्त संसारकी वृद्धि होनेका देखने में आता है. इसलिये मोक्षाभिलाषी पुण्यवान् सर्व ढूंढिये सज्जनों को हमेशा मुंह बांधने रूप ऐसे मिथ्यात्वी कुपंथ का अवश्य ही त्याग करना चाहिये।

(खास जरूरी सूचना.)

७२. शासन भक्त सर्व संवेगी साधू–साध्वी–यति–श्रीपूज्य–आगेवान् सेठीये और श्रावक श्राविकादि सबको सूचना देने में आती है-कि जैसे वह देवता सोमिल को समझाने के लिये हमेशा सोमिलके पीछे लगगयाथा उससे छेवटमें सोमिल को मिथ्यात्व से छुडवाकर शुद्ध धर्ममें स्थापित करने रूप बडा उपकार करने वाला हुआथा. इसी तरह से प्रत्येक गांवडोंमें, प्रत्येक शहरोंमें, रास्तेमें, जंगल में, जहां २ आप लोगों को मुंह बांधने वाले ढूंढिये मिलें वहां २ उन्होंके पीछे लगकर ऊपरके सूत्र पाठ व युक्ति युक्त समीक्षा के लेखोंको समझा कर ; उपदेश देकर, सोमिल की तरह हरदम मुंह बंधने रूप मिथ्यात्व को अवश्य छुडवाईये और जिनाज्ञानुसार यत्ना पूर्वक बोलने के लिये मुहँ आगे मुंहपत्ति हाथमें रखने का शुद्ध जैन धर्म अंगीकार करवाने रूप बडा उपकार करने का लाभ लीजिये. हरदम मुंह बंधा रखने से अन्य दर्शनीय हिन्दू–मुसलमान–ईसाई वगैरह लोग ढूंढियों को मुंहबंधे २ कहकर हंसी करते हुपे बिचारे कर्म बंधन करते हैं, जैन शासन की लघुता करते हैं, सो ढूंढियों का मुंह बांधना छुडवाने से उन लोगोंके कर्म बन्धन छुटेगें, शासन की निन्दा बचेगी, उसका भी बडा भारी लाभ आपको मिलेगा. और सोमिल ने मिथ्यात्व सेवन की आलोयणा नहीं लीतो विराधक हुआ है इसलिये इन ढूंढियोंको हरदम मुंह बांधने रूप मिथ्यात्व सेवन करने की आलोयणा दिलवाकर उन्हों को आराधक बनवाईये, नहीं तो बिचारे विराधक होकर भवोभव संसारमें भटकेगें। इससे जो २ ढूंढिये आत्मार्थी होंगे वह तो ऐसे मिथ्यातव सेवन की आलोयणा लेकर अवश्यही अपनी आत्माको शुद्ध करेंगे, आराधक होगें, उससे उन्हों की आत्मा का शीघ्र कल्याण होगा, इसलिये उन्हों का आलोयणा दिलवाके विराधकपनामें धर्मांतरजाने के महान्पापसे भी अवश्य बचाव

करायेगा. और जैसे माता पिता व वैद्य अज्ञानी बालकका रोग नाश करने के लिये उपकार बुद्धि से कड़ुकदवा देते हैं, उसपर वह बालक बहुत नाराज होता है, तो भी वो उपकारी जन उस अज्ञानी बालककी नाराजी पर कुछभी ख्याल न करते हुए उसको दवा देकरके रोग मुक्त करते हैं, सुखी करते हैं. तैसे ही इन ढूंढियों का भी हरदम मुंह बांधने रूप मिथ्यात्वका रोगको नाश करनेके लिये आपका अमृत तुल्य उपदेश भी ढूंढियोंको कटुक लगे, नाराज होवे, अनुचित बचन बोलें, झगडा मचावें, तोभी उन्हों की अज्ञान चेष्टा तरफ ख्याल न करते हुए आप लोगतो उन्हों के ही उपकार के लिये मुंह बंधने के मिथ्यात्व रोगसे अवश्य ही छुडवाईये. श्रीजैन शासन में हरदम मुंहबंधा रखनेका किसीभी आगम में नहीं लिखा; तोभी यह लोग हरदम मुंह बांधकर शासन की हीलना करवाते हैं. और मिथ्यात्व बढाते हुए शासनके शत्रुता का ही काम करते हैं. इसलिये ऐसे अज्ञानियों को ऐसे कुपंथ से छुडाने में ही अपना श्रेय है. इसबात को जिनाज्ञा के आराधक परोपकारी तत्त्वज्ञ जनअच्छी तरह से समझ लेंगे।

(मुंहपत्ति हाथपत्ति का निर्णय.)

७३. ढूंढिये लोग कहते हैं कि-करमें रक्खे सो करपत्ति; याने-हाथ में रक्खे सो हाथपत्ति कही जावे और मुंहपर बांधे सो मुंहपत्ति कही जावे इसलिये मुंहपत्ति मुंहपर बांधना योग्य है परन्तु हाथ में रखना योग्य नहीं है. ढूंढियों का ऐसा कहना अज्ञानता जनक होनेसे प्रत्यक्षही झूठ है, क्योंकि देखिये-प्रथम तो मुंहपत्ति मुंहपर बांधने वाले ढूंढिये ही हमेशा दिनमें दो दफे जब आहार करते हैं तब अपने मुंहपर से मुंहपत्ति को उतार कर आसन पर या गोडे पर रखते हैं, उस वक्त मुंहपत्ति मुंह से दूर आसन पर या गोडे पर रहती है, मुंहपर बंधी हुई नहीं होती तो भी उसको मुंहपत्ति कहते हैं परन्तु आसन पट्टी नहीं कहते हैं. इसी तरह मुंहपर न बांधने पर हाथमें रहे तोभी उसको हाथपत्ति कभी नहीं कह सक्के, किन्तु मुंहपत्ति ही कहेंगें.

७४. फिरभी देखिये जिस कामके लिये जिस वस्तुका उपयोग करने में आता होवे उसके अनुसार व्यवहार से उनका नाम कहने में आता है, जैसे वैद्यगी करने वाले को वैद्य कहते हैं, न्यायालय में बैठकर न्याय करने वाले को न्यायाधीश कहते हैं, वकीलात करने वाले को वकील क-

हते हैं, देशकी सेवा करने वाले को देश भक्त कहते हैं, व्याख्यान देने वाले को वक्ता कहते हैं, माता-पिता-गुरु की सेवा करने वाले को माता-पिता-गुरु भक्त कहते हैं और सामायिक—प्रतिक्रमणादि धर्मकार्य करने वाले को धर्मी पुरुष कहते हैं इत्यादि २ यह सब कार्य हररोज २४ घंटे (६० घड़ी) हरदम हमेशा करने में नहीं आते, परन्तु जब उस कार्य का प्रयोजन होवे तब वह कार्य थोड़ी देरके लिये करने में आते हैं तो भी उन्होंके नाम तो कार्यके अनुसार वही कहे जाते हैं वैसेही मुंहपत्ति हाथमें रखे तो भी मुंहके आगे रखनेका प्रयोजन होने से उसको मुंहपत्ति ही कहेंगे मगर हाथपत्ति कभी नहीं कह सक्ते. जिसपर भी ढूंढिये लोग हाथमें रखने को हाथपत्ति कहते हैं सो बड़ी भूल है।

७५. फिरभी देखिये—जैसे अंग पर ओढने के काम में आने वाले वस्त्र को चद्दर कहते हैं, उसको खंधे पर रक्खी हो, गठडी में बंधी हो, आशन पर धरी हो, खूंटी पर धरी हो, या कारण वश धोकर सुखानेको फैलाई हुई हो तो भी वह चद्दरही कही जावेगी. क्योंकि उसका उपयोग उसी कार्य में होता है. इसलिये चद्दर को खंधादि अन्य स्थानों पर रखने से खंभा पट्टी आदि अन्यनाम नहीं कहसक्ते. वैसेही आसन व झोली और पात्रे वगैरह के लिये भी समझ लेना. इसी तरहसे मुख के आगे रखने के कार्य में आने वाले वस्त्रको मुंहपत्ति ही कहने में आवेगी परन्तु हाथ में रखने से हाथपत्ति कभी नहीं कहसक्ते जिसपर भी ढूंढिये लोग भोले जीवों को उन्मार्गमें डालने के लिये मुंहपत्ति को हाथ में रखने से हाथपत्ति कहकर हमेशा मुंह बाधनेके अपने झूठे पक्षको पुष्ट करने की कोशिश करते हैं सो ऊपरके न्याय से उनका झूठा पक्ष सच्चा कभी नहीं होसक्ता.

७६. और भी देखिये-ढूंढिये लोग मुंहपर बांधे सो मुंहपत्ति व हाथ में रखे सो हाथपत्ति कहते हैं, ढूंढियों के इस न्यायसे मुंहपर मुंहपत्ति बांधने की तरह हर समय चलते, खडे रहते, सोते, वार्तालाप करते, गौचरी करते, हरदम २४ घंटे हमेशाही रजको दूरकरता रहे उसको रजोहरण कहाजावे और बगल में रखें उसको बगलकी पूछ कहीजावे, इसलिये ढूंढिये लोग अपने न्याय से बगल में रखें उसको तो रजोहरण कभी नहीं कह सकते, यदि बगल में रक्खे हुए को रजोहरण कहने में कोई हरकत नहीं है तो हाथमें रखी हुई को मुंहपत्ति कहने में भी कोई

हरज नहींहै. जिसपरभी अपने वगलमें रखे हुए को रजोहरण कहते हैं. और दूसरे लोग मुंहपत्ति को हाथमें रखते हैं उनको हाथपत्ति कहकर निषेध करनेके लिये भोले जीवोंको भ्रममें डालतेहैं. यह कैसी मायाचारी की ठग बाजी है. मुंहपत्तिको हाथमें रखनेका निषेध करनेके लिये कुतर्क करते हुए अपनी कुतर्कके अपने ही न्यायसे रजोहरण को वगलमें रखकर वगल पूछ ठहरातेहैं यही बडी अज्ञानताहै।

७७. यत्ना पूवर्क उपयोग सहित हाथसे मुंह के आगे रखकर बोलने वालों की मुंहपत्तिको हाथपत्ति कहकर मुंहपत्ति के नामका निषेध करतेहैं, यही ढूंढियों की उत्सूत्र प्ररूपणाहै. क्योंकि जैनागमानुसार नैगमादिनयके मतसे साधु मुंहपत्तिके लिये गृहस्थके घरपर वस्त्रलेनेको जावे तबभी उसको मुंहपत्ति कहते हैं, मुंहपत्तिकेलिये वस्त्रकी याचना करें उसकोभी मुंहपत्तिही कहते हैं और मुंहपत्तिके लिये वस्त्रलेवे उसकोभी मुंहपत्तिही कहतेहैं. इसलिये जैनागमानुसार नैगमादि नयके प्रमाणसे मुंहपत्तिको मुंहआगे रखकर यत्नापूर्वक शुद्ध उपयोगसे जिनाज्ञानुसार हितके वचन बोलने वालोंकी मुंहपत्तिको हाथपत्ति कहकर निषेध करनेवाले जिनाज्ञाको उत्थापन करते हुए मिथ्या दृष्टि निन्हव ठहरतेहैं. अगर उन्होंकों जैनागमानुसार गुरुगम्यताकी शैलीसे नयवादका कुछभी ज्ञानहोता तो उपयोग पूर्वक मुंहके आगे रखकर बोलने वालोंकी मुंहपत्तिको हाथपत्ति कहकर कभी निषेध नहीं करते, इसीसेही जाहिर होताहै कि ढूंढियेलोग जैनागमोंके गंभीरार्थ वाले आशयके अनजान होनेसे जिनाज्ञा विरुद्ध हमेशा मुंहबांधनेका झूठापक्ष पकड बैठेहैं. जैनशासन स्याद्वाद शैलीसे सातोंही नयोंके मतको यथायोग्य मानने वाला है. इसीसे साधू मुंहपत्तिके लिये वस्त्रलेने जावे, याचनाकरे और वस्त्रलेवे उसको मुंहपत्ति कहतेहैं. उसी मुंहपत्तिको उपयोग पूर्वक बोलनेके लिये मुंहआगे रखने वालोंको हाथपत्ति कहकर निषेध करना यह कैसी भारी अज्ञानताहै. इसबातको तत्त्वज्ञपाठकगण अच्छीतरहसे समझ सकतेहैं।

७८ ढूंढियेलोग मुंहपर बांधे उसको मुंहपत्ति कहतेहैं उसके अनुसार तो ढूंढियेलोगोंको रजोहरणको भी दोनोंपैरोंके बांधकर हरसमय रजको दूर करतेही रहनाचाहिये और पात्रोंमें अहोरात्र हरसमय आहार

करतेही रहनाचाहिये तवतो ढूंढियोंके कहने मुजब उन वस्तुओंके कार्य प्रमाणे नाम सफल हो जावेगें नहींतो निष्फल हो जावेंगे, अगर ऐसा करते रहें तोभी एकांतवाद प्राप्त होनेसे मिथ्यात्वी ठहरेंगे और सब जगतके भी विरुद्धहोगा. देखिये—भोजन करनेके समय पात्र को पात्रही कहतेहैं परन्तु भोजन न करनेके समय पात्र को पात्र न कहना ऐसा कोईभी नहीं कहसक्ता और मान सक्ता भीनहीं. इसीतरहसे यदि ढूंढिये लोग भी चद्दर-चोलपट्टा-रजोहरण-पात्रे आदिको नजदीक पडे रहें तो भी वही नाम मानतेहैं, वैसेही मुंहपत्ति भी हाथमें हो या नजदीक पडी हो तो भी उसको मुंहपत्तिही कहना व मान्य करनाही पडेगा परन्तु हाथपत्ति कभी नहीं कहसक्ते, इसलिये मुंहपत्तिको हाथपत्ति कहकर निषेध करतेहैं सो भोले जीवोंको उन्मार्गमें डालनेकी यह प्रत्यक्षही ठगवाजी जाहिर होतीहै. ऐसेही 'पगकी रक्षाकरे सो पगरक्खी' कहीजावे, उसको भोजन करते, जलपिते, सोते, स्नान करते, प्रतिक्रमण करते, पौषधकरते, मुनिको दानदेते, व्याख्यान सुनने वगैरह सर्वकार्य करते हुए पगमें हमेशा पहीनीहुई रखनेका कोईभी धर्मी पुरुष मान्य नहींकरता, परन्तु चलनेका कामपडे तब पगमें पगरखीको पहिनतेहैं. व अन्य समय पासमें पडी रहने परभी उसको पगरखीही कहतेहैं, वैसेही जब बोलनेका कामपडे तब मुंहपत्तिको मुंहआगे रखतेहैं व अन्यसमय हाथ में या पासमें पडीरहें तोभी उसको मुंहपत्तिही कहना यह जगतप्रसिद्ध न्यायहै. तोभी ढूंढिये मुंहपत्तिको हाथपत्ति कहकर निषेध करतेहैं सो प्रत्यक्ष झूठ बोलकर जगतके सामने अपनी वडी अज्ञानता प्रकटकरतेहैं. इतनेपरभी ढूंढियोंके मानेहुए 'मुंहपर वांधेसो मुंहपत्ति' वाले इसन्यायकी तरह 'पगमें रक्खे सो पगरक्खी' कोभी हमेशा पहिनीहुई रखवाकर सब ढूंढियें गृहस्थी खान—पान व सामायिकादि सर्व धर्मकार्य करने करवानेका स्वीकार करलें तो ढूंढियोंका यह न्याय सच्चा समझाजावे और ढूंढियोंके विवेक वुद्धिकी व पवित्रताकी भी जगतमें खूब शोभाहोवे. इसलिये ऐसे न्याय मानने वालोंकोतो ऐसाही करना योग्यहै. अगर ऐसा न करें तो 'मुंहपर वांधे सो मुंहपत्ति' ऐसी अपनी अज्ञान दशाको छोडकर शुद्ध जैनधर्म अंगीकार करें, व्यर्थही खोटी कुयुक्ति लगाकर भोले जीवोंको उन्मार्गमें डालकर पापके भागी न बनें सत्य बातके ग्रहण

करनेकी अभिलाषावाले आत्मार्थियोंको ऐसे मिथ्यात्वका त्याग करना ही श्रेय कारीहै।

(श्रीगौतमस्वामीका और अइमत्ता कुमारका अधिकार.)

७९. ढूंढियेलोग कहते हैं कि—गौतमस्वामीजी महाराज जब गौचरी गयेथे तब राजकुमारने महाराजके हाथकी अंगुली पकडकर रास्तेमें बातें करते हुए अपने राज महलमें लेगयाथा, उसवक्त एकहाथ में पात्रोंकी झोलीथी; दूसरे हाथकी अंगुली कुमारने ग्रहणकीथी और बातें करतेहुए खुलेमुंह बोलना साधूको कल्पे नहीं, इसलिये मुंहपर मुंहपत्ति बंधी हुई होवे तभी रास्तेमें चलते बातें होसकतीहैं, उससे मुंहपत्ति बांधना ठहरताहै. ऐसा ढूंढियोका कहना अन समझकाहै. क्योंकि सूत्रवृत्ति सहित छपेहुए "अंतगडदशा" सूत्रके पृष्ठ २३—२४ में ऐसे पाठहैः—

"तते णं भगवं गोयमे पोलासपुरे नगरे उच्चनीय जाव अडमाणे इंदठ्ठाणस्स अदूर सामंतेणं वीतीवयाति, ततेणं से अइमत्ते कुमारे भगवं गोयमं अदूरसामंतेणं वीतीवयमाणं पासति २ त्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागते २ भगवंगोयमं एवं वदासी-केणं भंते! तुब्भे किं वा अडह ततेणं भगवंगोयमे अइमत्तं कुमारं एवं वयासी अम्हेणं दवाणुप्पिया! समणा णिग्गंथा ईरियासमिया जाव बंभयारी उच्चनीय जाव अडामो, तते णं अतिमुत्ते कुमारे भगवंगोयमं एवं वयासी एह णं भंते! तुब्भे जा णं अहं तुब्भं भिक्खं दवावेमीत्तिकट्टु भगवं गोयमं अंगुलीए गेण्हति २ जेणेव सतेघिहे तेणेव उवागते" इत्यादि।

८०. इस पाठमें भगवान् गौतमस्वामी पौलाशपुरी नगरीमें गौचरी के लिये फिरतेथे वहां अईमता (अतिमुक्तक) कुमारने गौतमस्वामी को देखे; देखकर पासमें आया; आकर पुछा कि आप कौन हैं और किसीलिये फीरते हैं तब गौतमस्वामीने कहा हम श्रमण निर्गन्थ व इरिया समिति आदि धारण करनेवाले ब्रह्मचारी साधूहैं, और गौचरीके लिये फिरतेहैं. ऐसा वचन सुनकर अईमत्ता कुमारने कहा आप मेरेघर पधारें मैं आपको गौचरी (आहार) दिलावुं. इसप्रकार कहकर बालस्वभाव व गुरुभक्तिसे गौतमस्वामीकी अंगुली पकडकर अपने राजमहलमें अपनी माताश्रीदेवीके पासमें लेआया, तब श्रीदेवीने भक्तिपूर्वक वंनादिक-

करके आहार वहोराया.

८१. देखिये-ऊपरके पाठमें गौतमस्वामीकी अंगुली पकडकर कुमार अपने महलमें लेगया ऐसा लिखाहै, परन्तु रास्तेमें बातेंकरते हुए चलेगये, ऐसा नहींलिखा, इसलिये रास्तेमें बातें करते चलेगये ऐसा ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठहै।

८२. अगर कहा जाय कि यदि अईमत्ता कुमार रास्तेमें बातेंकरते चलता या अन्यकोई आकर वन्दनादि करता वा कुछ सवाल पूछता तो उस वक्त एक हाथमें पात्रोंकी झोलीथी, दूसरे हाथकी अंगुली कुमारने पकडीथी इससे तीसरा हाथ नवीन बनाकर उससे मुंहपत्ति मुंहपर रखकर जवाब देना पडता या खुल्ले मुंहबोलना पडता. इसलिये यदि मुंहपर मुंहपत्ति बंधीहुई होवेतो रास्तेमें चलते बातेंकरने वगैरहमें कोई बाधा नहीं पडती, उससे मुंहपत्ति बांधनाही ठीकहै. यहभी ढूंढियोंका कहना अनसमझकाहै, क्योंकि देखो-रास्तेमें बातें करते हुए चलना साधूको कल्पता नहींहै. और गौतमस्वामी भगवान्‌के व अईमत्ता राजकुमारके रास्तेचलतेहुए कुछभी बातें हुईभीनहीं इसलिये कुमारके साथ रास्तेमें बातें करनेकी शंका करनाही व्यर्थहै. जिसपरभी कभी अईमत्ता कुमार कुछ बातें करता या अन्य कोई आकर वंदनादि करता, कुछ पूछता तो एक जगहमें खडे रहकर साधूके खंभेपर कंबली रहतीहै वह मुंहके आगे डालकर उससे बातें करलेते, पूछनेंका जवाब देदेते, पीछे आगे चलते. अथवा पात्रोंकी झोली वाले हाथसे मुंहपत्ति मुंहआगे रखकर जवाब देसकतेथे क्योंकि आहार लिया नहींथा, इसलिये पात्रोंकी खाली झोलीमें कुछ वजन नहींहोता उससे झोलीवाला हाथभी मुंहआगे रखनेमें कोई हरकत नहीं होसकती, झोलीवाले हाथसे भी मुंहकी यत्ना अच्छीतरहसे हो सकतीहै. अथवा कभी कुमार बातें करते चले तो यथायोग्य हुं हुं आदि चेष्टासे जवाब देते हुए चले जावें अथवा कुमार बातें करता होवें उसको चुपचाप सुनते हुए चले जावें उसका नामभी वार्तालापहै. इसमें तो विना मुंहपत्तिसेभी काम चल सकताहै, इससे हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति बंधी रखनेका कभी नहीं ठहरसकता. जिसपर भी मुंहपत्ति मुंहपर बंधीहुई ठहरानेकाआग्रह करनेवाले बडेही अज्ञानी समझ ने चाहिये।

८३. फिरभी देखो विचारकरो–साधूको छींक आवेतो हाथसे, याने– मुंहपत्तिसे मुंहकी, याने–नाक–मुंह दोनोंकी यत्ना करके पीछे छींकादि करनेका आचारांगादि मूलआगमोंमें कहाहै, इसलिये यदि रास्तेमें चलतेहुए कभी गौतमस्वामीको छींक आतीतो खडेरहकर कुमारसे हाथ छुड़वाकर उस हाथसे या झोलीवाले हाथसे मुंहकी यत्नाकरके छींकको अवश्यही करते परन्तु वहां तीसरा हाथ नवीन बनाकर मुंहकी यत्ना नहीं करते, या नाक और मुंह दोनों खुल्ले रखकर छींकादि कभी नहीं करते. यह बात ढूंढियोंकोभी मन्य करनीही पडतीहै (ढूंढियोंके कहने मुजब मुंहबन्धा हुआ होवे तो भी छींकआवे तवतो नाककी यत्ना हाथसे अवश्यही करनी पडती हैं) इसीतरहसे रास्तामें चलते हुए कभी बातें करने का काम पडजाता तो खडे रहकर कुमारसे हाथ छुड़वाकर या झोलीवाले हाथसे मुंहकी यत्ना करके जवाब देसकतेथे, इसलिये तीसरा हाथ नवीन बनाकर मुंहके आगे मुंहपत्ति रखनेकी या खुल्ले मुंहबोलनेकी कोई जरूरत नहीं थी. इसन्यायसेभी हाथमें मुंहपत्ति रखना साबित होताहै, परन्तु हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखना कभी नहीं ठहर सकता. जिसपरभी ढूंढियेलोग अपनी अज्ञतासे बन्धीहुई ठहरानेकी कुतर्क करते हुए विना प्रयोजन गणधर महाराजको हमेशा मुंहबन्धा रखनेका झूठा दोष लगातेहैं और आगमार्थके आशयको समझे बिना हमेशा मुंहबंधा रखनेका झूंठा पंथ चलाते हुए उत्सूत्रप्ररूपणासे मिथ्यात्व बढातेहैं इसलिये आत्मार्थियों को ऐसे झूंठे पंथका त्याग करनाही उचितहै।

८४. यह केवल ज्ञानी सर्वज्ञ भगवान्‌का कहाहुआ जैनशासन है उसमें मोक्षसिद्धिके लिये कोईभी क्रिया बिनाप्रयोजन (निष्फल) नहीं बतलायी, किन्तु यथायोग्य सर्व क्रियाएँ सप्रयोजन (सफल) ही बतलाईहैं. रजोहरण और मुंहपत्ति जिनकल्पी आदि सर्व साधुओंको रखने की भगवान्‌की आज्ञाहै, उसका काम पड़े जब प्रयोजन होवे तब उपयोग किया जाताहै परन्तु बिनाप्रयोजन उपयोग नहीं होसकता, यहबात सामान्य बुद्धिवाला मनुष्यभी अच्छीतरहसे समझ सकताहै तोभी ढूंढियेलोग हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखतेहैं सो निष्प्रयोजन होनेसे निष्फलहै. और भगवान्‌की आज्ञाकेभी विरुद्धहै; देखिये बोलनेका कामपड़े प्रयोजनहोवे तब मुंहआगे मुंहपत्ति रखना यहतो सप्रयोजन सफलहै और बिनाबोले

मुंहपर हमेशा बंधी रखना सो निष्प्रयोजन निष्फलहै, जब साधू १-२ प्रहर, १-२ दिन या महीना पंदरहरोज अथवा चार छ महीने वर्षतक मौन पणे काउसग्ग ध्यानमें रहे तब बोलनेका कुछभी प्रयोजन नहीं पडताहै, उससमय हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति बंधी रखनेका कोईभी प्रयोजन नहींहै, तिसपरभी ढूंढियेलोग वर्षभरके काउसग्ग ध्यानमें उस समयभी मुंहपत्ति बंधी रखनेका कहते हैं और अभी बंधी रखतेहैं सो निष्प्रयोजन निष्फल होनेसे जिनाज्ञा विरुद्धहै. अगर हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका सर्वज्ञके कहेहुए शास्त्रोंमें होवेतो निष्फल क्रिया करनेका उपदेश देनेवाले सर्वज्ञ ठहरजावें, उससे सर्वज्ञ पनेमें बाधाआवे, सर्वज्ञ होकर निष्फल क्रियाका उपदेश कभी नहीं करसकते, इसलिये सर्वज्ञके कहेहुए जैनशासनमें हमेशा महबंधनेकी निष्फल क्रिया कभी नहीं होसकती. ढूंढियेलोग हमेशा मुंहबाँध कर सर्वज्ञ शासनके नामसे सर्वज्ञके शास्त्रोंकी, और सर्वज्ञके शासनकी बडीभारी अवज्ञा (हीलना) करवातेहैं, यहलोग सर्वज्ञ भगवान्के भक्तनहीं किंतु शत्रुताका काम करतेहैं इसलिये इनलोगोंको सच्चेजैनी कहना और मानना सर्वथा अनुचित्तहै, आत्मार्थियोंको ऐसे कुपंथको अवश्यही त्याग करना योग्यहै ।

८५. फिरभी देखिये विचार करीये-जैसे रजोहरणका वैठने, सोने वगैरह कार्यों के लिये जब प्रयोजनहोवे तब उससे रजादिदूर करनेका काम लिया जाताहै और कभी पैर वगैरहके उपर सचित्तरज या त्रस जीवपड जावें तो पूंज-प्रमार्जन करके उसको भी उपयोग पूर्वक दूरकरनेमें आवे, नहींतो विनाप्रयोजन रजोहरणभी पासमें नजदीक पडारहताहै. तैसेही रजोहरणकी तरह मुंहपत्तिसेभी बोलनेका कामपड़े जब प्रयोजन होवे तब मुंहके आगे रखकर यत्नापूर्वक बोलनेका कार्यकरना और मुंहके उपर मस्तकके उपर, कानोंके उपर या नाशिकादि स्थानों के उपर कोई सूक्ष्म त्रसजीव पडजावेतो उसको मुंहपतिसे उपयोग पूर्वक पूंज-प्रमार्जन करके दूर करनेमें आताहै, नहींतो विनाप्रयोजन रजोहरणकी तरह मुंहपत्ति भी पासमें नजदीक पडी रहतीहै, इसलिये मस्तकादि उपर त्रसजीवादि पड़ें उसीवक्त मुंहपत्तिका उपयोग किया जातहैं, यदि हमेशा मुंहपर बंधीहुई होवेतो मस्तकादिके उपर प्रमार्जना कैसे होसके, अगर रजोहरणसे प्रमार्जना करनेका कहा जावेतो यहबात अनुचित्तहै और बन सकतीभी,

नहीं क्योंकि रजोहरण जमीन आसन व पैरदिके पूंजनेके काममें आता है उसको मस्तकपर फेरना अनुचितहै और रजोहरण वडा होनेसे आँख, कान, नाकादि, छोटे स्थानोंपर सूक्ष्म जीवोंको पूंजनेके काममें नहीं आसकता. इसलिये इनछोटे स्थानोंको पूंजनेके लियेतो मुंहपत्तिही काममें आतीहै, यह प्रत्यक्ष अनुभव सिद्धहै और शास्त्रकारोंनेभी मुंहपत्तिसे पूंजनेका लिखाहै उसके पाठआगेके लेखोंमें बतलानेमें आतेहैं इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बंधीरखना सर्वथा अनुचितहै अगर कहा जाये कि छोटीसी पूंजणी रखकर उससे आँख, नाशिका, कानादिछोटे स्थानोंको पूंजना-प्रमार्जना करेंगे, ऐसा कहनाभी शास्त्र विरुद्धहै, क्योंकि मुंहपत्ति रखनेका प्रयोजनही शास्त्रोंकारोंने मुंह आगे रखनेका और सूक्ष्मजीवोंकी प्रमार्जना करनेका खुलासा पूर्वक बतलायाहै. रजोहरण व मुंहपत्ति दोनों वस्तु पूंजने प्रमार्जनेके लिये शास्त्रोंमें कहींहैं परन्तु तीसरी छोटी पूंजणी रखकर मुंह आदि पूंजन-प्रमार्जन करनेका किसी भी शास्त्रमें किसी जगह नहींलिखा, शास्त्रकारोंने मुंहपत्तिसे प्रमार्जन करनेका लिखाहै सो करना नहीं और शास्त्रविरुद्ध होकर हमेशा मुंहपर बांधीरखना और मुंह, नाशिका, कानादि प्रमार्जनके लिये अपनी कल्पना मुजब तीसरी पूंजणी रखनेका नवीन ढोंग चलाना यहभी मिथ्यात्वहीहै।

(मुंहपत्ति हमेशा बाँधी रखनेमें कष्टहै या हाथमें रखनेमें कष्टहै ?)

८६. ढूंढिये कहतेहैं कि विनाकष्ट सहज काम हरएक आदमी जगतमें करलेताहै, परन्तु कष्टवाला कार्यतो कोई वीरलाही करताहै, वैसेही मुंहपत्ति हमेशा बंधी रखना यहभी वडा मुश्किलीका कामहै, इसलिये हरएक नहीं करसकता; केवल हमलोगही यह कष्टका काम करसकते हैं. यहभी ढूंढियोंका कहना सर्वथा अनुचितहै, क्योंकि देखो-जैनागममें शुद्ध उपयोग रहित अज्ञान कष्टको मिथ्यात्व कहाहै, वह अज्ञान कष्ट आत्महित करनेवाला नहीं होसकता और ज्ञानसहित शुद्ध उपयोगसे थोड़ासा कष्टकरे तोभी वह मोक्ष देने वाला होताहै. नरक व तिर्यंच गतिमें प्राणी कर्मवश अनंत कष्ट भोगताहै तोभी मोक्ष नहींहोता और ज्ञानीपुरुष कष्टविनाभी शुद्ध उपयोगसे (मारुदेवी माताकी तरह) मोक्षप्राप्त करलेताहै. उससे हमेशा मुंहपत्ति बंधीरखना यह जिनाज्ञा विरुद्ध होनेसे अज्ञानकष्ट संसार वृद्धिका कारणहै, इसलिये ऐसे अज्ञान कष्टका ढूंढियोंको अभिमान

करना सर्वथा व्यर्थहै ।

८७. फिरभी देखिये—दोरा डालकर हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखनेमें शरीरको कुछभी कष्टनहींहै व उपयोगभी शुन्य रहताहैं और हाथसे मुंहपत्तिको मुंहआगे रखनेसे जब २-४ घंटे बोलनेका कामपड़े तब मुंहआगे २-४ घंटे हाथरहनेसे स्थंभित होजाताहै, दुःखने लगजाताहै, उपयोगभी शुद्ध रहताहै. देखो—जबजब बोलनेका कामपड़े तबतब हरसमय शुद्धउपयोग रखकर मुंहआगे हाथरखना पडताहै तथा जब छींक, उबासी वगैरह आवें तबभी उपयोग पूर्वक मुंहआगे हाथरखना पडताहै, इससे सदा हरसमय उपयोग शुद्ध रहताहैं, वारवार हाथको कष्टदेना पड़ताहै. उससे अशुभ कर्मोंकी निर्जराभी ज्यादे होतीहै और मुंहपत्ति हमेशा मुंहपर बंधीहुई होवेतो हाथको कष्टदेनेकी कुछभी जरूरत रहतीनहीं हरसमय मुंहआगे हाथ रखनेका उपयोगभी नहींरहता, उससे कर्मोंकी निर्जराभी नहींहोती, इसलिये हाथमें मुंहपत्ति रखनेसेही कर्मोंकी निर्जरा करनेवाला व शुद्ध उपयोग वाला कष्टज्यादे होताहै, परन्तु बंधी रखनेमें कष्टनहींहै. तोभी ढूंढिये हमेशा बंधी रखनेमें कष्ट बतलातेहैं सो प्रत्यक्ष झूंठहै, इतने परभी अगर मुंहपत्ति बाँधनेमेंही ढूंढिये कष्ट मानते होवेंतो वस्त्रकी कोमल मुंहपत्तिमें ज्यादेकष्ट नहींहैं, इसलिये सोमिलकी तरह काष्टकी पटडीकी मुंहपति बनाकर उससे नाक और मुंह दोनोंबांध लेवेंतो ज्यादे कष्टहोगा तथा नाककी गरमश्वाससें जीवोंको बहुत कष्टहोताहै, वहभी न होगा, दयापलेगी. देखो—मुंहतो मौन रहनेसे या सोजानेसे बंध रहताहीहै. परन्तु नाकतो हमेशा खुलाही रहताहै इसलिये नाक बांधने में जीवदयाका बहुत लाभ और कष्टभी ज्यादेहोगा. नाक बांधनेका कष्ट करते नहीं झूंठा कष्टका नाम लेकर व्यर्थही मायाचारीसे मिथ्या भाषण करतेहैं, सो सर्वथा अनुचित्तहै ।

८८. उत्तराध्ययनादि सूत्रोंमें मुनियोंके कष्ट सहन करनेके लिये २२ प्रकारके परिषह वतलायाहैं, परन्तु मुंह बांधनेका २३ वा परिषहका कष्ट सहन करनेका किसीभी सूत्रमें नहीं बतलाया तोभी मुंह बांधनेका कष्ट हम सहन करतेहैं, ऐसा ढूंढिये कहतेहैं सो प्रत्यक्ष झूंठहै और जिनाज्ञा विरुद्ध हमेशा मुंह बाँधकर थूंकमें असंख्यात जीवोंकी हानी करनेसे व मायाचारीसे बहुत जगह झूठी २ बातें बनाकर उन्मार्ग जमानेके अधर्मसे

उसके विपाकरूप संसार परिभ्रमण करनेका कष्टतो भवाँतरमें अवश्यही सहन करना पड़ेगा. परन्तु हमेशा मुंह बांधनेमें कर्मोंका नाश करनेवाला जिनाज्ञानुसार धर्मरूप कष्ट नहींहै।

(थूंकमें समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति होतीहै या नहीं.)

८९. ढूंढिये कहतेहैं कि हमेशा मुंहपत्ति बंधीरखनेसे बोलते समय थूंक लगकर थूंकसे मुंहपत्ति गीली होतीहै, परन्तु उसमें समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति नहींहोती, क्योंकि "पनवण्णा" सूत्रमें समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्तिहोनेके १४ स्थान बतलायेहैं परन्तु वहां थूंकमें समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति होने का १५ वां कोईभी स्थान नहीं बतलाया, इसलिये थूंकमें समूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति नहींहोती. यहभी ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूंठहै, देखिये-"पनवण्णासूत्र" वृत्तिसहित छपाहै, उसके प्रथम पदमें छपेहुए पृष्ठ ५० वेंमें ऐसा पाठहैः—

" उच्चारेसु वा पासवणेसु वा खेलेसु वा सिंघाणएसु वा वंतेसु वा पूएसु वा सोणिएसु वा सुक्केसु वा सुक्कपुग्गलपरिसाडेसु वा विगयजीवकलेवरेसु वा थीपुरिससंजोएसु वा णगरनिद्धमणेसु वा सव्वेसु चेव असुइट्ठाणेसु, एत्थ णं समुच्छिम मणुसा संमुच्छंति, अगुलस्स असंखेज्जइभागमेताए ओगाहणाए असन्नी मिच्छदिट्ठी अन्नाणी सव्वाहिं पज्जत्तीहिं अपज्जत्तगा अंतोमुहुत्ताउया चेव काल करेंति "

९०. इस पाठमें इतने स्थानोंमें जीवोंकी उत्पति होनेका बतलाया है. मनुष्योंकी विष्टामें १, पेशाबमें २, मुखके मैल-खेल (कफ-थूंकसहित खंखारा) में ३, नाकके मैल-श्लेषम (सेडा) में ४, वमन (उलटी) में ५, पित्त पड़तेहैं उसमें ६, परू (रसी) में ७, खून (लोही) में ८, शुक्र (वीर्य) में ९, विष्टा-वीर्य आदि सुके हुए पुद्गल फिरसे भीगनेसे गीलेहोंवे उसमें १०, जीवरहित मुर्देके शरीरमें ११, स्त्री पुरुषके संयोग (मैथुन सेवन) में १२, नगरकी खाल (गट्टरमें) १३, और सर्व अशुचि स्थानोंमें १४. मनुष्यों संबंधी इन अशुचि वस्तुओंमें अन्तरमुहूर्त्त (दोघडीमें कुछकम) जितने समयमें अंगुल जितनी जगहमें असंख्यात असंज्ञी पंचेन्द्रीय समूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न होते हैं व मरतेहैं।

९१. ऊपरके पाठमें मुखके मैल खेलमें जीवोंकी उत्पत्ति कहीहै सो खेल; याने-कफ-थूंकवाला खंखाराको खेल कहतेहैं, उससे कफके

साथ थूंकभी मुखका मैल गिना जाताहै. इसलिये थूंकमें भी समुर्छिम पंचेन्द्रीय जीवोंकी उत्पत्ति अवश्यही होतीहै और सर्व अशुचि स्थानोंमें मनुष्योंके शरीरकापसीना मैल तथा मुखका थूंक व लाल वगैरह सब अशुचिमें हैं. इसलिये ऊपरके पाठ मुजब थूंक मुखकी लाल आदि सर्वअशुचि वस्तुओंमें जीवोंकी उत्पत्ति होना ज्ञानियोंके वचनानुसार मान्य करनाही पडेगा. उपरके पाठमें मुखकी लालका नाम अलग नहीं बतलाया तोभी कफ व पित्तके साथ लालभी पड़ती है इससे लालमें भी जीवोंकी उत्पत्ति मानी जातीहै, वैसेही थूंकका नाम अलग नहीं बतलाया तोभी लालकी तरह कफ व पित्तके साथ थूंकभी पड़ताहै इसलिये थूंकमें भी जीवोंकी उत्पत्ति अवश्यही मानी जातीहै, थूंक-लाल वगैरह को जगत भी अशुचि मानताहै यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै. और कई गृहस्थी लोग एकही लोटेको एकही गिलासको हरएक आदमी जलपीते समय अपने अपने मुखको लगाकर जलपीतेहैं उससे एकएककी लाल-थूंक दूसरे दूसरे आदमीको लगतीहै उससे कभी कभी किसी आदमीके मुखमें रोगकी उत्पत्ति होतीहै और पढे-लिखे अच्छे अच्छे समझदार आदमी थूंक-लाल वाले झूंठे गिलाससे जलपीना अच्छा नहीं समझते, यहभी प्रत्यक्ष प्रमाण है. इसलिये थूंकको अशुचि (अशुद्ध) माननाही पडेगा व उसमें जीवों की उत्पत्ति माननीही पड़ेगी. इसलिये ढूंढिये लोग हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति बाँधतेहैं उससे बोलते समय मुंहपत्तिके थूंक लगताहै, थूंकसे मुंहपत्ति गीली होतीहै उसमें असंख्यात असंज्ञी पंचेन्द्रीय मनुष्य उत्पन्न होतेहैं व मरतेहैं, यह पाप हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने वाले सर्व ढूंढियोंको अवश्य ही लगताहै, इसलिये १४ स्थानों में थूंक नहींहै व थूंकमें जीवोत्पत्तिका १५ वां स्थान नहीं कहाहै. ऐसा ढूंढियोंका कहना, लिखना, छपवाना प्रत्यक्ष झूंठहै. क्योंकि १४ स्थानोंमें तीसरे खेल स्थानमें व चौदहवें सर्व अशुचिस्थानमें थूंक-लाल पसीनावगैरह आजातेहैं, उसमें जीवोत्पत्ति होतीहै और थूंककी गीली मुंहपत्ति चौमासेमें सुकाने परभी दोदो तीनतीन रोज तक नहीं सूकती, उसमें समय समय असंख्यात जीव पैदा होतेहैं व मरते हैं. यहभी पाप हमेशा मुंहपत्ति बांधने वालोंको व इसबातका उपदेश देने वालोंको और पुष्ट करने वालोंको अवश्यही लगताहै और थूंक लगी हुई गीली मुंहपत्ति मुंहपर बंधी रखनेसे ओष्ठ (होठ) के लगतीहैं उससे

मुंह झूंठा होताहै, ऐसे झूंठे मुंहसे सूत्रका पाठ उच्चारण करना यहभी भगवान्‌की वाणीरूप आगमकी बडीभारी आशातना लगतीहै, उससे ज्ञानावर्णीय कर्म बंधन होताहै इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधनें वालोंको यहभी बड़ा भारी दोष लगताहै और धूप (गरमी) के दिनोंमें प्रशेवासे तथा थूंकसे अन्दरसे उपरसे दोनों तरफसे मुंहपत्ति गीली होतीहै ऐसी गीली मुंहपत्ति हमेशा मुंहपर बन्धी रखनेसे दुर्गन्धी होतीहै उससे मुंह गन्धाताहै, जिससे अन्य दर्शनीय कोई अच्छा आदमी पासमें आकर बैठे तो ऐसी दशा देखकर घृणा करताहै उससे शासनकी बडी हीलना होती है, शासन हीलनाका यहभी दोष हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखने वाले ढूंढियोंको लगताहै और ऐसी दुर्गन्धी वाली गीली मुंहपत्ति हमेशा मुंहपर बन्धी रहनेसे कभी कभी किसीके मुंहमें रोगकी उत्पत्तिभी होजाती है, होठके दागे (चाटे) पड़ जातेहैं. इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखना सो रोगकी उत्पन्न करने वाली होनेसे सर्वथा अनुचितहै १, जिनाज्ञा विरुद्धहै २, असंख्यात असंज्ञी मनुष्य पंचेन्द्रीयजीवोंकी हानी करने वालीहै ३, ज्ञानावर्णीय कर्म बन्धन करनें वालीहै ४, शासनकी हीलना कराने वालीहै, शासनकी हीलना करानें वालोंके संयम व सम्यक्त्वका नाश होताहैं और दुर्लभ बोधी होकर अनंत संसार बढताहै ५, तथा काउसग्ग ध्यानमें मौन रहनेपरभी विना कारण मुंहपत्ति बन्धी रखनेसे बालचेष्टा जैसी निष्फल क्रियाकाभी दोष आताहै ६, और होठके उपर मुंहपत्ति बन्धी रहनेसे सूत्रपाठका शुद्ध उच्चारण साफ नहीं होसकता ७, इत्यादि अनेक दोष हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखनेमें आतेहैं औरभी इन्दौर शहरमें मुंहपत्तिकी चर्चाके प्रथम विज्ञापनमें १२ दोष बतलायेहैं सो इसग्रन्थकी आदिमेंही छपाहै, वहाँसे समझ लेना ।

९२ ढूंढिये कहतेहैं कि थूंककी गीली मुंहपत्तिमें मुंहकी गौरमीसे जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होसकती, यहभी ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूंठहै क्योंकि जैनसिद्धातोंमें शीतयोनी-उष्णयोनी व शीतोष्णयोनी ऐसी तीन प्रकारकी जीव उत्पन्न होनेकी योनियें बतलाईहैं (यहतो प्रसिद्धहीहै) और तीनों तरफसे मुंहपत्ति खुल्ली रहतीहै इसलिये हवाके संयोगसे बार बार मुंहसे अलग होजातीहै अथवा बारबार जलपीनेके समय या आहार करनेके समय हरवक्त मुंहपत्ति मुंहपरसे दूर करनी पडतीहै उसवक्त थूंक

की गीली मुंहपत्तिमें शीतयोनियें जीवोंकी उत्पत्ति होजातीहै फिर वही जीवोंकी उत्पत्तिवाली गीली मुंहपत्ति मुंहपर बांधनेसे उत्पन्न हुए सर्व जीवोंका मुंहकी गरमीसे नाश होजाताहै इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बाँधने वालोंको थूंककी गीली मुंहपत्तिमें असंख्यात असंज्ञी पंचेंद्रीय जीवोंकी घातका हमेशा दोष लगताहै ।

९३ ढूंढिये कहतेहैं कि हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेसे थूंकलगनेसे असंख्य जीवोंकी उत्पत्ति और हानि होतीहै, ऐसा कहतेहो तो मंदिरमें जब श्रावक लोग पूजा करतेहैं तब २-४ घंटेतक मुखकोश बंधा रखतेहैं उसमेंभी बोलनेसे थूंकलगनेसे जीवोंकी उत्पत्ति और हानि होगी, उसका निषेध क्यों नहीं करतेहो. ऐसा ढूंढियोंका कहना अनसमझकाहै क्योंकि मूलगंभारेमें भगवान्‌की पूजाकरते समय श्रावकोंको बोलनेकी साफ मनाईहै अगर भूलसे कोई बोलेतो अवश्यही दोषका भागी होता है और २-४ घंटे जबतक रंगमंडपमें पूजा पढातेहैं तबतक पूजा पढानेवाले मुखकोश बंधाहुआ नहीं रखते; सिर्फ मुंहआगे वस्त्रादि रखकर यत्नासे पूजापढातेहैं, जिसपरभी कोई मुखकोशको बंधाहुआ रखकर पूजा पढावे तो थूंकसे गीला होनेसे जीवोंकी उत्पत्ति अवश्य होगी व होठके लगनेसे मुंह झूंठा रहेगा, भगवान्‌की आशातना लगेगी और कर्म बंधेंगे. उसीतरह हमेशा मुंहपत्तिभी बंधी रखने वालोंको बोलनेसे थूंक लगताहै, थूंकसे मुंहपत्ति गीली होतीहै, उसमें असंख्य समूर्छिम जीवोंकी उत्पत्ति और हानि होतीहै उसका पाप हमेशा मुंहपत्ति बांधने वालोंको लगताहै, इसलिये मुखकोश बाँधनेका बतलाकर हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराना सर्वथा अनुचितहै ।

९४ ढूंढिये कहतेहैं कि मुंहपत्ति बांधनेमें ऐसे दोषहैं तो फिर संवेगी साधू व्याख्यान बांचते समय क्यों मुंहपत्ति बाँधतेहैं. इस बातका इतनाही जवाबहै कि-ढूंढिये साधू नाकखुला रखकर होठोंपर हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखतेहैं, उसीतरह संवेगीसाधू होठोंपर नहीं बांधते किंतु नाकके उपरसे बाँधतेहैं, उससे मुंहपत्तिके व होठोंके थोड़ा अन्तर रहताहै होठोंको लगने नहींपाती और थोड़ीदेरमें सूत्रपौरुषी होतेही बदल देतेहैं इसलिये थोडीदेरमें थूंक लगनेका व होठोंके लगकर मुंहझूंठा होनेका संभव नहींहै और ढूंढिये लोगतो हमेशा बंधी रखतेहैं उससे बोलनेमें मुंह

पत्तिके थूंक लगताहै उससे जीवोंकी उत्पत्ति वगैरह अनेक दोष लगतेहैं और हमेशा मुंहपत्ति बंधीहुई रखकर बजारमें, गलियोंमें, रास्तोंमें फिरने से बहुतलोग हाँसी करतेहैं, इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधना अनुचितहै।

९५ संवेगी साधू अपने नाककी दुर्गंधी व मुंहकाथूंक भगवान्‌की वाणीरूप आगमपर न गिरनेके लिये कारणवश थोडीदेरके लिये नाकमुंह दोनों बाँधतेहैं, परन्तु पीछे खोल डालतेहैं. उसका भावार्थ समझे विना संवेगी साधुओंके व्याख्यान समय मुंहपत्ति बांधनेका दृष्टांत बतलाकर हमेशा मुंहबांधनेका अपना झूंठा मत स्थापन करतेहैं यहभी ठगबाजीही है, देखिये—बहुत संवेगी साधू शास्त्रोंके पाने हाथमें न लेते हुए ऐसेही यादगिरीसे व्याख्यान बाँचतेहैं, तब नाक-मुंह दोनों नहीं बांधते, किंतु हाथमें मुंहपत्ति रखकर उपयोगसे मुंहकी यत्ना करते हुए धर्मदेशना देतेहैं. उसीतरह यदि संवेगी साधूओं की तरह ढूंढियेभी वैसेही करना चाहते होंवें तबतो हमेशा मुंह बाँधनेके झूंठे ढोंगको जलदीसे त्याग करें और मुंहपत्ति हाथमें रखना स्वीकार करें नहींतो कारणवश नाक-मुंह बांधनेका दृष्टांत बतलाकर मायाचारीसे हमेशा मुंहबांधनेका झूंठापक्ष जमाना योग्य नहीं, आत्महितकी चाहना करनेवाले सज्जनोंको ऐसी मायाचारीसे उन्मार्गको पुष्टकरना उचित्त नहींहै।

(औरभी अन्य बहुत ढूंढियोंकी शंकाओंका समाधान आगे लिखेंगे. परन्तु अब यहाँपर ढूंढियोंने शास्त्रोंके पाठ बदलकर तथा कई पाठोंके अर्थ बदलकर बड़े बड़े प्राचीन महान् प्रभावक पूर्वाचार्योंके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बाँधनेका ठहरानेके लिये कैसे कैसे मायाचारीके प्रपंच फैलायेहैं, उसका निर्णय लिखतेहैं.)

---

९६ उद्योतसागरजी कृत "सम्यक्त्वमूल बारह व्रतकी टीप" के नामसे मुंहपत्ति हमेशा बंधीहुई रखनेका ढूंढियेलोग कहतेहैं सोभी प्रत्यक्ष झूंठहै, क्योंकि सम्यक्त्वमूल बारहव्रतटीपकी प्रथमावृत्ति सम्वत् १९२८ में ग्रंथसागर छापाखानेमें मुम्बईमें छपीहै उसमें श्रावकके नवमें सामायिक व्रतके अधिकारमें सामायिकमें सामायिकके ३२ दोष निवारण करनेके लिये तीसरे चलदृष्टि दोष बाबत छपेहुए पृष्ठ ८७ वे में ऐसा लेखहैः—

"त्रीजोचलदृष्टि दोष तें सामायक लिधापछै दृष्टि नाशिका उपर राखेने मनमा शुद्ध उपयोग राखे मौनपणे ध्यानकरे अने सामायकमां शास्त्र

भ्यास करवुं होयतो जयणा युक्त मुखे मुंहपत्ति देई दृष्टि पुस्तक उपर राखीने भणे तथा सांभले" *

९७ देखिये उद्योतसागरजीकी बनाईहुई सम्यक्त्वमूल बारहव्रतकी टीपमें श्रावकको शास्त्र पढना होतो यत्नापूर्वक मुखआगे मुंहपत्ति रखकर शास्त्रपढनेका ग्रंथकारने लिखाहै, उसमें "मुखे मुंहपत्ति देई" ऐसा खास पाठको बदलकर दूसरी आवृत्तिमें किसी ढूंढकपक्षके अनुयायीने "मुंहपत्ति मुखें बाँधीने" ऐसा अपनी तरफसे नवीन लिखदिया, वह पुस्तक प्रकाशकोंने भूलसे छपवादिया. ऐसे नये कल्पित बनावटी वाक्यको आगे करके ढूंढियेलोग हमेशा मुंहबाँधनेका पक्ष ले बैठेहैं, ऐसे झूंठे प्रमाणको बतलाकर भोले लोगोंको भ्रममें डालतेहैं और जिनाज्ञा विरुद्ध होकर हमेशा मुंहबाँधनेकी ऐसी उत्सूत्रप्ररूपणाको दृढकरतेहैं यही ढूंढियोंकी बडी मायाचारी है।

९८ इसी "सम्यक्त्वमूल बारहव्रतकी टीप" में उद्योतसागरजीने शुरूआतमें ही प्रथम देवतत्त्वके अधिकारमें प्रथमावृतिके छपेहुए पृष्ठ १२ वेंमें "हवे समकितनी करणी जे छै ते लखिये छीए, नित्य प्रति छतियोगवाईए अथवा छतीशक्ते वाट घाट विना श्रीजिनप्रतिमा जुंहारू" इत्यादि लेखमें जिनप्रतिमाको वंदन-पूजनसे सम्यक्त्व निर्मल होनेका बतलाया है तथा सातवें भोगोपभोग विरमणव्रतके अधिकारमें पृष्ठ ५०-५१ में वाशीरोटी, शाक, सीरा, लापसी, खीचडी, वगैरह अन्नमें और कच्चे दही-छाछमें चणे, मुंग, उडद, मट्टर आदि दोफाड वाले अनाजको मिलावें (जैसे कच्चे दहीमें वडीपकोडी मिलातेहैं तथा कढी करनेके लिये कच्ची छाछमें वैसण मिलातेहैं) उसको विदलकहतेहैं उस विदलमें असंख्यात बेरिन्द्रीयजीवोंकी उत्पत्ति होतीहै इसप्रकार वाशीअन्न व विदलमें और अंबे आदिके तीनदिन उपरांत आचारमें तथा मद्यमक्खणमें असंख्यात बेरिन्द्रीय जीवोंकी उत्पत्ति होनेसे खानेकी मनाई लिखीहै और ज्ञानातिचारके अधिकारमें पुस्तकका विनय करनेसे ज्ञानकी प्रा-

---

* इस लेखमें किसीको शंका होतो श्री जिन कृपाचन्द्रसूरिजी जैनज्ञानभंडार, मोरसली गली नया जैनमंदिर इन्दोरशहरमें प्रथमावृतिकी छपीहुई सम्यक्त्व मूलबारहव्रतकी टीप की पुस्तक मौजूदहै सो पाठक या कोईभी ढूंढीये महाशय उस पुस्तकको स्वयं अपनी आखोंसे देखकर अपनीशंकाको अवश्य दूरकरें।

तिहोनेका लिखाहै, ऐसी २ बहुत वातें ग्रंथकारने सत्य २ लिखीहैं. उन्हों को ढूंढिये मानतेनहीं, उस मुजब चलते नहीं और ग्रन्थकारने मुंहपत्ति हाथमें रखनेका लिखाथा उसको वदलाकर मुंहपर हमेशा बांधनेका नवीन वाक्य बनाकर भोलेजीवोंको बतलाकर उन्मार्गमें डालतेहैं और मिथ्यात्व वढातेहैं इसलिये आत्मार्थियोंको ऐसे मिथ्यात्वका त्याग करनाही हितकारीहै।

---

९९ "योगशास्त्र" की टीकामें हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका लिखा है, ऐसा ढूंढियोंका कहना-लिखना-छपवाना सर्वथा झूठहै देखिये— "योगशास्त्र" की टीका में तीसरे वंदना आवश्यक के "इच्छामि खमासमणो वंदिउं जावणिज्झाए निसीहीयाये अणुजाणह मे मिओगहं निसीही अ हो" इत्यादि पाठकी टीकामें लिखेहुए "योगशास्त्र" की टीकाके पृष्ठ ३२२में ऐसा पाठहैः—

"निसीहि" त्ति, निसीद्ध सर्व्वाशुभव्यापारः सन् प्रविश्यास्येहमित्यर्थः। ततः संदंशप्रमार्जनपूर्वकमुपविशति गुरुपादांतिकं च भूमौनिधाय रजोहरणं तन्मध्ये च गुरुचरणयुगलं संस्थाप्य मुखवस्त्रिकया वामकर्णादारभ्य वामहस्तेन दक्षिण कर्णयावत् ललाटमाविच्छिनं च वामजानुं त्रिः प्रमृज्य मुखवस्त्रिका वामजानूपरि स्थापयति, ततो 'अ'कारोच्चारण समकालं रजोहरणं कराभ्यां संस्पृश्य 'हो' कारोच्चारणं समकालं ललाटं स्पृशति" इत्यादि

१०० इसपाठका भाषामें अर्थ 'भीमसिंहमाणक' की तरफसे गुजराती भाषांतर वाला छपाहुआ "योगशास्त्र" के पृष्ठ ३०८में ऐसा छपाहै. "शिष्य जमीन प्रमार्जीने नैषिधिकी करतोथको ते अवग्रहमां दाखल थाये, पछी गुरुना चरणपासे वेसी पृथ्वीपर रजोहरण मुकी, तथा तेनी अंदर गुरुना चरणकमलने स्थापीने मुंहपत्तिए करीने डावाकानथी मांडीने, डावाहाथथी जमणा कानसुधि तथा डावा घुटणने, प्रमार्जीने ते मुंहपत्ति डावा घुटणपरमुके, तथा पछी "अकार" ना उच्चारण जेटला कालमां वे हाथेथी रजोहरणने स्पर्श करीने "हकार" ना उच्चारण जेटला कालें करीने ललाटने स्पर्शकरे" इत्यादि

१०१ फिरभी लिखीहुई प्रतिके पृष्ठ ३१९ वेमें ऐसा पाठहै "प्रव्रज्याकाले गृहीत रजोहरण मुखवस्त्रिका, इति" इस पाठका छपेहुए भा-

षांतरके पृष्ठ ३०६में " दीक्षा वखते ग्रहण करेला रजोहरण अने मुंहपत्ति पूर्वक जे वंदन करवुं " ऐसा अर्थ छपाहै।

१०२ फिरभी वांदणाके अधिकारकी गाथाओंमें लिखेहुए पृष्ठ ३२५ में भी " पडिलेहिय मुहपोत्ती पमज्जिउ चरिमदेहो " " वामंगुलि मुहपोत्तीं करजुयल जुत्त रयहरणो" " वामकरगहियपोत्ती, एगदेसेण वामकन्नाउ॥ आरभिऊण णडालं, पमज्जिज्झा दाहिणो कन्नो ॥ ९॥ अन्नुत्थिणं वामयजाणुं, नमिऊण तत्थ मुहपोत्ति ॥ रयहरणमज्झदेसंमि, ठावएपुव्वपाय जुयलं ॥ ९॥ इत्यादि बहुतजगह मुंहपत्ति हाथमें रखनेका खुलासा पूर्वक लिखाहै।

१०३ श्रावकके बारहा व्रत के अधिकारमें बारहवें 'अतिथि संविभाग' व्रतमें मुनिको आहार-वस्त्र-पात्र-कंबल-रजोहरण-मुंहपत्ति वगैरह वस्तुओंका दान देनेका विवेचनकियाहै सो लिखीहुई प्रतिके पृष्ठ २४५ वेंमें ऐसा पाठहैः-

" रजोहरणं पुनः सत्त्वजीवरक्षार्थं प्रतिलेखना कारित्वादुपयोगीति, कस्तत्र विवादंकुयात् मुखवस्त्रमिति, संपातिमजीवरक्षणादुष्णमुख वातविराध्यमान बाह्यवायुकाय जीवरक्षणान्मुखे धूलप्रवेशरक्षणाच्चोपयोगीति "

इसपाठका भाषामें छपेहुए पृष्ठ २६०—२६१में ऐसा अर्थ छपाहै; " रजोहरण तो सक्षात् जीवरक्षा माटेजछे. तेम मुंहपत्ति पण उडीने मुखमां पडता जीवो, तथा मुखना उष्ण श्वासथी बाहारना वायुकाय जीवोंनी विराधना टालवा माटेछे, तेम मुखमां पडती धूलने पण अटकाववा माटेछे. "

१०४ देखिये—योगशास्त्रकी टीकाके ऊपरके सबपाठोंमें तथा छपेहुए भाषांतरके पृष्ठ ३०६—३०८में खुलासा पूर्वक मुंहपत्ति हाथमें रखनेका लिखाहै. और जैसे-रजोहरणका पूंजने-प्रमार्जने वगैरह कार्योंमें जीवदयाके लिये उपयोग किया जाताहै, वैसेही मुंहपत्ति भी बोलते समय मुंहआगे रखनेसे मुंहकेअन्दर पडते हुए सुक्ष्मजीवोंकी व उष्णश्वाससे बाहिरके जीवोंकी रक्षा करनेके लिये उपयोगमें ली जातीहै. ऐसा भाषांतरके छपेहुए पृष्ठ २६०—२६१में लिखाहै, परन्तु ढूंढियोंकी तरह हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका योगशास्त्रकी टीकामें और भाषांतरमें किसी

जगह भी नहीं लिखा तो भी ढूंढियेलोग योगशास्त्रकी टीकाके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका कहतेहैं सो मायाचारीसे प्रत्यक्ष झूंठ बोल कर व्यर्थही भोलेजीवोंको उन्मार्ग में डालते हैं।

१०५ फिरभी देखिये ऊपरके पाठमें तथा भाषांतरमें प्रतिक्रमणके तीसरे वान्दणा आवश्यकमें साधुको अपने धर्माचार्य गुरुमहाराजको वंदणा देनेके लिये रजोहरणपर गुरुके चरण कमलोंकी कल्पना (स्थापना) करके डावेहाथमें मुंहपत्ति लेकर मुंहपत्तिसे कान-ललाट-घुटण प्रमार्जन करके फिर विधिसहित गुरुको वान्दणादेवे, ऐसा लिखाहै. यह तीसरेआवश्यककी वांदणाविधि ढूंढियेभी मानतेहैं, अपने गुरुको वंदणा देतेहैं. यह वांदणाविधि खास अपने गुरुकी भक्तिकी क्रियाहै, गुरु ग्रामांतर या भवांतर (परलोक गये) होवें तोभी साधुओंको छः आवश्यक रूप प्रतिक्रमण हमेशा दोनोंदफे करने पड़तेहैं. उसवक्त गुरुके चरणकमलोंकी कल्पना (स्थापना) करके वांदणा देतेहैं, इसमें गुरुके अभावमें गुरुकी स्थापनाकी कल्पना करतेहैं, इससे स्थापना निक्षेप ढूंढियोंके कर्तव्यसे व कथनसेभी मान्य होताहै. वैसेही जिनवरके अभावमें जिनवर के चरणकमलकी कल्पना (स्थापना-मूर्ति) को माने या वन्दे-पूजे उसको भी मान्य करनाही उचित है जिसके बदले निषेध करते हैं, यही बडी अज्ञानताहै. इस विषयमें फिरभी आगे लिखेंगे।

१०६ मुंहपत्ति हाथ में रखनेसेही कान—ललाटादिककी प्रमार्जना करके जीवदया पालसकतेहैं, परंतु हमेशा मुंहपत्ति बंधीहुई होवेतो मुंहपत्ति से प्रमार्जना नहीं होसकती उससे जीवदयाभी नहीं पलसकती. इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधना सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है।

१०७ फिरभी देखिये कलिकाल सर्वज्ञसमान महान्प्रभावक ३॥ करोड़ श्लोकों के प्रमाणे ग्रंथोंकी रचना करनेवाले व "कुमारपाल" महाराजको प्रतिबोध देकर १८ देशोंमें अमारी घोषणा करवानेवाले तथा खास आप हाथ में मुंहपत्ति रखनेवाले ऐसे श्रीहेमचंद्राचार्य महाराजने इस "योगशास्त्र" में जिन प्रतिमाको वन्दन-पूजन करनेकी विधि लिखी है, उसको तो ढूंढिये मानते नहीं और ग्रंथकार महाराजके अभिप्रायः विरुद्ध होकरके ऐसे महान् उपकारी पुरुषोंके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बंधीरखनेका झूठाही प्रपंच खडा करके भोलेजीवोंको उन्मार्ग

में डालते हैं यह कितना बड़ाभारी अधर्म है. बोलते समय मुंहआगे मुंहपत्ति रखनेसे जीवोंकी विराधनाका व मुखमें रजादि पडनेका बचाव होताहै, यहतो जगत प्रसिद्ध बातहै, परन्तु उससे हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेका कभी साबित नहीं होसकता. इस 'योगशास्त्र' में यह महाराज हाथमें मुंहपत्ति रखनेका लिखतेहैं तोभी ढूंढियोंके कैसे अशुभ कर्मोंका उदयहै सो उलटेही चलते हुए बडे पुरुषोंके नामसे उन्मार्ग जमातेहैं और परभवसे नहीं डरतेहैं।

---

१०८ "प्रवचन सारोद्धार" नामा ग्रंथके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ढूंढिये लोग कहतेहैं. सोभी प्रत्यक्ष झूठ है. क्योंकि-सूत्रवृत्ति सहित छपेहुए 'प्रवचन सारोद्धार' सूत्रके पृष्ठ ११९—१२२ का पाठ देखोः—

संपाइमरयरेणू पमज्जणट्ठा वयंति मुहपोत्तीं ॥ नासं मुहं च बंधइ, तीए वसहिं पमज्जंतो ॥ १ ॥ मुखवस्त्रिकायाः प्रयोजनमाह-'संपे' त्यादि, संपातिमाजीवा मक्षिका-मशकादयस्तेषां रक्षणार्थं भाषमाणैर्मुखे मुखवस्त्रिका दीयते, तथा रजः-सचित्त पृथिवीकायस्तत्प्रमार्जनार्थं, रेणुप्रमार्जनार्थं च मुखपोत्तिकां वदंति, प्रतिपादयंति तीर्थंकरादय, तथा वसतिं प्रमार्जयन् साधुर्नासां मुखं च बध्नाति आच्छादयति 'तया' मुखपोतिकया यथा मुखादौ रेणु र्न प्रविशतीति ॥ १ ॥

१०९ इस गाथाका भाषामें अर्थ "प्रकरण रत्नाकर" भाग तीसरे के पृष्ठ १४१ वें में नीचे मुजब छपाहैः—

"अर्थ—संपातिम जीवों मक्षिका डांस तथा मशकादि तेओना रक्षणने अर्थे भाषण करतां मुखनी उपर मुखवस्त्रिका देवायछे. तथा रज एटले सचित्त पृथ्वीकाय तेना प्रमार्जनने अर्थ तथा रेणुप्रमार्जनने अर्थ मुखपोतिका तीर्थंकरादिकोए प्रतिपादन करेलीछे. तथा वसति ते उपाश्रयने प्रमार्जतां छतां साधु नासिका तथा मुख बांधेछे एटले आच्छादन करेछे, तेणे करिने मुखादिकने विषे रेणु प्रवेशकरे नहीं तेम बांधवी"

११० देखिये—ऊपरके पाठमें मुंहपत्तिको मक्षिकादि जीवोंकी रक्षाके लिये बोलनेके समय मुंहआगे रखनेका बतलायाहै तथा मुखादि उपर सचित्तरजादि पडीहो उसकी प्रमार्जना करने के लिये तीर्थंकर भगवानोंने मुंहपत्ति हाथमें रखनेका कहाहै और उपाश्रय प्रमार्जन करनेकेसमय

सूक्ष्म पुद्गल मुंहके अन्दर न जानेके लिये अथवा जंगल (ठल्ले) जावें तब वहांकी दुर्गंधिका बचाव करनेके लिये त्रिकोणी मुंहपत्ति करके मस्तकपर पीछेके भागमें गांठआवे वैसे कार्यवश थोडीदेरके लिये नाक और मुंह दोनों बांधनेका बतलायाहै. इस बात को तो ढूंढिये लोग छुपातेहैं और "प्रकरण रत्नाकर" का तीसराभाग (प्रवचन सारोद्धार) के नाम से नाक खुला रखकर हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराते हैं, यहभी भोले जीवोंको उन्मार्गमें डालनेके लिये प्रत्यक्षही मायाचारीकी ठगबाजी करके बडे शास्त्र के नामसे अपना झूंठामत जमाते हैं।

१११ ऊपरके पाठमें मुंहपत्ति हाथमें रखनेका बतलायाहै, सो हाथमें रखनेसेही मस्तक, नाक, कान, आंखादि छोटे २ स्थानोंपरसे सचित्त पृथ्वीकायादिके रेणुओंका प्रमार्जन होसकताहै. परन्तु हमेशा मुंहपत्ति बंधीहुई रखनेसे नहीं होसकता, और हाथमें रखनेसे ही कार्यवश थोडीदेरके लिये नाक और मुंह दोनों बांध सकतेहैं इसलिये जो ढूंढकपंथी आत्मार्थी होकर तीर्थंकर भगवान्‌की आज्ञाके आराधन करनेकी चाहना करेंगे वहतो ऊपरके शास्त्र पाठ के विरुद्धहोकर हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका झूंठाढोंग अवश्यही त्याग करेंगे।

---

११२ "ओघनिर्युक्ति" के नामसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका ढूंढियेलोग कहतेहैं, सोभी प्रत्यक्ष झूंठहै, क्योंकि "श्री ओघनिर्युक्ति" वृत्तिसहित छपेहुए पृष्ठ १७५ वें में ऐसा पाठहै देखोः-

"चउरंगुल मुहपत्ती, उज्जुयए वाम हत्थि रयहरणं॥ वोसट्ठचत्त देहो, काउस्सग्गं करेज्जाहि॥ ५१०॥ व्याख्याः— चतुर्भिरंगुलैर्जानुनोरुपरि चोलपट्टगं करोति, नाभेश्चाधश्चतुरंगुलैः पादयोश्चान्तरं चतुरंगुलं कर्त्तव्यं. तथा मुखवस्त्रिकामुज्जुगे-दक्षिणहस्तेन गृण्हाति, वामहस्तेन च रजोहरणं गृण्हाति. पुनरसौ व्युत्सृष्टदेहः- प्रलंवितबाहुस्त्यक्तदेहः सर्पाद्युपद्रवेऽपि नोत्सारयति कायोत्सर्गं, अथवा व्युत्सृष्टदेहो दिव्योपसर्गेष्वपि न कायोत्सर्गभंगं करोति, त्यक्तदेहोऽक्षिमलदूषिकामपि नापनयति, स एवंविधः कायोत्सर्गं कुर्यात्॥ ५१०॥

और पृष्ठ २१४-२१५ वें में भी ऐसापाठ हैः—

११३ "चउरंगुलं विहत्थी, एयं मुहणंतगस्स उ पमाणं॥ वितियं मुहप्पमाणं, गणणपमाणेण एक्केक्कं॥ ७११॥"

व्याख्याः— चत्वार्यङ्गुलानि वितस्तिश्चेति, एतच्चतुरस्रं मुखानंतकस्य प्रमाणं, अथवा इदं द्वितीयं प्रमाणं, यदुत मुखप्रमाणं कर्तव्यं मुहणंतयं, एतदुक्तं भवति-वसति प्रमार्जनादौ यथा मुखं प्रच्छाद्यते कृकाटिकापृष्ठतश्च यथा ग्रन्थिर्दातुं शक्यते तथा कर्तव्यम् । त्र्यस्रं कोणद्वये गृहीत्वा यथा कृकाटिकायां ग्रन्थिर्दातुं शक्यते तथा कर्तव्यमिति, एतद्द्वितीयं प्रमाणं, गणणाप्रमाणेन पुनस्तदेकैकमेव मुखानन्तकं भवतीति ॥ ७११ ॥ इदानीं तत्प्रयोजनप्रतिपादनायाह—

११४ संपातिमरयरेणू , पमज्जणट्ठा वयंति मुहपत्तिं ॥ नासं मुहं च बंधइ, तीए वसहिं पमज्जंतो ॥ ७१२ ॥ व्यख्याः—संपातिमसत्त्वरक्षणार्थं जल्पद्भिर्मुखे दीयते, तथा रजः- सचित्त पृथिवीकायस्तत्प्रमार्जनार्थं मुखवस्त्रिका ग्रह्यते, तथा रेणुप्रार्जनार्थं मुखवस्त्रिका ग्रहणं प्रतिपादयन्ति पूर्वर्षयः । तथा नासिकामुखं बध्नाति तया मुखवस्त्रिकया वसतिं प्रमार्जयन् येन न मुखादौ रजः प्रविशतीति ॥ ७१२ ॥ ”

११५ देखिये ऊपरके पाठमें साधूको काउसग्ग करनेके लिये चार अंगुलके अंतरसे दोनों पैरोंसे खड़ेरहना, मुंहपत्ति जीवणे हाथ में ग्रहण करनी, रजोहरण डावे हाथमें ग्रहण करना फिर शरीरको वोसराकर नीचे लंबे हाथकरके किसी उपद्रवसे या देवतादिके उपसर्गसे भी चलायमान न होवे ऐसे काउसग्ग करनेका लिखाहै और एकवेंत चार अंगुल अथवा अपने २ मुंहप्रमाणे 'मुहणंतगस्स' मुखानंतकस्य (मुखवस्त्रिका) का प्रमाण बतलायाहै, सो यह मुंहपत्ति डांस-मच्छर-मक्खी आदि संपातिम त्रसजीवोंकी रक्षाकरनेके लिये बोलनेके समय मुंहपर रखनेका कहाहै, सो मुंहपत्ति हाथमें रखनेसे सचित्त पृथ्वीकाय रज वगैरह मस्तकादि स्थानोंपर गिरे तो उसको प्रमार्जन करनेके काममेंभी आतीहै और उपाश्रय प्रमार्जन करनेके समय भी नाकमें रजादि प्रमाणु न जाने पावें इसलिये मुंहपत्ति त्रिकोंणी करके उसीसे नाक व मुंह दोनों बांधनेका कहाहै मगर ढूंढियोंकी तरह नाक खुला रखकर मुंहपत्ति में दोरा डालकर हमेशा अकेला मुंहबंधा रखनेका नहीं लिखाहै, तोभी ढूंढियेलोग “ ओघनिर्युक्ति ” के नामसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका कहतेहैं, सो प्रत्यक्ष झूठहै ।

११६ देखिये ढूंढियोंकी अंध परंपराका नमूना- “ मुहणंतगस्स ”

का अर्थ मुखवास्त्रिका होताहै तोभी ढूंढियेलोग उसको समझे बिना दोराका अर्थ करके 'ओघनिर्युक्तिकी चूर्णिमें दोरा डालकर हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका लिखाहै, ऐसा कहतेहैं, लिखतेहैं, मानतेहैं परन्तु कोई भी ढूंढिया 'ओघनिर्युक्ति' की चूर्णिकी प्रतिलेकर अपनी आंखोंसे नहीं देखता. सब अंध परंपरासे ही एक दूसरेकी देखादेखी चूर्णिका नाम पुकारे जातेहैं. उपरके पाठ चूर्णिके नहींहैं, किंतु श्रीभद्रबाहुस्वामी की बनाई हुई खास निर्युक्तिकेहैं, तो भी व्यर्थही चूर्णिका नाम पुकारे जातेहैं। ढूंढियोंमें विवेकवाला सत्यकी परीक्षा करके झूंठको त्यागकर सत्यग्रहण करनेवाला ऐसा कोन आत्मार्थीहै, सो शास्त्रोंके पाठोंको पूर्वापरके संबंध सहित देखकर सत्यबातका निर्णय करे व झूंठसे बचे. आजकल ढूंढियोंमें कई साधू व्याकरणादि पढे लिखे विद्वान् पंडित प्रसिद्धवक्ता सत्योपदेशक वगैरह नाम धारण करनेवाले बहुत कहे जातेहैं, परन्तु सर्व अंधरूढी में फंस गयेहैं. अगर सत्यको प्रकाश करने वाला ऐसा कोई आत्मार्थी होवे तो हमेशा मुंह बांधनेका अंध रिवाज कभी न चलने पावे. प्रश्नव्याकरण, प्रवचनसारोद्धार, ओघनिर्युक्ति, और महानिशीथ वगैरह बहुत शास्त्रोंमें "मुहणंतगेण" "मुहणंतगस्स" ऐसे पाठ आतेहैं वहां सब जगहपर मुखवस्त्रिका ऐसा अर्थ होताहै, जिसपर भी ढूंढिये मुखका दोरा ऐसा खोटा अर्थ अपनी अज्ञानतासे करतेहैं सो सर्वथा झूंठहै. इसलिये मुखका दोरा ऐसे प्रत्यक्ष झूंठे कथनका किसीकोभी विश्वास करना योग्य नहींहै, इस विषयमें पहिलेभी 'महानिशीथ' के पाठकी समीक्षामें इस ग्रंथके छपेहुए पृष्ठ ३५ वें की ६३ वीं कलममें लिख आयेहैं, वहांसे समझ लेना।

---

११७ ढूंढियेलोग "यतिदिनचर्या" और "यतिदिनकृत्य" इन दोनों ग्रंथोंके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका ठहरातेहैं सोभी प्रत्यक्ष झूंठहै, देखिये "यतिदिनचर्या" का पाठ ऐसाहैः—

"मुहपती रयहरणं, दुन्निनिसिज्झा उ चोल कप्पतिगं ॥ संथारुत्तरपट्टो, दसपेहाणुग्गए सूरे ॥ २६ ॥ बतीसंगुलदीहं, रयहरणं पुत्तियाय अच्छेणं ॥ जावीण रक्खणट्ठा, लिंगट्ठा चेव एयंतु ॥ २७ ॥ व्याख्याः— संप्रति लेखनाक्रमविधिः कथमित्याशंक्याहैः— 'मुंहपत्ति' तत्र क्षमाश्रमण द्वयपूर्वमादौ मुखवास्त्रिका प्रतिलेखनिया १, तदनुरजोहरणं २, पश्चाद्रजो

हरणस्य द्वे निषिद्ये ४, तदनु चोलपट्ट अधः परिधानवस्त्रं ५, तदनु कल्पत्रिकं ८, पश्चात्संस्तारकः ९, पश्चादुत्तरपट्टः १०, एषादश प्रतिलेखना विधायक अनुद्गतसूर्यः । तथा उद्घाट पौरुष्यां पादोनप्रहरे पात्रनिर्योग पात्रपरिकरः सप्तविधः प्रतिलेखनियः तत्र मुखवस्त्रिका आसनोपविष्टैः प्रतिलेख्यते, ततः प्रथम गोच्छकं १, ततः पटलानि २, तदनु पात्रकेसरिका ३, पश्चात् पात्रबंधः ४, तदनु पात्रकं ५, ततोऽपिरजस्त्राणं ६, तस्मात् पात्रकस्थापनं ७, इत्यादि । तथा रजोहरणं द्वात्रिंशदंगुलदीर्घं भवति उक्तंच " वत्तीसंगुल दीहं, चउवीसं अंगुलाई दंडोसे ॥ अट्ठंगुला दसाओ, एगयरं हीणमहियं वा ॥ १ ॥ एगं ओहं पमाणं, भणियं निसीय पंचमुद्देसे ॥ छव्वीस वा स दंडो, छ बारस अंगुला दसीया ॥ २ ॥" रजोहरण कृत्यं च " आयाणे निक्खेवे, ठाणे निसीयण तुयट्ट संकोय ॥ पुव्वं पमज्जणट्ठा, लिंगट्ठा चेव रयहरणं ॥ १ ॥ " अथ रजोहरणपदस्यार्थमाह " अब्भितर रयहरणं करेइ, जं जीवरक्खणाहिं ॥ तो बाहिर रयं पमज्जई रयहरणं तेण निद्दीट्ठं ॥ १ ॥ " तथा पोतिका च अर्द्धेन रजोहरण दीर्घतो भवतीत्यर्थः। तत्र पोतिका मुखवस्त्ररूपा सातु षोडशांगुलमिता दीर्घा भवति । यदाहुः—" चउरंगुल विहत्थी, एयं मुहणंतगस्स उ प्पमाणं ॥ वाअ मुहप्पम्माणं, गणणपमाणं इक्किकं ॥ १ ॥ " ततो प्रयोजनमाहः— " संपायमरयरणू, पमज्जणट्ठावयंति मुंहपत्तिं ॥ नासं मुहं च बंधई, तीए वसइं पमज्जंतो ॥ १ ॥ " इत्यादि.

---

११८ " यतिदिन कृत्य " की आदिमें भी ऐसा पाठहैः— " अत्र क्रमात् प्रतिलिखेन्मुखपट्टः धर्मध्वजौ ॥ निषिधै द्वे पट्टकः कल्प, त्रितयो संस्तारकोत्तरपटौ च दशा ॥ ९ ॥ तत्र प्रमाणतः षोडशांगुला वदन वस्त्रिका कार्या ॥ निज २ मुख माना, वा ज्ञयादेशोद्वितीयोयं ॥ १० ॥ संपातिम सत्व रजो, रेणुनां रक्षणाय मुखवस्त्रं ॥ वसतेः प्रमार्जनार्थं, मुखनासं तेन बध्नाति ॥ ११ ॥ द्वात्रिंशदंगुलमितं, रजोहरणमस्य करमिति दंडः ॥ अष्टांगुलदशा, अथ निशीथ समये विशेषोयं ॥ १२ ॥ मानं विंशतिरथवा, षड्विंशतिरंगुलानि दंडस्य ॥ दशिकानां तु क्रमतो, द्वादश षट् वांगुलानि स्यात् ॥ १३ ॥ "

११९ दोनों पाठोंमें फजरमें पडिलेहणा करनेके समय पहिलं मुंहपत्तिकी पडिलेहणा करके पीछे रजोहरणकी व रजोहरणकी दंडीके

ऊपरकी एक ऊनकी दूसरी सूतकी ऐसी दो निषिद्या, चोलपट्ट, तीनचद्दर, संत्थारीया और उत्तरपट्टा ऐसी दश वस्तुओंकी अनुक्रमसे पडिलेहरणाकरे, फिर पात्रे पडिलेहणाके अवसरमें गुच्छे, पडलें, पात्रकेशरीका, पात्रबंध, पात्रें, रजस्त्राण व पात्रस्थापन ऐसे ७ प्रकारके पात्रोंके उपकरणोंकी पडिलेहरणा करे। और चौवीश अंगुल दंडी तो आठ अंगुलदशी (फली) अथवा वीश अंगुल दंडी तो १२ अंगुल फली, ऐसे जीवदयाके व प्रमार्जन करनेके लिये ३२ अंगुल लंबा रजोहरण रखनेका बतलायाहै और एकवेंत उपर चार अंगुल अथवा अपने अपने मुखप्रमाणे मुंहपत्ति होतीहै यह मुंहपत्ति बोलनेके समय मुंहआगे रखनेमें आतीहै उससे बोलते समय उडतेहुए सुक्ष्मजीव मुखमें न गिरने पावें तथा मुखादिपर रजादि गिरेतो उसी मुंहपत्तिसे मुंहकी प्रमार्जना करनेमें आतीहै अथवा उपाश्रय प्रमार्जन करते समय नाक और मुख दोनों बांधनेमें आते हैं।

१२० देखिये उपरके दोनों पाठोंमें बोलनेके समय मुंहपत्तिको मुंहआगे रखनेका बतलायाहै परंतु हमेशा बंधी रखनेका किसी जगहभी नहीं लिखा और ३२ अंगुल प्रमाणे लंबा रजोहरण रखनेका बतलायाहै उस मुजब ढूंढिये साधू रखते नहीं इससे विपरीत होकर बिना प्रमाणका बहुत लंबा रजोहरण रखतेहैं, सोभी शास्त्र विरुद्धहै और गुच्छे, पडलें वगैरह पात्रोंके उपकरण रखनेका कहाहै सोभी रखतेनहीं तथा उपरके दोनों ग्रंथोंमें जिनप्रतिमाके दर्शन करनेका लिखाहै, उसकोभी मानते नहीं और कारण वश थोडी देरेके लिये नाक व मुंह दोनों बांधनेका लिखाहै, उस मुजबभी बांधते नहीं तिसपरभी दोनों ग्रंथकार महाराजों के विरुद्ध होकर "यतिदिनचर्या" व "यतिदिनकृत्य" के नामसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका ढूंढिये कहतेहैं सो प्रत्यक्षही मायाचारीसे झूंठ बोलकर भोलेजीवोंको उन्मार्गमें डालतेहैं और व्यर्थही पापके भागी होकर भव हारते हैं, सो पाठकगण आपही विचार सक्तेहैं।

---

१२१ "आचारादिनकर" में हमेशा मुंहपत्ति बाधनेका लिखाहै, ऐसा ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूंठहै, क्योंकि "आचारादिनकर" में तो खुलासा पूर्वक मुंहपत्ति हाथमें रखनेका लिखाहै. देखिये—छपेहुए "आचारादिनकर" के पृष्ठ ७७ वें का पाठ यहहैः—

" शिष्यः क्षमाश्रमणपूर्वं भणति ' भयवं अम्हे पव्वावेह वेसं समप्पेह ' ततो गुरुः पूर्वाभिमुख-उत्तराभिमुखाय शिष्याय सुगृहीतं कुत्तव्यमिति भणन् वेषमर्पयति वेषश्च चोलपट्ट—पट्टि—लोमपट्ट—रजोहरण—मुखवस्त्रिका रूपः शिष्यश्च इच्छंति भणन् दक्षिणस्कन्धसंलग्नरजोहरणदशः करद्वयेन वेषंगृण्हाति, तत ऐशानीं दिशं गत्वा पूर्वोत्तराभिमुखः शिष्यो वेषं परिदधाति, धर्मध्वजदशाः दक्षिण-स्कन्धकृतस्पर्शाः कुर्वन् मुखवस्त्रिकागर्भितांगुलिगर्भो गुरुसमीपमागच्छति" इत्यादि ।

१२२ देखिये ऊपरके पाठमें दीक्षा लेनेके समय शिष्य क्षमाश्रमण पूर्वक कहे कि हे भगवन् ! मेरेको दीक्षा दो साधूपनेका वेश देवो, तब गुरु पूर्व—उत्तरतर्फ मुखकरके शिष्यकोभी पूर्व—उत्तरतर्फ खडा करके चोलपट्ट, चद्दर, कंवल, रजोहरण, मुंहपत्ति रूप साधूपनेका वेश देवे. तब शिष्य ' इच्छं ' कहता हुआ, जीवणे खभेमें रजोहरणकी दशी (फली) लगें वैसे दोनों हाथोंसे वेश ग्रहण करके ईशान कौनेमें जाकर वेश धारण करे और जीवणे स्कंधको दशी लगें वैसे रजोहरण तथा दोनों हाथोंकी अंगुलियोंमें मुंहपत्तिको ग्रहण करके गुरुके पास आवे. इत्यादि दीक्षा लेनेकी विधिमें मुंहपत्ति हाथमें रखनेका कहाहै, परंतु मुंहपर वांधकर हमेशाही बंधी रखनेका नहीं लिखा.

१२३ फिरभी देखिये—पृष्ठ १२२ वें में साधूके अहोरात्रिकी चर्या के अधिकारमें साधूके उपकरणोंकी संख्या व प्रमाण तथा कर्त्तव्य वतलायाहै वहांपर " संपाइमरयरेणू, पमज्जणट्ठावयंति मुहपोत्तिं ॥ नासं मुंह च वंधई, तीए वसइं पमज्जंतो ॥ २७ ॥ " इसगाथामें साधूको मुंहपत्ति हाथमें रखना कहा, सो वोलते समय मुंहआगे रखनेसे जीवोंकी रक्षा होतीहै व मुखादिपर त्रसरेणु गिरें तो उसकी प्रमार्जना मुंहपत्तिसे की जातीहै तथा वसति प्रमार्जनसमय कारणवश थोडीदेरके लिये नाक मुंह दोनों वांधनमें आतेहैं. और पृष्ठ २७५में तीसरे वांदणा आवश्यक की व्याख्यामें " शिष्यः श्राद्धो वा विधिवन्मुखवस्त्रिका स्वांगं च प्रतिलिख्य करद्वयगृहीत मुखवस्त्रिका-रजोहरणः " इसपाठमें साधू अथवा श्रावक गुरु वंदना करनेके लिये विधिसहित मुंहपत्तिकी व मुंहपत्तिसे अपना अंगकी पडिलेहणा करके मुंहपत्तिको तथा रजोहरणको (साधूके रजोहरण-श्रावकके चरवलो) दोनोंहाथोंमें ग्रहण करके विधि-पूर्वक

गुरु वंदना करे और छट्ठे काउसग्ग विधि के अधिकार में भी पृष्ठ ३१२ वें में "दक्षिणोत्तर पाणिभ्यां मुखवस्त्रिका रजोहरणः" इस पाठ में भी काउसग्ग में जीवणे हाथ में मुंहपत्ति और डावे हाथ में रजोहरण रखने का कहा है ऐसेही साधु प्रतिक्रमण की व्याख्या में तथा श्रावक के वारहा व्रत उच्चराने की विधि में आर भी वहुत जगह साधु श्रावक दोनों के लिये व्रत नियम में मुंहपत्ति हाथ मे रखने का ही लिखा है।

१२४ देखो "आचारदिनकर" शास्त्रके ऊपरके सबपाठोंमें मुंहपत्ति हाथमें रखनेका बतलायाहै, इसलिये 'आचारदिनकर' के नामसे ढुंढिये हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका ठहरातेहैं सो भोलेजीवोंको मिथ्यात्वमें डालनेके लिये मायाचारीसे प्रत्यक्ष झूंठ बोलतेहैं। देखो जैसे शहरोंमें फजरमें भंगी (महत्तर) लोग बाजारमें झाडू निकालतेहैं तब सूक्ष्म रज उड़तीहै, उस बाजारमें होकर जानेवाले आदमी अपने मुंहआगे वस्त्र या हाथ देकर नाक—मुंह दोनों ढककर वहाँसे आगे चले जातेहैं. तथा किसी जगहसे विष्टाका टोपला लेकर भंगी जाताहोवे वहाँ दुर्गंधी फैलतीहैं वहां होकर चलने वाले आदमी अपने मुंहआगे वस्त्र देतेहैं, याने- दुर्गंधिका बचाव करनेके लिये नाक-मुंह ढकके जातेहैं. इसप्रकार कार्यवश थोड़ीदेरके लिये किसी आदमीको मुंहढकते देखकर उस आदमीको हमेशा मुंह ढकनेका झूंठा दोष लगाने वालोंको और बाजारमें रज उडते बिना या दुर्गंधी विनाभी हमेशा मुंहढकने (बाँधने) का ले बैठने वालोंको निर्विवेकी समझे जातेहैं। वैसेही जैनशासनमें भी विपाकसूत्र व प्रवचनसारोद्धार, ओघनियुंक्ति, आचारदिनकर वगैरह शास्त्रोंमें दुर्गंधि व रजादि निवारण करनेकेलिये कार्यवश थोड़ी देरके लिये नाक-मुंह दोनों ढकनेका बांधनेका आच्छादित करनेका कहाहै, उसका भावार्थ समझे बिना हमेशा मुंहबाँधनेका ठहराने बाबत उपरके शास्त्र पाठोंपर व शास्त्रकार महाराजों पर झूंठा दोष लगाने वाले और हमेशा मुंह बांधनेका ले बैठने वाले ढूंढियोंकी भी बडीभारी निर्विवेकता समझनी चाहिये। साधु—साध्वियोंके हमेशा मुंहखुल्ले रहतेहैं, मुंहपति हाथमें रहतीहै, बोलनेका कामपड़े तब मुंहआगे रखकर यत्ना पूर्वक बोलतेहैं ऐसा आचारांग, निशीथ, आवश्यक, भगवती, महानिशीथादि आगमानुसार ऊपरके लेखोंमें साबित करके दिखला चुका हूं और आचारदिनकर आदि शास्त्रोंकेभी मुंहपत्ति हाथमें

रखने संबंधी पाठ ऊपरमें बतलाये गयेहैं, इसलिये आचारदिनकर आदि शास्त्रोंके नामसे हमेशा मुंहबंधा रखने संबंधी ढूंढिये व्यर्थही मायाचारीसे प्रत्यक्ष झूंठे प्रलाप करतेहैं, सो किसीभी आत्मार्थी भव्यजीवोंको अंगीकार करने योग्य नहीं हैं।

---

१२५ "विचाररत्नाकर" ग्रंथके नामसे ढूंढियेलोग हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका ठहराते हैं सोभी प्रत्यक्ष झूंठहै, क्योंकि "विचाररत्नाकर" के लिखे हुए पृष्ठ १५४ वें में श्रावकोंको अहोरात्रि पौषध करने की विधि लिखीहै, उसमें पौषध करने वाला अपने गृह व्योपारको छोड़कर पौषध शालामें या गुरुके पासमें जाकर उच्चारादिके लिये भूमिकी पडिलेहण करे बाद स्थापनाचार्यकी स्थापनाकरके "इरिअं पडिक्कमिय खमासमणें वंदिय पोसह मुंहपत्ति पडिलेहीय ततो खमासमणं दाउं भणाई इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन् पोसहं संदिसावेमि" इत्यादि पाठमें पौषध लेनेके लिये इरियावही करके खमासमणसे वंदनाकर पौषह लेनेबाबत मुंहपत्तिकी पडिलेहणाकरे फिर खमासमण देव और इच्छाकारेण इत्यादि वाक्यसे पोसह लेनेकी गुरुकी आज्ञालेकर पोसहका पच्चक्खाणकरे, ऐसे लिखाहै सो अभी जिस तरहसे श्रावकलोग पोसह करनेके लिये मुंहपत्ति पडिलेहणा कर हाथमें रखतेहैं उसी तरह हाथमें रखनेका ग्रंथकारने लिखाहै, परंतु ढूंढियोंकी तरह बाँधनेका नहीं लिखा और इसीग्रंथमें पृष्ठ ९७ वें भी प्रतिक्रमण करनेके अधिकारमें रजोहरण तथा मुंहपत्ति, रखनेका कहाहै परन्तु इसग्रंथमें बांधनेका तो किसी जगहपर नहींलिखा तोभी ढूंढियेलोग अपने मिथ्यात्वके उदयसे झूंठा झूंठाही ग्रंथोंका नाम लेकर देखो 'विचाररत्नाकर' में मुंहपत्ति बाँधनेका लिखाहै. ऐसी मायाचारीसे भोलेजीवोंको मिथ्यात्वमें डालतेहैं, परन्तु ऐसे उत्सूत्रप्ररूपणाके अघोर पापसे परभवमें संसार परिभ्रमणका भयनहीं रखतेहैं. इससे यह लोग जैनसमाजमें सत्य उपदेशसे उपकार करने वालेनहींहै, किंतु खोटा उपदेश देकर जिनाज्ञाकी विराधना करने वाले होनेसे तत्त्वदृष्टिसे जैनसमाजके भावि शत्रुहैं।

१२६ देखिये—'विचाररत्नाकर' ग्रंथमेंतो ज्ञाताजीसूत्र आदिमूल आगम प्रमाणोंके साथ जिनप्रतिमाको माननेका बहुत जगह खुलासा पूर्वक लिखाहै और जिनमंदिर जिनप्रतिमामें हिंसाकहकर निषेध करने-

वाले जिनप्रतिमाके शत्रुओंकी कुयुक्तियोंका समाधान करके जिनमन्दिर जिनप्रतिमामें धर्मभावना होनेसे एकंतलाभ सावित करके बतायाहै. उसको तो मानते नहीं और मुंहपत्ति बंधी रखनेका नहींलिखा तोभी भोलेलोगोंको उन्मार्गमें डालनेके लिये इसग्रंथका नाम लेकर हमेशा मुंहबांधनेका प्रत्यक्ष मायाचारीसे झूंठाही प्रलाप करतेहैं, यहीगाढ़मिथ्यात्वहै।

---

१२७ श्रीचिदानंदजी महाराजने अपने बनाये " स्याद्वादानुभवरत्नाकर " नामाग्रंथमें हमेशा मुंहपत्ति बंधीहुई रखनेका लिखाहै, ऐसा ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूंठहै देखो छपेहुए " स्याद्वादानुभवरत्नाकर " नामाग्रंथके पृष्ठ १५४ और १५५में ऐसा लेखहैः—

" अब देखो जो जन कहतेहैं कि कानमें मुंहपत्ति गेरके व्याख्यान नहीं देना उनका कहना भी ठीकनहीं, क्योंकि जो शुद्ध आचार्योंने परम्परासे कानमें गेरकर व्याख्यान करना कुछ समझ करही चलायाहै. जो कहोकि जब ढूंढियोंकी मुंहपत्ति बाँधना क्यों निषेध करते हो ? तो हम कहतेहैं कि ढूंढिये लोगतो अष्ट प्रहर मुंहपत्ति बाँधतेहैं इसलिये हम निषेध करतेहैं. तो भला तुम्हारा कानमें गेरना किसी सूत्रमेंहै या कोरी परंपराको मानतेहो. तो हम कहतेहैं कि सूत्रतो सूचिमात्र होताहै और अर्थ शुद्ध आचार्योंकी प्रवृत्ति मार्गसे मालूम होताहै सो प्रवृत्ति मार्गमें परंपरासें मुंहपत्ति कानमें डालकर व्याख्यान देतेहैं और जो तुम कहो कि हमको सूत्रमें बतावो तो हम कहतेहैं कि शास्त्रोंमें ऐसा लिखाहै कि जिस समयमें साधू ठल्ले जाय उस समय नाशिकाको ढकके गुद्दीपर बाँधे और जिस जगह वस्ति, अर्थात् उपाश्रय वा धर्मशालामें प्रमार्जना करे, अर्थात् दण्डासनसें काजानिकाले उस समय गुद्दीपर बाँधे इन दो बातोंके वास्ते तो शास्त्रोंमें लिखा हुवाहै. तो इस जगहभी गीतार्थ आचार्योंने कारण कार्य लाभको जान करके व्याख्यानके समय मुंहपत्ति कानमें घालना चलाया होगा सो चलताहै, जो कहो कि मुँहपत्तिकी चर्चा में श्री ' केशीकुमार ' देशना देतेथे उस समयमें जो परदेशी राजा गयाथा उस समयमें परदेशी राजाने अनेक तरहके निन्दारूप विकल्प अपने चित्तमें उठाये परन्तु ऐसा विकल्प न उठा कि यह देखो मुंहबांधे देशना देताहै, इसलिये श्रीकेशीकुमारजी, श्रीगौतमस्वामीजी, श्रीसुधर्मस्वामीजी आदिक

१४ पूर्वधारी चारज्ञानके धारियोंको कारण कार्य लाभ मालूम न हुवा और यह पंचम कालके तुच्छबुद्धिवाले आचार्योंने लाभ कारण जान कर के कानमें मुंहपत्ति घालके व्याख्यान बांचना चलाया सो ठीक नहींहै तो हम कहतेहैं कि जैनमतके रहस्यके अभिप्राय विनाजाने श्रीकेशीकुमार जी आदिआचार्योंके नाम लेकर कानमें मुंहपत्ति घालना निषेध कियाहै, जो तुम कहो कि अभिप्राय क्याहै, तो हमकहतेहैं कि अभिप्राय यहहै कि श्रीकेशीकुमार आदि आचार्य महाराजतो १४ पूर्व और चारज्ञानके धणीथे सोभी वह १४ पूर्व कंठस्थथे कुछ पुस्तक पत्रालेकर व्याख्यान थोडाही देतेथे, इसलिये जब वह देशना देतेथे उस वक्त डांये हाथसे तो मुखवस्त्र-से जैणा और जीवणे हाथसे देशना समझातेथे अबारके कालमें जो कोई विना पुस्तकके देशनादे और ऐसा करे तो कानमें घालनेकी कुछ ज़रूरत नहीं परन्तु पुस्तक हाथमें लेकरके जो देशना देनेवालेहैं उनको अवश्यमेव कानमें डालना होगा, क्योंकि जब एक हाथमें पुस्तक और दूसरे हाथसे मुखकी जैणा रक्खेगा तो देशना शून्य हो जायगी और जो देशना शून्य नहीं होगी तो उघाडे मुख बोलना होगा, जो तुम कहो कि देशनाभी शून्य नहीं होने देंगे और उघाडे मुखभी नहीं बोलेंगे तो हम कहतेहैं कि सिद्धा-न्तसे विरुद्ध हो जायगा यदुक्तं " एग समय नत्थी दो उवयोग " एक स-मयमें दो काम नहीं होते, इसवास्ते कानमें मुंहपत्ति घालकर व्याख्यान देना चाहिये "

१२८ देखिये ऊपर के लेख में श्री चिदानंदजी महाराज ढूंढियों को हमेशा मुंहपत्ति बांधने का खुलासा पूर्वक निषेध करते हैं सिर्फ़ हाथ में पुस्तक पन्ने लेकर व्याख्यान बांचें तब तक थोड़ी देर के लिये नाक मुंह दोनों बांधने का लिखा है, जिस में भी पुस्तक पन्ने हाथ में रखे विना ऐसे ही जबान से व्याख्यान बांचें तो उस के भी मुंहपत्ति बांधने की कोई जरूरत नहीं और ढूंढियों के हमेशा मुंहपत्ति बांधने का निषेध करने के लिये ढूंढियों की कुयुक्तियों के समाधान के साथ अनेक आगम प्रमाणों सहित विस्तार पूर्वक " कुमतोच्छेदन भास्करः " याने 'लिंग निर्णयः' नामा ग्रंथ इन्हीं महाराज ने बनाया है सो छपा हुआ मालवा आदि देशों में प्रसिद्ध ही है, ऐसे खुलासा लेख मौजूद होने पर भी ढूंढिये लोग जान बूझकर कपटता से प्रत्यक्ष झूंठ बोलकर इन महाराजके नामसे 'स्याध्वा दानुभव रत्नाकर नाम ग्रंथके नामसे हमे-

शा मुंहपत्ति बांधनेका ठहरातेहैं, इसलिये ढूंढियोंने मुंहपत्ति बांधनेकी एकप्रकारसे भोलेजीवोंको अपने झूंठमतमें फँसानेके लिये मायाजालही रचीहै परंतु इसमें तत्त्वसे कुछभी सत्यताका सार नहींहै. यदि कुछभी सत्यता होती तो हमेशा मुंहपत्ति हाथमें रखनेवाले, हाथमें रखनेकाही आगमानुसार सिद्ध करनेवाले, और ढूंढकमतका त्यागकरके सच्चे जैन धर्म का स्वीकार करने वाले इन्हीं महाराजके नामसे ऐसी झूंठीप्रपंचताकी जाल कभी न फैलाते. आत्मार्थी होगा वहतो सर्पकी कंचुकी की तरह ऐसीप्रपंचीजालको शीघ्रतासे अवश्यही त्याग करेगा।

१२९. "निशीथसूत्र" की चूर्णिके वीशवें उद्देश में समितिके अधिकारमें हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका लिखा है, ऐसा ढूंढियों का कहना प्रत्यक्ष झूंठहै, देखोः—निशीथचूर्णिके वीशवें उद्देशमें साधुके मूलगुण उत्तरगुणकी शुद्धिका अधिकार चलाहै वहांपर उत्तरगुण शुद्धिमें भिक्षा (गौचरी) गमन व पांचसमिति तीनगुप्ति तथा पडिलेहणादिकके विषयमें लिखीहुई प्रतिके पृष्ठ ५९३वें में ऐसा पाठहैः—

"इयाणिं सज्झाय पडिलेहण भासदार पडुच्च परिख्खा भण्णति पडिलेहण गाहा॰ पडिलेहण कालतोहीणं अहियं वा करेति, अहवा घोडलादिहीणं अहियं वा करेति, विवरीयं पुण मुंहपत्तियादि पाडिलेहेति" इत्यादि।

१३०. इसपाठमें आलोयणाके अधिकारमें पडिलेहणा नियमित समयसे आगे पीछे करी हो या मुंहपत्ति पडिलेहणकी विधिसे विपरीत पडिलेहिहो तो प्रायश्चित कहाहै, परंतु मुंहपत्ति मुंहपर बंधी हुई रखने का किसजगह नहीं लिखा, जिसपरभी ढूंढियेलोग निशीथ चूर्णि के नामसे प्रत्यक्ष झूंठी ठग बाजी करके क्यों उन्मार्ग चलातेहैं, निशीथचूर्णिके वनानेवाले दो पूर्वके ज्ञानवान बडे प्रभावक प्राचीन आचार्यश्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमण महाराजहैं, और इसचूर्णिमें जगह २ जिनप्रतिमा को वंदन-पूजनका अधिकार आयाहै, इस अतीव प्राचीन सत्यबातको ढूंढियेलोग उत्थापन करतेहैं और चूर्णिमें हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका किसी जगह भी नहीं लिखा तो भी झूंठ बोलकर चूर्णिके नामसे हमेशा मुंहबंधा रखनेकाढोंग फैलातेहैं, यही प्रत्यक्ष मिथ्यात्वहै, ऐसा विरुद्ध आचरण आत्मार्थियोंको करना योग्य नहीं है.।

१३१. "नवतत्त्व" की भाषाटीकामें मुंहपत्ति बांधनेका लिखाहै, ऐसा ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठहै, देखो- छपेहुए 'नवतत्त्व'के पृष्ठ ७८ वें में संवरतत्त्व संबंधी ऐसी गाथाहै "इरियाभासेसणादाणे, उच्चारे समईसुय। मणगुत्ति वयगुत्ति कायागुत्ति तहेवय ॥२६॥ इसगाथाके अर्थ में पांचसमिति और तीनगुप्तीके विवेचनमें बचन गुप्तिके अधिकारमें- "वाचना प्रमुखकार्य्यकरती वेलाए मुखे मुंहपत्ति देइने जे जयणाथी बोलवुं ते बीजो भेद जाणवो" ऐसा पृष्ट ७८में खुलासा लिखाहै. इसमें मुंहपत्ति हाथमें रखकर मुंहआगे रखनेका लिखाहै, परंतु मुंहपर बंधी रखनेका नहीं लिखा. तोभी ढूंढिये लोग मुंहपर बंधी रखनेका लिखाहै, ऐसा कहतेहैं सो प्रत्यक्ष महामिथ्याहै. ऐसेमिथ्या लेख लिखकर जिनाज्ञा विरुद्ध होकर भोलेजीवों को अपने झूंठे पक्षके फंदेमें फँसातेहैं सो कितना संसार बढाते होंगे. ऐसे मिथ्याभाषी उनमार्गको पुष्टकरने वालोंको साधू कहनेसे या माननेसेही मिथ्यात्व लगताहै.।

१३२. श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत "श्रीआवश्यक" सूत्रकी वृहत्वृत्तिके नामसे मुंहपत्ति हमेशा बांधनेका ठहराना यहभी ढूंढियोंका प्रत्यक्ष झूंठहै, क्योंकि "श्रीआवश्यकसूत्र" भद्रबाहुस्वामि कृतनिर्युक्ति सहित तथा श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत वृहत्वृत्तिसहित छपा है उसके पृष्ट ७९७-७९८ वें में काउसग्ग करनेकी विधि बाबत ऐसा पाठहैः—

"चउरंगुलं मुहपत्ती उज्जूए, डव्वहत्थे रयहरणं ॥ वोसट्ठचत्तदेहो, काउसग्गं करिज्जाहि ॥ १५४५ ॥ व्याख्या 'चउरंगुले'त्ति, चत्तारि अंगुलाणि पायाणं अंतरं करेयव्वं, मुहपोत्तिं 'उज्जुए'त्ति दाहिण हत्थेण मुहपोत्तिया घेत्तव्वा, डव्वहत्थे रयहरणं कायव्वं एतेण विहिणा वोसट्ठचत्तदेहो त्ति पूर्ववत् काउस्सगं करिज्जाहित्ति गाथार्थः ॥ १५४५ ॥

१३३. देखिये ऊपरके पाठमें साधूको काउसग्ग करनेकी विधि बतलाईहै उसमें खड़ेखड़े काउसग्ग करे तब दोनो पैरोंके बीचमें चारअंगुल प्रमाणे अंतर (छेती) रक्खे, मुंहपत्तिको जीवणे हाथमें रक्खे, और रजोहरणको डावे हाथमें रखकर शरीरको (बोलने चालनेरूप क्रियाको) वोसरा (त्याग) कर नीचे लंबी भुजा प्रसारकर एकाग्रचित्त से काउसग्ग करनेका बतलायाहै. इसपाठमें मुंहपर मुंहपत्ति हमेशा बंधीरखनेका नहीं बतलाया किन्तु खुलासा पूर्वक हाथमें रखनेका बतलायाहै,

जिसपरभी ढूंढिये लोग प्रत्यक्ष झूंठ बोलकर श्रीहरिभद्रसूरिजी कृत आवश्यक बृहद्वृत्तिके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का ठहरातेहैं, सो भोलेजीवोंको उन्मार्गमें डालनेके लिये मायाचारीकी ठगबाजी करके व्यर्थही अपना संसार बढ़ातेहैं ।

१३४. "पिंडनिर्युक्ति" की वृत्तिमें हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका लिखाहै, ऐसा ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूंठहै क्योंकि 'पिंडनिर्युक्ति' वृत्ति-सहित छपेहुए पृष्ट १३वें में "पायस्सपडोयारो दुनिसिज्झ तिपट्ट पोति रयहरणं ॥ एएउ न वीसामे, जयणा संकामणा धुवणं" ॥ २८ ॥ इसगाथामें कार्यवश रजोहरण के उपरकी ऊनकी व सूतकी दो निषिद्या तथा चद्दरचोलपट्ट मुंहपत्ति रजोहरण आदि उपकरण यत्नापूर्वक उपयोगसे धोनेकी विधि बतलाईहै, मगर मुंहपत्ति मुंहपर बांधनेका नहीं लिखा इसलिये पिंडनिर्युक्ति के नामसे बांधनेका कहकर ढूंढियेलोग मायाचारीसे व्यर्थही मिथ्यात्व बढ़ाते हैं ।

१३५. 'दीक्षाकुमारी' नामा पुस्तकके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने का ठहरानेवाले ढूंढियेलोग मायाचारीसे प्रत्यक्ष झूंठ बोलतेहैं क्योंकि दीक्षाकुमारीमें किसी जगह हमेशा मुंहबंधा रखनेका नहीं लिखा, यह दीक्षाकुमारी पुस्तक 'दशवैकालिक'सूत्रका साररूप है, इसलिये जब दशवैकालिकसूत्रमें किसी जगह कहींभी हमेशा मुंहबंधा रखने का नहीं लिखा तो फिर सूत्रके साररूप दीक्षाकुमारी में मुंहबंधा रखने की बात कहां से आवे. जैसे-माता-पिताके विनाही लड़के-लड़कियोंका जन्म होनेकी अयुक्तबात कोईबुद्धिमान समझदार नहीं मान सकता. वैसेही हमेशा मुंहबांधनेका सूत्रमें न होनेपरभी सूत्रके साररूप इस पुस्तकमें हमेशा मुंहबांधनेका ठहरानेकी बातभी ढूंढियोंकी सर्वथा अयुक्त होनेसे कभी सत्य नहीं ठहर सकती और दशवैकालिक सूत्रके पांचवें अध्ययन प्रथम उद्देशाकी "अणुन्नवित्तु मेहावी, पडिच्छन्नंमि संवुडे॥ हत्थगं संपमज्जिता, तत्थ भुजिज्ज संजये ॥८३॥" इसगाथामें साधू गौचरी गयाहोवे आहार करना होवे, तब बुद्धिवान साधू गृहस्थीकी आज्ञा लेकर एकांत जगहमें जाकर इरियावही करके 'हस्तकं,'मुखवस्त्रिकारूपं याने-मुंहपत्ति हाथमें होतीहै उससे अपने मुंह-हाथको प्रमार्जन करके उपयोगसे आहारकरे, ऐसी सूत्रकारकी आज्ञाहै, इस आशयको लेकर दी

क्षाकुमारी,' के छपेहुए पृष्ठ ११२ के अंतमें व ११३ की आदिमें ऐसा लिखाहै "हे मुनि आहार लाव्या बाद पछी मुनिअे केवी रीते भोजन करवुं जोईअे? अे भोजन विधि तमारे अवश्य जाणवा योग्यछे मुनिअे एकांत स्थलमां भोजन करवा वेसवुं. जो गृहस्थना स्थान आगल आहार लेवानो योग्य होयतो मुनिये गृहस्थनी आज्ञा लेई इरियावही पडिक्कमी हाथमां मुंहपत्ति लेई हाथ-पग विगेरे अवयवोने सारिरीते पुजी तेज स्थले भोजन करवुं." इत्यादि इसलेख में सूत्रकारके आशय मुजब हाथमें मुंहपत्ति रखने का लिखाहै आहार करने के पहिलेभी मुंहपति हाथमें रहतीहै और पीछेभी हाथमें रहतीहै मगर किसी जगह बांधनेका नहीं लिखा तोभी मायाचारीसे भोलेलोगों को भ्रममें डालने-केलिये बांधनेका अपनी तरफसे बतलाकर उनमार्ग को पुष्टकरतेहैं. परंतु ऐसे माया मिथ्याके पापसे नहीं डरतेहैं, इसलिये ऐसे ढूंढियोंके दिलमें शुद्ध धर्मबुद्धि नहींहै, किन्तु पूजा मानताके लिये लोगोंको ठगनेमेंही अपनी बड़ाई समझतेहैं, नहींतो ऐसीमायाचारी कभी न करते. आत्मार्थियोंको ऐसेझूंठे पाखंडका त्याग करनाही हितकारीहै. दीक्षाकुमारी के नामसे हमेशा मुंहवांधने का उद्यम करतेहैं परंतु दीक्षाकुमारी में ढूंढियोंको जैनसाधू मानेही नहींहैं और पुस्तककी शुरूआ-तमेंही शांतिनाथ भगवान्‌की प्रतिमादेखनेसे सय्यमभवसूरिजी को वैराग्य प्राप्ति व दीक्षा लेना तथा 'दशवैकालिक' सूत्रकी रचना करना वगैरह बातें खुलासा लिखीहैं, उनबातों को मानतेनहीं और सूत्रकारके आशय विरुद्ध होकर हमेशा मुंहवांधनेका अपना पाखंड जमाने के लिये माया चारी फैलाना, यही दृढमिथ्यात्वी के लक्षणहैं।

१३६. ढूंढियलोग 'भुवनभानुकेवलि'के रासके नामसे हमेशा मुं-हपत्ति वांधना ठहराते हैं, सोभी प्रत्यक्ष झूठहै. देखिये. भुवनभानुकेवलि के छपेहुए चरित्रमें पृष्ट ९०-९१वेमें ऐसा पाठहै:—

"पितृगृहे वस्त्राच्छादनादिकं निश्चिन्तमवाप्नोति रोहिणी, कर्म च मातृ-पितृप्रसादेन न कोऽपि कारयति गृहे, ततो देवगृहं गता सा यां कांचिद् वार्ताप्रियां पश्यत्युपविशति गत्वा तत्समीपे, ततो देववंदनं प-रिहृत्याभिदधाति हले! मयैतत् श्रुतम्, एतच्चाद्य जातं त्वद्गृहे, सा प्राह नैव, केनाप्यसंगतं कथितं, ततो रोहिणी प्राह अरे असत्यमहिले! किं मामपी त्वमपलपसि ? सा प्राह कथमहमलीकेत्यादि विकत्थयंत्या

लगति स्म तया सह राटी, ततो विकथायोगिनी समुत्साहिता सा करोत्यन्यया सह राजकथां निर्विद्य गतायां च तस्यां प्रारभतेऽपरयासार्धं स्त्रीपुरुषकथां श्वश्रूजनादिभीत्या चोत्थितायामस्यामन्यया सह विदधाति भक्तकथां, यियासौ च तस्यां प्रस्तावयति कयाचित् समं देशकथां, ततो गृहाद्निर्गता प्रहरद्वयेऽपि न निवर्तते. एवं च प्रतिदिनं कुर्वाणाऽन्यास्मिन् दिने हस्तौ योजयित्वा केनापि श्रावकेणोक्ताऽसौ, महानुभावे ! क्षणमात्रमेव तावद् देवगृहे समागम्यते, तदेव शुभभावैरेकाग्रैरेव नेतुं युज्यते, किमेवं वार्ता कुरुथ यूयं ? ततः सा रुष्टोत्तरति बांधव ! किं कूर्मः ? अन्यत्र तावत् कोऽपि कस्यचित् न मिलति. कस्यापि सत्के गेहे कोऽपि न गच्छति, अतः प्रियमेलकोऽत्रैव भवति, क्षणमात्रमेकान्ते सुखदुःखमात्रं किंचिदुच्यते. इति नासमाधानं विधेयमिति. एवं साध्वीनां चोपाश्रये गता सा स्वाध्यायं परिहृत्यापरापरश्राविकाभिः सह प्रारभते तथैव विकथाप्रबंधं, गृह्णातिसाधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकादिदोषाननवरतं ततो यदि साध्वी किंचिच्छिक्षयति, महाभागे ! पठितं सर्वमपि परिगलति, किमनेनैहिकामुष्मिकापायकरणेन केवलं कर्मबन्धहेतुना विकथापरपरिवादानर्थदंडेन ? सर्वसम्पत्तिनिबंधनममृतरूपं स्वाध्यायमेव विधेहि ? ततो मुखमोटणंकृत्वा प्रतिवदति इच्छाकारेण आर्यिके व्रतिनामपिदुःपरिहर्तव्यौ विकथापरपरिवादौ. किंचान्यमपि बद्धमुखमत्र तिष्ठंतं न कंचित्पश्यामः वयं तु सुखेनैव वार्तालापं कुर्मः न चान्य इव वयं मायां कुर्तुं जानीमः, यादृशं तु तिष्ठति तादृशं पितुरपि सत्कं स्फुटमेववदामः यदि प्रतिभाषते तर्हि कोपि रुष्यतु तुष्यतु वा, ततो ज्ञातेयमनर्हा वराकी सदुपदेशानामित्युपेक्षिता साध्वीभिः” इत्यादि ।

१३७. मलधार गच्छके श्रीहेमचंद्रसूरिजीने “भुवनभानुकेवलि” का चरित्र बनायाहै उसके ऊपरसे राजगच्छके धर्मसूरिजीकी परंपरा वाले हरिकलशमुनिकी बनाईहुइ आर अनुमान ४०० वर्षकी प्राचीन लिखीहुई भाषाकी प्रतिके पृष्ठ ७८—७९ में नीचे मुजब सारांश लिखा है :—

“इम विहाणानि देहराभणी नीसरइ विकथा करती बिहुं पहर उरहीं नव लाइ. इम सदैव विकथा करती देखी किणही श्रावकी हितुभणी हाथजोडी रोहिणी प्रति भणिउं, महानुभावि तां पुण्य उपार्जिवा क्षणएकु दे-

हुराइ आवीइ, तउ ते क्षणएक शुभभावनां करी देववांदीयइ, तउ जुगत-उं तुम्हे भलीविचारइ, इमवार्ताकांइ करीउ, पछे ते पडुत्तर दिइ बांधव किमकरां, अनेथि तउ को कुणह्न नइ मीलइ नहीं, को कुणह्न नइ घरि-जाइ नहीं, तउ इहांजि प्रियमेलउ हुइ. एह भणी क्षणएक आपणउं सुख-दुःख निवेदियइ, ईणि विषइ असमाधान न करिवउं, हिवे क्रमिहिं माहा-सतीनइ उपाश्रयि सज्झायु परिहरि अपरीपर श्राविकास्यउं तिमज विकथा प्रारंभइ साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकातणा लोकना दूषण निरंतर प्रकास-इ तउं जइ महासती कांई सीखवइ महाभागि भाणिउं सह्न वीसारी जाइस्यइ, इणि इहलोक परलोक दुखदाइयइ निःकेवल कर्मबंधहेतु परपरिवाद विकथा निन्दादिक अनर्थदंडिकिसउं पोतउभराई छइ, सर्व संपत्ति नउं कार-णु अमृतसिरिखउ सज्झायूजि भणि गुणि. पछइ रोहिणी मुहमोडी उत्तरदी-इ इच्छकारि महासती व्रतनाधणी हुइ पणि विकथा निन्दा अतिविरुद्ध छइ, पणि तीह विकथा पाखई अनेरु कोई मुंहबांधी बइसी रह्मउ न देखां. अम्हे तीह्नना मुंह आगलि जि कहां, अनेरानी परि माया करि न जाणां, जिसउ हुइतिसुं पिता अइ हुई प्रकट कहां, को रूसउ भावइतूसउ पछइ महासतीए ए बापडी उपदेश नइ अयोग्य हुइ, इम चींतवी ते रोहिणी ऊवेषी." इत्यादि।

१३८. ऊपरके दोनों लेखोंका उदयरत्नजीने "भुवनभानुकेवलि" के रासमें नीचे मुजब भावार्थ बतलाया हैः—

॥ दोहा ॥

तात घरे रहतां तिहां, भला वासन भोजन्न ॥ पामे परिघल रोहि-णी, जीजी करे सहु जन्न ॥१॥ कामकाज न करे कीस्युं, अरति न एक लगार ॥ मात-पिता सुपसायथी, को न कहे तुकार ॥२॥

॥ ढाल पांसठमी ॥

वीरे वखाणी राणी चेलणाजी ॥ ए देशी ॥

देवभुवन तव गये थकेजी, उलट आणी उर ॥ वातप्रिय कोइ पेखी नेजी, देववंदन त्यजे दूर ॥१॥ विकथानें रसे वाही रोहिणीजी, पोते जइने तेहपासे ॥ बेसाडीने ते बोले इस्युंजी, ए में हली सुण्युं तुझ आवासे ॥ वि० ॥ ॥२॥ आज ए तुम घरे नीपनुंजी, काज कर्यो मुने केणें ॥ ते कहे अलीक ए उचर्युंजी, तुज आगल सही तेणें ॥ वि० ॥ ॥३॥ तूं वारुरे डाही वदे रोहिणीजी, मुजने पण ओलवे छे मांड ॥ सा कहे

समझण विना सहीजी, जिम तिम शुं लवे छे भांड ॥ वि० ॥४॥ इम उत्तर पडुत्तर आपतांजी, वढवाडे त्यां आव्यो पार ॥ तव बीजासु राजकथा करेजी ,विकथाए वाही अपार ॥ वि० ॥५॥ ते पण घरे गई थाकीनेजी , तव त्रीजीसु तेणे सराग ॥ पुरुष-स्त्रीनी प्रारंभी कथाजी , ते सासरीयाने भयें गई भाग ॥ वि० ॥६॥ चोथीसु चाहीने ते करेजी , भक्तकथा तीहां भूर ॥ इम पांचमीसु देशकथा करेजी, आवे तव शिरपरे सूर ॥वि०॥७॥ इम आचरतां विकथा अनुदिनेजी, कोइ श्रावक कहे एक दिन्न ॥ कर जोडीने ते कामनी प्रतेंजी, भद्रे आवी देवभुवन्न ॥वि० ॥८॥ एक मने त्यजीने आशातनाजी , नमवु घटे नाथने पाय ॥ ते वन्दना तो रही वेगलीजी, किम करो छो कर्म कथोय ॥ वि० ॥ ९ ॥ तव उत्तर आपे ते तेहनेजी, बन्धव बीजेको ठाम ॥ किहांरे को नवी मीले केहनेजी , केहने को न जाये धाम ॥वि ॥१०॥ प्रियमेलो थाए ए थांनकेजी , तेणे सुख दुखनी क्षणएक ॥ पांसठमीए ढालें धर्मने कर्मनीजी , वातथाये विसराल ॥वि ॥११॥

॥ दोहा ॥

उपाश्रय पण अज्जा तणे , सहेजे तजी व्याख्यान ॥ जे ते श्राद्धीसु करे , विकथा तेह सदाय ॥१॥ साधु-श्रावकने श्राविका , साधवीना सुविशेष ॥ अवर्णवाद मुख उचरे , अनुदिन तेह विशेष ॥२॥ तव सीखामण द्ये साधवी , भद्रे भणतर सर्व ॥ जाएछे तुझ विसरी , जीम गुण जाये गर्व ॥३॥ एहभवे दुख दायिनी , केवल कष्ट निवास ॥ पहवी कथा करे शु होय, अनर्थदण्ड आवास ॥४॥ सदन जे संपत्ति तणु, मुक्ति पुरीनु मूल ॥ सुधासम स्वाध्याय कर , अहनिशि थइ अनुकूल ॥५॥

॥ ढाल छासठमी ॥

जोसीयडो जाणे जोस विचार ॥ ए देशी ॥

मुह मरडी तव ते कहे रे , साधवीजी सुणो वात ॥ साधुजनें पण सर्वथारे, विकथा न वरजी जात ॥१॥ गुरुणीजी मलि मलि म करो मांड, एआंकणी ॥ न गमें मुने पाखंड ॥गु०॥ न तजाये अनर्थदंड ॥ तो जीभ थाय शतखंड ॥गु० ॥२॥ मुहपत्तिए मुख बाँधीनेरे , तुमे बेसो छो जेम ॥गु०॥ तीम मुखें डुचो देइनेरे , बीजे बेसाये केम ॥गु० ॥३॥ मुखबाँधी मुनिनी परेरे,परदोष न वदे प्राँहि ॥गु०॥ साधुविना संसारमांरे , क्यारे को दीठो क्याँहि ॥गु० ॥४॥ सरल पणे अमें सहीरे , जेवु देखु ज्यांहि ॥गु॥ परने

पण मुख उपरेरे, तहवु भाखु त्याँहि ॥गु० ॥५॥ कपट न जाणु केलवी रे, अवरा परे एक रेष ॥गु ॥ मुह रखती सगा बापनीरे. बाते न जंप विशेष ॥गु० ॥६॥ को रुसो तूसो कोईरे, पण अमें असारी टेव ॥गु०॥ मरणाँते मुकु नहिरे, जो दुहवाए देव ॥गु० ॥७॥ सदुपदेश नवि सद्दहेरे, अयोग्य बापडी एह ॥गु०॥ अजाण जाणी तव अज्ञाए रे, उवेखी मेली तेंह ॥गु० ॥८॥ शंका तजी सा एकदारे, श्रुत सुणतां गुरुपास ॥गु०॥ वस्त्रे वदन आछादिनेरे. मुसके मुकती हास्य ॥गु०॥ ॥९॥ जण जण श्रवणे जू जू आ रे, अनेक वदे अवदात ॥गु०॥ लख लख करती ते करे रे वखाण माँहे व्याघात ॥गु० ॥१०॥ माती महिषी तलावनुं रे, जलजीम डोहोले जोर ॥गु० तीम वखाण डोल्युं तीणेरे, सभा जनसु करी शोर ॥गु० ॥११॥सोरथवाहनी सुता लहींरे, कोइ न वारे काँइ ॥गु० तीम तीम वमणी थाइनेरें, लवती लाजे नांहि ॥गु० ॥१२॥ जो गुरुवादिक वारे कदारें, तो त्राडी कहे तनु भीड ॥गु०॥ भगवंत हुं बगनी परे, बेसी रहुं मुख बीड ॥गु० ॥१३॥ पण पडुत्तर पुछ्यातणोरे, जोजीम तीम न देवाय ॥गु०॥ तोलोक सहु मुंगी कहेरे, ते वीके काँई बोलाय ॥गु० ॥१४॥ अयोग्य जाणीने सर्वथारे, गुरें पण मेहली उवेख ॥गु०॥ तव निःशंक मुखे मोकलेरें, विकथा करे विशेष ॥गु० ॥१५॥ छासठमी ढाले जुओरे, वाते विणसे काज ॥गु०॥ आखर उदयरतन कहेरे, वातें विगडे लाज ॥गु० ॥१६॥"

१३९. देखो उपरके चरित्रके पाठमें तथा प्राचीन भाषाके पाठमें और रासके पाठमें यह बात खुलासा पूर्वक लिखीहै कि- रोहिणीको निंदा-विकथा करनेका स्वभावथा सो जिनमंदिरमें देवदर्शन करनेको जाती वहांभी अनेक प्रकारकी विकथा करतीहुई लड़ाई खडीकरदेती, तब श्रावकने समझाया तोभी मानानहीं. वैसेही साध्वीकेपास उपाश्रयमें जाती वहांभी स्वाध्याय करना छोडकर साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविकाओंकी निंदा करतीथी, तब साध्वी रोहिणीको समझातीथी कि-इसभव-परभव दुःखदेने वाली यह कर्मकथा छोडकर आत्माहितकारी अमृततुल्य स्वाध्यायकर. ऐंसा साध्वीका उपदेशभी नहीं मानतीथी और मुंहचढाकर सामने जवाब देने लगतीथी कि व्रतधारियोंकोभी यह कथा नहीं छुटती और दूसरेभी यहां मुख बांधकर कोई बैठे नहींहैं, मैं तो जैसा देखुं वैसा कहतीहूं. इत्यादि उलटा जवाब देनेसे साध्वीने रोहिणीका उपदेश देने

के अयोग्य जानकर उसकी उपेक्षा की. यही बात रास रचनेवाले कविनेभी रोहणीकी उद्धत्ताईवाले वक्रोक्तिके वाक्योंमें वतलाई है, इसलिये ऐसे वाक्यको देखकर उसका अंतर आशय समझेबिना हमेशा मुंहपत्ति वांधनेका ठहराना वडी भूलहै. क्योंकि देखो—जव साध्वीजीने निंदा- विकथा करना छोडकर स्वाध्यायकरनेका उपदेश दिया तव रोहिणीने " मुंह मरडी तव ते कहेरे, साध्वीजी सुनो । वात॥ साधुजीने पण सर्वथारे, विकथा न वरजी जात ॥१॥ गुरुणीजी मलिमलि म करो मांड ए आंकणी ॥ न गमे मुने पाखंड ॥ गुरुणीजी न तजाय अनर्थदंड ॥ तो जीभ थाय शत खंड ॥ गु० ॥ २ ॥ मुंहपत्तिए मुख बांधीनेरे, तुमे वेसो छो जेम ॥ गु० ॥ तीममुखे डुचो देनेरे, बीजे वेसाय केम ॥ गु० ॥ ३ ॥ मुखवांधी मुनिनी पररे, परदोष न वदे प्राहिं ॥ गु० ॥ साधुविना संसारमारे, क्यारे को दीठे क्यांहि ॥ गु० ॥ ४ ॥ " इत्यादि वाक्य कहेहैं. इसमें स्वाध्याय करनेको व साध्वीके उपदेशको तो रोहिणी पाखंड वतलातीहै, यह वाक्य तो प्रत्यक्षही उद्धताईका भरा हुआ आक्षेपरूप झूठहै. इसी तरहसे मुखवांधनेका कथनभी उद्धताईसे आक्षेपरूप होनेसे झूठही समझना चाहिये. क्योंकि " मुंहपत्तिए मुख वांधीनेरे, तुमे वेसो छो जेम ॥ तिम मुखें डुचो देईने रे, बीजे वेसाय केम ॥ ३ ॥ " यह वचनही अपने अवगुणका बचाव करनेके व दूसरोंके ऊपर झूठे आरोप रखनेके हैं और यह वचन वक्रोक्ति (अतिशयोक्ति) के होनेसे इस वचनका अर्थ ऐसा होता है कि दूसरोंकी वातें करनेमें जैसे आप मौन रहते हो, वैसेही मेरेसे मौन नहीं रहा जाता. इस प्रकार सच्चा अर्थ होताहै, देखिये— संसार व्यवहारमें भी भाई—भाईमें ऐसे कहनेकी प्रवृत्ति है कि कोई निंदक चुगलखोर अपने बडे भाईकी अनेक तरहकी झूठी निंदा करताहोवे उसको सुनकर बडाभाई समता भावसे सहन करे, मौनरहे, पीछा कुछभी जवाव न दे. परन्तु छोटाभाईको ऐसी निंदा सहन न होसके तव वडेभाईके पासमें आकर बोलेकि—आपतो 'मुंह बांध करके कानोंमें तेल डाल करके मुंके—वहरे हो गयेहो परन्तु दूसरे ऐसे नहींहैं, ऐसा कहनेसे वडाभाई मुंह बांधने वाला मुंका—वहरा नहीं होसकता, किंतु यह अतिशयोक्तिका वचन होनेसे छोटाभाई वडाभाईको कहताहै कि उस दुष्टकी झूठी निंदा सुनते हुएभी जैसे आ-

प मौन रहते हो वैसे मेरेसे मौन नहीं रहा जाता, मैंतो निंदक को शिक्षारूप प्रतिउत्तर दुंगा, ऐसा अर्थ होताहै. और दुष्ट- नालायक--मूर्ख लडकेको हितशिक्षा देनेमें तूं वडा कुल दीपकहै, तूं रोजीना हमेशा शक्कर खाताहै, तेरी सोभा जगतमें हो रहीहै; तूं बडा बुद्धिमान् सुपुत्र पैदा हुआहै, इत्यादि इत्यादि कार्यवश अतिशयोक्ति से इसप्रकार पिता-पुत्रमें, स्त्री-पुरुषमें, सेठ-मुनीममें, गुरु—चेलेमें और मित्र—दोस्तोंमें आपसमें अनेक प्रकारके वचन वोलनेकी रीतिहै, परन्तु उन वचनोंका अर्थ अन्य रीतिसे होताहै, वैसेही " मुंहपत्तिए मुख वाँधीने " इत्यादि अतिशयोक्ति के वचनोंसे यहाँपर मुह बाँधना सावित नहीं होसकता किंतु निंदा-विकथा करनेमें मौन रहना ऐसा अर्थहोताहै इसलिये ऐसे वचन देखकर उसका आशय समझे विना हमेशा मुंह बांधनेका ठहराना वडी अज्ञानता है।

१४०. फिरभी देखिये विचार करिये- यह रास चरित्रके ऊपरसे बनायाहै और चरित्र में "अन्यमपि बद्ध मुखमत्र तिष्ठतं न कंचित्पश्यामः" ऐसा पाठहै तथा प्राचीन भाषा में भी "अनरु कोई मुंह बांधी वईसी रह्ययउ न देखां" ऐसा लेखहै, इन दोनों लेखों में (दुसराभी कोई यहांपर मुख वांधकर वेठा हुआ देखनेमें नहींआता) ऐसा खुलासा पूर्वक लिखाहै इस आशयको लेकर रासकारने अतिशयोक्तिसे "मुंहपत्तिए मुख वांधीनेरे" ऐसा कहाहै यहांपर मुंहपत्ति बांधनेके कथन करनेकी कुछगंधभी नहींहै, जिसपरभी अगर रासके इस वचनसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराने में आवे तो ऊपरके चरित्र के पाठसे व प्राचीन भाषाके पाठसे विसंवाद (पूर्वापरविरोध भाव) आवेगा. और जैसे सूत्रमें संक्षेपमें लिखाहोवे उसको टीकाकार महाराज प्रसंगवश विस्तारपूर्वक लिख सकतेहैं परंतु सूत्रपाठके विरुद्ध होकर उलटा कुछभी नहीं लिख सक्ते. वैसेही चरित्रमें संक्षेपमें कुछ लिखाहोवे उसको रासकार प्रसंगानुसार विस्तारसे कथन कर सकतेहैं परंतु चरित्रके विरुद्ध होकर चरित्रसे उलटा रासकार कभी नहीं लिख सकते. इसलिये चरित्र विरुद्ध रासमें हमेशा मुंहपत्ति वांधनेका कभी नहीं आसकता. यहतो सामान्य बुद्धि वालाभी अच्छीतरहसे समझ सकताहै, तोभी ढूंढिये लोगोंके मिथ्यात्वका उदय से खूब अज्ञानदशा छाईहुई होनेसे पूर्वपर आगे पीछेका संबंध व शास्त्र

कारका अंतर आशय समझेविना अतिशयोक्तिके वाक्यसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहरातेहैं मगर पूर्वापर विरोधी और युक्तिविरुद्ध होनेसे कभी सत्य नहीं ठहर सकता। इस बातका विशेष खुलासा निर्णय आगेके लेखकी समीक्षामें लिखेगें वहांसे जान लेना

---

१४१. हरिवलमच्छी के रासमें हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका लिखा है ऐसा ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूंठहै. देखो छपाहुआ हरिवलमच्छी के रासका दूसरा उल्लास सातवीं ढालके पृष्ट ७२, ७३ वेंमें ऐसे लेख छपाहै:—

इणि परे नृपमंत्रीसरू, एकमतो करी दोय॥ महीपति पहोतो महेलमां, मंत्री गयो घर सोय॥१॥ बीजे दिन रवि उगियो, प्रगटयो राग विभास॥ शकुनीयें बांह पसारीया, कैरव कीध विकास॥२॥ वाच्छरु आं वलगां जई, धावाने हर्षेण॥ दोवा वेसे भामिनी, जेहने छे घर धेण॥३॥ देउल सघले वाजीयां, झालरना झणकार॥ तास शवद सुणतां थकां, रजनी नाठी तिवार॥४॥ सुल्लभबोधी जीवडा, मांडे नीज खटकर्म॥ साधुजन मुख मोमती, वांधी है जिन धर्म॥५॥ मंगल वाजां वाजीयां, वाज्यां गुहिर निशाण॥ ए करणी परभातनी, जव उगे शुभ भाण॥६॥ मदनवेग नृप तिण समें, परखद मेली एकत्र॥ वेठो सिंहासन हसी माथे धरावी छत्र॥७॥"

१४२. प्रिय पाठकगण उपरके लेखमें राजा सूर्य उदय समय परिषदा इकठ्ठी होनेपर राजसभामें आताहै यह अधिकार चलाहै. सूर्य उदयके समयमें रासकारने प्रसंगवश गृहस्थलोगोंके कर्तव्य वतलायेहैं उसमें सूर्य उदय होनेसे सब नगरके जिनमंदिरोंके दरवाजे खुले झालर आदि मंगलीक वाजित्र बजनेलगे तव "सुलभबोधि जीवडा" याने-धर्मी श्रावक जन, "मांडे निज खट कर्म" याने— छ कर्म (कर्तव्य) करने लगे सोही वतलातेहैं:—

"जिनद्रेंपूजा गुरूपास्तिः, स्वाध्याय संयम तपः॥ दानं चेति गृहस्थानां; षट कर्माणि दिने दिने॥१॥,,

प्रथम जिन मंदिरमें प्रभुकी पूजा करना दूसरा गुरुमहाराजकी सेवा करना, तीसरा स्वाध्याय करना, चौथा पांचइन्द्रयोंको वश करना व यथाशक्ति आश्रव रोकना, पांचवा यथाशक्ति तपकरना, और छट्ठा सुपात्र को दान देना. यह छ कर्म श्रावक हमेशा करते हैं। यहां पर श्रावक के जिन पूजा करनेके प्रसंगमें फजरमें साधूके मुंहपर मुंहपत्ति वांधनेके कथन करनेका कुछभी संबंध नहींहै। और "साधुजन मुख मोमती, बांधी है जिनधर्म " इस वाक्यके लिये रासके छपवाने वाले भीमसिंह माणक को मुंबई लिखाथा उसके जवावमें ता० १२-११ -१९२३ के रोजका लिखाहुआ पोष्टकार्ड भीमसिंह माणेक की तरफसे मुंबईसे मेरेपास कोटामें ता० १४--११--१९२३के रोज आयाहै उसमें लिखाहै कि " आपनो कृपापत्र मल्यो हरिवल्लमच्छी ना रासमां भुलछे ते लख्युं पण हाल ते रास मलतो नथी बीजी आवृति छपाशे तेमां सुधारी लेवामा आवशे " इस लेखमें किसीको शंका होतो मुंबई की और कोटेकी पोष्ट ऑफीसका छापवाला पोष्ट कार्ड मेरेपास आकर पाठक देखसकते हैं। इसलेखमें " साधुजन मुख मोमति वांधी है जिनधर्म " यह वाक्य रास छपवाने वालेने भूलसे छपवायाहै, सो अपनी भूल दूसरी आवृत्तिमें सुधार लेनेका स्वीकार कियाहै. इसलिये ऐसे भूलवाले वाक्यको आगे करके हमेशा मुंहपात्ति वांधनेका ठहराना यही वडी अज्ञानताहै. रास गुजराती भाषा में बनाहै और "बांधीहै जिनधर्म " यह वाक्य हिंदी-मारवाडीहै. इसलिये किसी ढूंढियाने यह वाक्य नवीन वनाया सावित होताहै क्योंकि जैसे " सम्यक्त्वमूल बारह व्रतकी टीप,, में मुंहपात्ति बांधेनकावाक्य ढूंढियोंने नवीन बनालियाहै इस बातका निर्णय इसी ग्रंथ में पहिले छपचुकाहै वैसेही इस रासमें भी यह वाक्य नवीन वनालियाहै, इसलिये इस वाक्यसे हमेशा मुंहपात्ति बांधनेका कभी सावित नहीं हो सकता।

१४३. ढूंढियोंकी वे अकलका नमूना देखिये—ढूंढिये कहतेहैं कि "हरिवलमच्छी " के रासमें मुंहपात्ति वांधनेका लिखाहै, उसके अनुसार हमलोग मुंहपत्ति बाँधतेहैं, ऐसा कहतेहैं, लिखतेहैं, अपने पुस्तकोंमें, छपवातेहैं और अपनी सच्चाईकी बडी बहादुरी समझतेहैं। अब यहाँ पर विचार करना चाहिये कि—ढूंढिये इस रासके प्रमाणसे हमेशा मुंहपत्ति

बाँधना मानतेहैं सो यह रास विक्रम संवत् १८१० में 'लब्धिविजयजी' ने बनायाहै. जिससे १८१० के पीछे अभी थोडे कालसे मुंहपत्ति बाँधने-का नया मत चलनेका ढूंढियोंके कथनेसेही ठहरताहै, इसलिये ढूंढिये अपने मतको प्राचीन कहतेहैं सो कभी नहीं बन सकता देखो—पिताके पहलेही पुत्र पैदा होनेका मान लेना वे अकल समझी जातीहै. वैसेही १८१० में बनाये हुए रासके प्रमाणको बतलाकर अपनी बातकी प्राचीनता मानना यहभी बे अकलही समझी जाती है।

१४४. फिरभी ढूंढियोंकी माया प्रपंचका नमूना देखिये—'भुवन भानुकेवलि' के चरित्रमें और 'हरिबलमच्छी' के चरित्रमें जिनमन्दिरमें जिनप्रतिमा माननेका लिखाहै. उसके अनुसार 'भुवनभानु केवली' के रासमें उदयरत्नजीने और 'हरिबलमच्छी' के रासमें 'लब्धिविजयजी' ने खुलासा पूर्वक जिनप्रतिमा माननेका लिखाहै उस सत्य सत्य बातकोतो ढूंढिये मानते नहीं और दोनों महाराजोंने दोनों रासोंमें हमेशा मुंहपत्ति बाँधनेका नहीं लिखा तोभी भुवनभानुकेवलिके रासके वाक्यका उलटा अर्थ करके तथा हरिबलमच्छीके रासका छापा दोष वाला नवीन बनावटी वाक्य को आगे करके हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखनेका आग्रह करतेहैं और भोले जीवोंको भ्रममें डालकरके उनमार्गमें स्थापन करतेहैं यहीढूंढियोंकी माया प्रपंचताहै. इसलिये किसीभी आत्मार्थी भव्यजीवोंको ऐसे प्रपंचमें फँसना उचितनहीं हैं।

१४५. फिरभी देखिये—जैनशासनमें श्रावकको जिनपूजा करने का अधिकारहै ढूंढियेलोग इसबातको मानते नहीं और सर्व शास्त्रोंके विरुद्ध होकर ढूंढिये हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखतेहैं सो इसबातको जिन पूजाके मानने वाले संवेगी साधु—श्रावक ढूंढियोंकी हमेशा मुंहपत्ति बांधना सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्ध होनेसे मनवचन-कायासे कभी अच्छी समझते नहीं, स्वीकार करते भी नहीं इसलिये संवेगी साधुओंके बनाये शास्त्रोंमें उत्सूत्र प्ररूपणारूप हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका—उल्लेख कभी नहीं होसक्ता. यह युक्तियुक्त प्रत्यक्ष प्रमाणहै. जैसे-जनोई धारण करने वाला शुद्ध ब्राह्मण होकर महजीदमें नवाज पढनेको जानेका व बकरीईदमें गौ हत्या करनेका हिंसारूप कर्म अपने बनाये धर्म शास्त्रमें अपने मतवालों

के लिये कभी नहीं लिखसक्ता. तैसेही-उदयरत्नजी और लब्धिविजयजी यह दोनों महाराज हाथमें मुंहपत्ति रखनेवाले थे इसलिये सर्वथा जिनाज्ञा विरूद्ध होकर उत्सूत्र प्ररूपणारूप अनंत संसार बढानेवाला भावहिंसाका हेतुभूत हमेशा मुंहपत्ति बन्धी रखनेका कथन अपने बनाये "भुवनभानुके वलिके रास" में और "हरिबलमच्छीके रास" में कभी नहीं लिख सक्ते. इसलिये इनदोनों महाराजोंके नामसे दोनोंरासोंके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ढूंढियेलोग आग्रह करतेहैं सो सर्वथा झूठ होनेसे ढूंढियोकी बडी अज्ञानताहै।

---

१४६. "शतपदी" में हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका लिखाहै, ऐसा ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठहै, देखो 'शतपदी' भाषाँतरके छपेहुए पृष्ठ ८६ में ऐसा लेखहैः—

"रजोहरण, मोमती तथा पोछणुं पोताथी बहु छेटे राखववां नहीं" इसलेखमें रजोहरणकी तरह मुंहपत्तिभी अपनेसे दूर न रखनेका कहाहै जैसे-रजोहरण नजदीक होवे तो पूजने व प्रमार्जने वगैरह जीवदयाके लिये जलदी उपयोगमें आसके. वैसेही मुंहपत्तिभी नजदीक हो तो बोलते समय मुंहआगे रखनेमें आवे तो मुंहमें मक्षी, मच्छर, सचित्तजलके बिंदु व धूल वगैरह न गिरने पावे तथा छींक करते समय नाक—मुंहकी यत्ना करनेमें आवे इसलिये हमेशा पासमें रखना चाहिये ऐसा 'शतपदी' कारका कहनाहै शतपदीके करने वाले भी हाथमें मुंहपत्ति रखने वालेथे और शतपदीमें किसी जगहभी हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका नहीं लिखा, इसलिये शतपदीके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बाँधनेका ठहराने वाले ढूंढिये प्रत्यक्ष-झूठ बोलकर भोलेजीवोंको उन्मार्गमें डालतेहैं।

---

१४७. श्रीमालपुराणके नामसे हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका ढूंढिये कहतेहैं सो भी प्रत्यक्ष मिथ्याहै. क्योंकि देखो—'श्रीमालपुराण' के ७९ वें अध्याय में ऐसा पाठहै "दधानो मुमतिंमुखे, बिभ्राणो दंडकं करे ॥ शिरसो मुंडन कृत्वा, कुक्षौच कुञ्चिका दधन ॥३३॥" इस श्लोकमें मुंहपर मुंहपत्ति रखना, हाथमें दंडा रखना व बगलमें रजोहरण रखना कहाहै, परंतु मुंहपर हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेको नहींलिखा, जिसपरभी ढूंढिये बंधी रखनेका ठहरातेहैं, सो उन्होंकी बडी अज्ञानताहै क्योंकि उ-

परके श्लोकमें साधु तीनों वस्तुओंको धारण करने वाले लिखाहैं परन्तु बाँधने वाला नहींलिखा, इससे बांधनेका नहीं ठहरसकता. यदि मुंहपत्ति हमेशा बांधनेका ठहराओगे तो मुंहपत्तिकी तरह ओघा और दन्डाभी हमेशा बांधनेका ठहर जावेगा और ओघा व दन्डा तो ढूंढियेभी हमेशा बांधनेका नहींमानते, इसलिये धारण करन शब्दसे जैसे ओघा व दन्डा कामपडे तब धारण करनमें आताहै, तैसेही मुंहपत्तिभी बोलनेका काम पड़े तब मुंहआगे धारण करनेमें आतीहै उसको बांधनेका ठहराना यही ढूंढियोंकी बडी अज्ञानताहै।

१४८. ऊपरके श्लोकमें हाथमें दंडा धारण करनेका लिखाहैं, परन्तु ढूंढिये साधु दन्डा रखते नहीं और रखने वालोंकी निंदा करतेहैं, इससेभी ढूंढकमत अभी थोडे समयसे नवीन चलाहै, ऐसा ऊपरके लेखसे साबित होताहै, यह बातभी सत्यहै, ढूंढियोंकी उत्पत्ति २५० वर्षोंसें लवजीसे हुईहै. और ढूंढियेलोग श्रीमालपुराणके नामसे मुंहपत्ति बंधी रखनेका कहतेहै, परन्तु श्रीमालपुराणका पूरा श्लोक लिखकर उसका सच्चाअर्थ कर सकते नहीं, पुस्तकोंमें लिखकर छपवा सकतेभी नहीं और सभामेंभी श्रीमालपुराणका श्लोक बतला सकते नहीं, क्योंकि श्लोकका सच्चा अर्थकरें व सभामें लाकर बतलावें तो हमेशा मुंहबंधा रखनेका अपना झूठापक्ष छोडनापड़े और हाथमें दन्डा धारण करनेका स्वीकार करनापडे, अपनी मायाचारीकी पोल खुलजावे. इसलिये श्रीमालपुराणका श्लोक लिखकर उसका सच्चा अर्थ करसकतेनहीं व्यर्थही श्रीमालपुराणके नामसे मायाचारीसे भोलेलोगोंमें ठगबाजी फैलातेहैं इसलिये यह लोग सच्चे जैनीनहींहैं, किन्तु जैनशासनमें भोलेलोगोंको ठगनेवाले धर्मठगहैं. ऐसे पाखंडियोंका संग छोड़नाही हितकारीहै।

---

१४९. "शिवपुराण"की ज्ञान संहिताके २१ वें अध्यायके ३ और २५ वें श्लोकके नामसे ढूंढियेलोग हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखनेका ठहरातेहैं सोभी प्रत्यक्ष झूठहै, देखिये ३ और २५ वां श्लोकः—"वस्त्रयुक्तंतथाहस्तं, क्षिप्यमाणं मुखेसदा ॥ धर्मेतिव्याहरंतं, नमस्कृत्यस्थितंहरे ॥३॥" तथा— "हस्तेपात्र दधानश्च, तुंडेवस्त्रस्य धारकाः ॥ मलिनान्येय वासांसि, धारियंतोऽल्प भाषिणः ॥२५॥" याने—हाथमेंवस्त्र (मुंहपत्ति) लिये तथा जब २ बोलनेका कामपडे तब २ हमेशा मुखपर वस्त्र (मुंहपत्ति) रखनेवा-

ला व धर्मलाभ ऐसा कहता हुआ नमस्कार करके हरिके सामने खड़ाहुआ ॥ ३ ॥ और हाथ में पात्र मुंहपरवस्त्र (मुंहपत्ति) व मलिन वस्त्र धारण करनेवाले तथा थोड़ा बोलने वाले ॥ २५ ॥ इन दोनो श्लोकों में हमेशा मुंहपर वस्त्र (मुंहपत्ति) बाँधनेका नहीं लिखा, किंतु हाथमें रखनेका लिखा है और जब बोलने का काम पड़े तब मुंहपर धारण करना; याने रखना बतलाया है इसलिये ढूंढिये हमेशा बाँधने का ठहराते हैं सो प्रत्यक्षही झूठ है।

१५०. ढूंढिये लोग अपनी पुस्तकों में ऊपर के तीसरे श्लोक को लिखकर "मुंहपत्ति करके ढकते हुये सदा मुख को तथा किसी कारण मुंहपत्ति को अलग करें तो हाथ मुंह आगे करले परंतु उघाडे मुंह न रहे" ऐसा मन कल्पित अर्थ करके हमेशा मुह बंधा रखने का ठहराते हैं, इस को देख कर अन्य दर्शनीय मध्यस्थ विद्वान् लोक ढूढियों की अज्ञानता की हांसी करते हैं, क्योंकि जब २ बोलने का काम पड़े तब २ हमेशा मुंहपत्ति से मुंहढक के बोलना यह तो हम भी मानते हैं, परंतु बिना बोले भी हमेशा मुंह बंध रखना यही ढूढियों की अन समझ है।

१५१. पुराणों की गप्प और ढूंढियों का मिथ्या अभिमान का नमूना देखिये- ढूंढिये कहते हैं कि-शिवपुराण, श्रीमाल पुराणादिको बनाये अनुमान पांच हजार (५०००) वर्ष हो गये हैं, इन पुराणों के कथन मुजब ही हम लोग हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखते हैं यह भी ढूंढियों का कहना प्रत्यक्ष झूठ है, क्योंकि यह पुराण अनुमान पांच सौ वर्ष के बने हुऐ मालूम होते हैं. देखिये—श्रीमाल पुराण के ७३ वें अध्याय में गौरि गौतम को कहती है कि—" तपो गच्छस्व भो पुत्र, वीतरागः स्मरणकुरु॥ तपगच्छं च ते लोका। वदिष्यन्ति तदा सुतः॥ २५॥ " याने— हे पुत्र तू तपस्या करने को वन में जा, वीतराग का स्मरण कर तेरे को तपस्या कर ता देखकर लोग तेरा तप गच्छ कहने लगे गें। ऐसे ही शिवपुराण, की ज्ञान संहिता के २१ वें अध्याय के २८ वें श्लोक में "आदि रूप तुमारा नाम है, पूज्य होने से तुम पूज्य भी कहला वोगे" यह कथन है। अब विवेक बुद्धिवालों को मध्यस्थ दृष्टि से विचार करना चाहिये, कि— जैन शासन में चौवीश में तीर्थंकर श्रीमहावीर स्वामी के मोक्ष पधारे बाद श्री गौतम स्वामी मोक्ष गये हैं उन्हों को अनुमान

ढाई हजार (२४५०) वर्ष हो गये हैं सो गौतम स्वामी के तपस्या करने से तपगच्छ नाम नहीं हुआ किंतु भगवान् की परंपरा में ४४ वें पाटपर 'बड़गच्छ' में श्री जगचंद्रसूरिजी आचार्य हुए थे सो शिथिलाचारी चैत्यवासी हो गये थे, परंतु पुण्य के उदय से वैराग्य आने से शुद्ध संयमी, त्यागी होकर विचरने लगे. वनादि में भी रहने लगे, बहुत तपस्या भी करने लगे, बडे नामी हुए. तब राणाजी ने इन्हों को बहुत तपस्या करते हुए देखकर सम्वत् १२८५ में तपा पददिया, तब से इन्हों की परंपरा वाले तपगच्छ के कहलाये हैं और अनुमान संवत् १५०० में कई गच्छवाले आचार्य प्रमादी परिग्रहधारी हो गये थे सो पालखी आदि वाहनों में बैठने लगे, पैंशा लेने लगे, तब लोग उन्हों को श्री पूज्य कहने लगे. यह इतिहासिक बात प्रसिद्ध ही है यही पूज्यनाम तथा तपस्या करने से तपगच्छ कहलाने की बात पुराणों में लिखी है यह तपगच्छ नाम सं० १३०० में प्रसिद्ध हुआ है, इससे सं० १३०० के बाद सं० १४०० या १५०० में पुराण रचे गये ठहराते हैं, इसलिये पुराणों को ५००० वर्ष के प्राचीन ठहराना यह भी ढूंढियों का कथन प्रत्यक्ष झूठ है और ऐसे झूठे प्रमाणोंको आगे करके अपनी प्राचीनताका अभिमान करना भी व्यर्थ है।

१५२. फिरभी देखिये इसी शिवपुराण की ज्ञान संहिताके २१ वें अध्यायके ३ और २६ वें श्लोकमें जैनमुनिको धर्मलाभ कहनेका लिखाहै इसलिये शिवपुराणके प्रमाणको माननेवाले सर्व ढूंढियोंको धर्मलाभ कहनेका मान्यकरना योग्यहै और श्रीमालपुराणके ७३ वें अध्यायके ३३ वें श्लोकका प्रमाण ढूंढिये बतलातेहैं इसी श्लोकमें जैनसाधुको हाथमें दंडा धारण करनेका लिखाहै इसीलिये सर्वढूंढिये साधुओंको इसीश्लोकके कथन मुजब हाथमें दंडा अवश्यमेव धारण करना चाहिये. जिसके वदले दन्डा धारण करने वालोंको दंडी २ कहकर निंदा करतेहैं, यही वड़ी अज्ञानताहै। जैनसिद्धांतोंमें साधुको दन्डा रखनेका किस किस आगमोंमें लिखाहै व दंडा रखनेसे क्या क्या लाभ होतेहैं उसके विषयमें आगे लिखनेमें आवेगा। और शिवपुराण वगैरहके रचनेवालोंने जैनसिद्धांतोंकी बातोंको समझे विना व पूरा निर्णय किये विना अपनी अज्ञानतासे जैनशासनकी निंदा करनेके लिये मनकल्पित झूंठी झूंठी बातें लिखकर अपनी धर्मद्वेष बुद्धिका खूब परिचय बतलायाहै, ऐसे धर्मद्वे-

षियोंके वचनोंको आगे करके अपनी सच्चाईका घमंड करना यही ढूंढि-योंकी पक्षांध निर्विवेकताहै।

---

१५२. ढूंढिये कहतेहैं कि पंजाब देशमें 'नाभा' शहरमें मुंहपत्ति-की चर्चा हुईथी वहाँपर शिवपुराणके प्रमाणसे मुंहपत्ति बाँधना विद्वानोंने ठहरायाहै, यहभी ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठहै, क्योंकि देखो– नाभाकी चर्चामें जो विद्वान्लोगोंको मध्यस्थ बनायेथे उन्होंने जो फैसलादिया है सो इसी पुस्तककी आदिमें इन्दौरकी चर्चाके विज्ञापन नम्बर पांचवेंमें चर्चा पृष्ठ १४-१५-१६में छप चुकाहै, सो वहांसे देख लेना. उन्हीं विद्वानोंने शिवपुराणके लेखसे भी हमेशा मुंहपत्ति बांधना नहीं ठहराया, किन्तु जबजब बोलनेका काम पडे तबतब मुंहआगे वस्त्र (मुंहपत्ति) रखकर बोलना सिद्ध कियाहै इसलिये मुंहपत्ति बांधनेका विद्वानोंने नाभाकी चर्चामें ठहरायाहै, ऐसा ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूंठहै। फिरभी देखो नाभाकी चर्चामें खास ढूंढियोंने ही अपनी हार स्वीकारकी है 'मिथ्यात्व निकंदन भास्कर' नामा ढूंढियोंकी पुस्तकके पृष्ठ २२ वेंमें लिखाहै, कि—"पंडितलोग अर्थका अनर्थ कर डालतेहैं, इसवास्ते पंडितोंके पास अर्थ करवानेकी कोई जरूरत नहींहै, सबब 'नाभा' आदि स्थानोंमें और कई जगहपर आगे यह बनाव बन गयेहैं" ढूंढियोंके इस लेखका आशय यहीहै कि 'नाभा' आदि बहुत जगह पंडित लोगोंने हमारी बातको झूंठी ठहराईहै, तोभी अपना बचाव करनेके लिये अर्थका अनर्थ कर डालनेका पन्डितलोगोंके उपर झूंठा आरोप रखतेहैं, यहभी ढूंढियोंकी बडीभूलहै क्योंकि जो शिवपुराणके नामसे विद्वान्लोग हमेशा मुंहबंधा रखनेका ठहराते तो ढूंढिये लोग विद्वानोंके उपर बहुत खुश होते और कहते कि विद्वान लोगोंने अच्छा अर्थ कियाहै, परन्तु विद्वानोंने ऐसा नहीं किया और हमेशा मुंह बांधना निषेध किया व बोलती वख्त मुंहआगे वस्त्र रखकर यत्नासे बोलनेका ठहराया इसलिये अर्थका अनर्थ कर डालनेका विद्वानोंपर झूंठा आरोप रखतेहैं, सो सर्वथा अनुचितहै और अगर कोई विद्वान ढूंढियोंको खुश रखनेके लिये ढूंढियोंकी मनसा माफीक हमेशा मुंह बांधनेका कहे तोभी न्यायसे कभी नहीं बन सकता क्योंकि देखो "हस्ते पात्र दधानश्च, तुंडे वस्त्रस्य धारकः" इस वाक्यसे हाथमें पात्र व मुखपर वस्त्र धारण करनेका समझ कर हमेशा मुख

पर वस्त्र बाँधनेका मानलेना यह सर्वथा अनसमझहै, क्योंकि इस वाक्य का सच्चा अर्थ यहीहै कि हाथमें पात्र रखनेका कहनेसे जैसे आहारादि लेनेको जानेका प्रयोजन होवे तब हाथमें पात्र लिया जाताहै परन्तु चलते, फिरते, सोते, बैठते, स्वाध्याय करते, ध्यानकरते, व्याख्यान बांचते हरसमय बिना प्रयोजनभी हाथमें पात्र रखना कभी नहीं ठहर सकता जिसपरभी अगर हरसमय बिना प्रयोजन हाथमें पात्रलियेफिरे तो उसको लोग निर्विवेकी कहें. वैसेही मुखपर वस्त्र कहनेसे बोलनेका प्रयोजन होवे तब मुखकी यत्नाके लिये वस्त्र रखनेका समजना चाहिये. परन्तु हमेशाके लिये नहीं जिसपरभी हमेशा मुंहबांधनेका ठहराने वालोंको उपरके न्यायसे निर्विवेकी समझने चाहिये।

---

१५४. "साधुविधिप्रकाश" में हमेशा मुंहपत्ति बाँधनेका लिखाहै ऐसा ढूंढियों का कहना प्रत्यक्ष झूंठहै, देखो "साधुविधिप्रकाश"के प्रथम पृष्ठमें "मुखवस्त्रिकाँ मुखेदत्त्वा स्पष्ट चतुर्विंशतिस्तवमुक्त्वा क्षमाश्रमण पूर्वं इच्छाकारेण संदिस्सह भगवन् चैत्यवंदनकरुं इति वदति "इस लेखमें तथा दूसरे पृष्ठमें "मुखे करसंपुटेन मुखवस्त्रिकाँ धृत्वा सव्वस्स विराइय इत्यादि सूत्रेण सकलरात्रिकातिचार मिथ्यादुष्कृतं ददाति "तथा "रजोहरणंमुखवस्त्रिकाँच कराभ्याँ मुखाग्रे धृत्वा "और पृष्ठ ३ में "बाहुयुगं प्रतिलिख्यमुखवस्त्रिकां वामहस्तेन मुखे धृत्त्वा दक्षिण हस्तने गुरुचरणौ संस्पृस्य नम्रःसन् जंकिंचि अप्पतियं इत्यादि मिच्छामिदुक्कडं इत्यंतं भणति" इत्यादि रात्रि- दैवसिक–पाक्षिक आदि प्रतिक्रमणकी विधिमें चैत्यवंदन गुरुवंदनकी विधिमें व अन्य सर्व क्रिया करने संबंधी जगह जगह मुंहपत्ति हाथमें रखनेके लिये अनुमान १५-२० पाठ "साधुविधि प्रकाश" में प्रत्यक्षही मौजूदहैं। इसलिये साधुविधिप्रकाशके नामसे ढूंढियेलोग व्यर्थही ठगबाजी फैलातेहैं। सो किसीभी आत्मार्थी भव्यजीवों को ढूंढियोंकी ऐसी मिथ्याजालमें गिरकर जिनाज्ञाकी विराधना करना योग्य नहींहै।

१५५. फिरभी ढूंढियोंकी मायाचारीका नमूना देखिये "साधुविधिप्रकाश" के पृष्ठ १६ वेमे विस्तार पूर्वक पाक्षिक प्रतिक्रमण विधिमें मुंहपत्ति हाथमें रखनेका खुलासा लिखाहै उसीका सारांशकी "मुंहपत्ति वंदणयं, संबुद्धाखामणंतहालोए" वंदणं पत्तेअखामणाणि,वंदणयंसुत्तं च

॥ १ ॥ सुत्तं अब्भुट्ठाणं, उसग्गो पोति वंदणं चेव ॥ पज्जंते खामणय, तह चउत्थोभ वंदणय ॥ २ ॥ ,, यह दो गाथा १७ वां पृष्ठमें बतलाईहैं इनमें पाक्षिक संबंधी पहिले मुंहपात्तिकी पडिलेहण करनी फिर २ वांदणादेने पीछे रुबुद्धा क्षामणा करने फिर पाक्षिकअतिचारोंकी आलोचना करनी इत्यादि उपरकी गाथाओंमें लिखाहै परन्तु मुंहपात्ति बांधना किसी जगह नहींलिखा तोभी ऊपरकी गाथाओंका भावार्थ समझे विना साधुविधिप्रकाशके पृष्ठ १७ वेंके नामसे हमेशा मुंहपात्ति बांधना ढूंढिये लोग ठहरातेहैं सो यहभी बडी मायाचारीहै और इसी ग्रंथको बनानेवाले श्रीक्षमाकल्याणकजी महाराज तथा इसग्रंथको छपवानेका उपदेश देनेवाला मैंभी (मणिसागर) हमेशा मुंहपात्ति हाथमें रखने वालाहूं और ढूंढियोंकी मुंहबांधनेकी झूठी प्रपंचताका निषेध करने वालाहूं इसलिये मेरे उपदेशसे छपीहुई साधुविधिप्रकाशके नामसे हमेशा मुंहबांधनेकी झूठी मायाचारी फैलाना योग्य नहींहै ।

---

१५६. "उत्तराध्ययन" सूत्रके १२ वें अध्ययनमें "हरिकेशी" मुनिका अधिकार आयाहै सो "हरिकेशी" मुनि ब्राह्मणोंके यज्ञस्थानमें भोजनकी जगह आहार वहोरनेको गयेथे वहांपर निर्ममत्वी तपस्वी मुनिमहाराजको मलीनशरीर फटेकपड़े खराबरूप वगैरह अनेक तरहके निंदारूप अनुचित शब्द मिथ्यात्वके उदयसे उन्ह अज्ञानी ब्राह्मणोंने कहेथे परन्तु "यह मुंहबंधा" कौन आयाहै इस प्रकार मुंहबांधनेकी निंदा नहीं कीथी. इससेभी प्राचीन कालके मुनियोंके मुंहबंधे हुए कभी साबित नहीं होसकते. अगर प्राचीन कालके मुनियोंके मुंहबंधेहुए होते तो उस समय वह ब्राह्मण हरिकेशी मुनिको मुंहबंधा अवश्य कहते परन्तु कहा नहीं इसलिये ढूंढियोंने जैनशास्त्र विरुद्ध नवीन मुंहबांधनेका झूठा ढोंग चलायाहै ।

---

१५७. "रायप्रश्नीय" सूत्रमें 'केशीकुमार' गणधर महाराजका अधिकार आयाहै वहांपरभी अमलकंपा नगरीके ईशानकोने के वनमें 'केशीकुमार' महाराजको मनुष्योंकीबडी पर्षदामें धर्मदेशना देतेहुए देखकर नास्तिक स्वभाववाला प्रदेशी राजाने मनमें विचार किया कि यह मुंड कैसा रूप-लावण्य वानूहै और बडेबडे जोरसे बोलताहै सो क्या खाता होगा. इत्यादि अनेक तरहके विचार किये परन्तु 'यह मुंह-

बांधकर क्या बोलताहै, ऐसा विचार नहीं किया. देखो- जैसे अभी कोईभी नवीन विदेशी आदमीने ढूंढिये साधुओंको कभी न देखे होवें और अकस्मात् देख लेवे तो देखतेही "यह मुंहबंधा कौनहै" ऐसा प्रथमही अपने मनमें विचार करने लगताहै व लोगोंके सामने कहनेभी लगताहै और कोईभी लेखक ढूंढिये साधुओंका रूप व कर्त्तव्यका उल्लेख करताहै तो मुंहबांधनेका विशेषण प्रथमही लिखताहै और मिथ्यात्वी अनार्यलोग मुंहबंधे मुंहबंधे कहतेहैं। इसीतरहसे अगर प्राचीन कालमें मुनियोंके मुंहबंधे हुये होते तो केशीकुमार महाराजको देखतेही प्रदेशीराजा यह मुंहबांधे क्या बोलताहै ऐसा विचार अवश्य करता परन्तु कियानहीं व सारथीकोभी कहकर बतलाया नहीं। औरभी इसी तरहसे अनाथी आदिहजारों मुनियोंके अधिकार अनेक आगमोंमें आये हैं, वहां कहींभी हमेशा मुंहबंधा रखनेका विशेषण किसी आगममें किसीमुनिके लिये नहीं आया। और निशीथादि आगमोंमें मुनियोंके मुंह-खुले रहनेका प्रकटही अधिकारहै इसलिये इन आगमप्रमाण व प्रत्यक्ष युक्तियुक्त प्रमाणसेभी ढूंढियोंका मुंहबंधा रखना नया व झूठा ढोंग सिद्ध होताहै।

---

१५८ उपासकदशादि सूत्रोंमें आनंद—कामदेवादि बहुत श्रावकोंके अधिकार आयेहैं उसमें किसी जगह किसीभी श्रावकके सामायिकादिधर्मकार्यमें मुंहपत्तिसे मुंहबांधने संबन्धी कोईभी पाठ नहीं आया और कामदेवादि बहुत श्रावक प्रतिमा धारण करके रात्रि को पौषधमें काउसग्ग ध्यानमें खड़े रहने वालेथे, उन्होंको धर्मध्यानसे चलायमान करनेके लिये देवोंने अनेक तरहके उपसर्ग किये अनेक तरहके बचनभी बोले परंतु मुंहबाधनेका आक्षेपरूप बचन नहीं कहा, इसलिये ढूंढिये साधू गृहस्थ लोगोंको सामायिकादि धर्मकार्योंमें मुंह बंधवातेहैं सोभी सर्वथा जिन आज्ञा विरुद्धहै औरभी इसीतरहसे बहुत साधु मुनिराजोंको देवोंने अनेक तरहके उपसग्ग कियेहैं, उन्होंका अधिकार सूत्रोंमें जगहजगह आयाहै परंतु वहांभी मुंहबांधनेका आक्षेप कहींभी देखनेमें नहीं आया, इसलियेभी ढूंढियोंका मुंहबांधना प्रत्यक्ष नया ढोंगहै।

(देखो ढूंढियोंकी उत्सूत्र प्ररूपणाका प्रबल नमूना)

१५९. ढूंढिये कहतेहैं कि " तीजे भव मुक्ति हुवे , लिये मुं-

हपत्ति बांध ॥ जैन आराधक लिंगहे , समझे नहीं मदांध ” ऐसे ऐसे वाक्य “मिथ्यात्वनिकंदनभास्कर” नामा पुस्तकमें मुंहपत्ति बत्रीसीमें लिखकर ढूंढियोंने खूब मिथ्यात्व फैलायाहै. अभव्य जीवभी साधुपना लेते हैं ढूंढियोंके कथन मुजब मुंहपत्ति बांधतेहैं; तोभी उन्होंकी मुक्ति कभी नहींहोती, अगर ढूंढियोंके कथन मुजब मुंहपत्ति बांधनेसेही तीसरे भवमें मुक्ति होतीहोतो आर्यअनार्य सर्वमनुष्य और पशु पक्षी आदिभी मुंहपत्ति बांधनेसे तीसरे भवमें सब मोक्षचले जावेंगे, तप-संयमादि धर्म कार्य करनेका कष्ट मिट जावेगा. ढूंढियोंका बड़ा उपकार मानेंगे तथा ढूंढियोंके मतमेंभी जो कोई क्रोधी-मानी-मायी-लोभी-प्रपंची-व्यभिचारी कुटिल मतिवाले ढोंगीहैं वोभी मुंहपत्ति बांधनेसे तीसरे भवमें मोक्षचले जावेंगे. ढूंढियोंने मुंहपत्ति बंधवाकर मोक्ष पहुंचानेका ठेका लिया होगा इसलिये ऐसे कहते हैं. बड़े अफसोसकी बातहै कि ज्ञानी महाराजने तो दान-शील-तप-जप-स्वाध्याय-ध्यानादि शुद्ध धर्मकार्यकरनेसे रागद्वेषादि दोषोंके नाश होनेसे मोक्ष बतलायाहै और ढूंढिलोग मुंहपत्ति बांधनेसे तीसरे भवमें मोक्ष होना बतलातेहैं यही ढूंढियोंकी बड़ी प्रवल उत्सूत्र प्ररूपणाहै ।

१६०. देखिये सोमिल तापसकी तीसरे भवमें मुक्ति होना देखकर अगर ढूंढियोंनेभी मुंहबांधनेसे तीसरे भवमें अपनी मुक्ति होना मानलिया होतो यहभी ढूंढियोंका बड़ा भ्रमहै, क्योंकि सोमिल तापसने मुंहबांधना वगैरह अपना मिथ्यात्वी लिंग छोड़कर शुद्ध श्रावक व्रत पालेथे, उससे मुक्ति गामीहुआहै, परंतु मुंह बांधनेसे नहीं इसी तरहसे ढूंढियोंकोभी अगर मुक्तिगामी होनेकी चाहना हो तो सोमिल तापसकी तरह हमेशा मुंह बांधनेका मिथ्यात्वी लिंगकों छोड़ें और शुद्ध जैनलिंग अंगीकार करके शुद्ध संयम पालें तो तीसरे भवमें मोक्ष होसके अन्यथा नहीं. इतने पर भी हमेशा मुंहबांधनेके मिथ्यात्वी लिंगको न छोड़ेंगे व हठाग्रहकरेंगे तो तीसरे भवमें मुक्ति होना तो दूररहा किंतु जिनाज्ञाके विराधक होकर संसार परिभ्रमणका कर्म बांधेंगे, उससे चारगतिके अनंत दुःख भोगने पड़ेंगे। मुंह बांधकर हमेशा फिरते रहना यह जैन शासनका आराधक लिंग नहीं है, किंतु दिशापोषण करने वाले तापसोंका मिथ्यात्वी लिंगहै, इसबातका विशेष खुलासा पहिले “निरयावली” सूत्रके पाठकी समी-

-क्षामें लिख आये हैं इसलिये मोक्षभिलाषी सज्जन पुरषों को सोमिल तापसकी तरह ऐसे मिथ्यात्वी लिंगका जलदीसे त्याग करना योग्यहै।

(अब देखो ढूंढियोंकी कुयुक्तियोंका समाधान)

१६१. ढूंढियें कहतेहैं कि-ज्ञाताजी तथा भगवतीजी आदि आगमोंमें मेघकुमार, धर्मरुचिअणगार, खंधकजीमुनि आदि मुनियोंके संत्थारा करनेका अधिकार आयाहै, वहांपर संत्थारा करनेवाले मुनियोंने भगवान्की तरफ दोनोंहाथ जोडकर मस्तकसेअंजलि करके नमुत्थुणं कहाहै. सो अगर मुंहपर मुंहपत्ति बंधीहुई न होती तो दोनोंहाथ ऊंचेकरके नमुत्थुणं करनेके समय मुंहकी यत्ना नहीं होसकती, इसलिये मुंहपर मुंहपत्ति बंधीहुई होनी चाहिये. यहभी ढूंढियोंका कथन प्रत्यक्ष झूठहै, क्योंकि देखो—संत्थारा करने वाले मुनियोंने भूमिकीप्रमार्जनाकी, डाभका संत्थारा बिछाया, पूर्व दिशी तरफ बैठे, दोनोंहाथ जोडे, मस्तकपर अंजलि किया और नमुत्थुणं किया इत्यादि सर्व कार्य एक साथ नहीं किये किंतु अनुक्रमसे एक पीछे दूसरा कार्य करनेमें कोई बाधा नहीं होसकती. इसलिये पहिले दोनोंहाथ जोडकर मस्तकसे अंजलि की फिर उन्हीं दोनों हाथोंसे मुंहपत्तिसे मुंहकी यत्ना करके नमुत्थुणं कहा ऐसे करनेसे मस्तकमें अंजलिभी होसकतीहै और मुंहकी यत्नासे नमुत्थुणं भी कर सकतेहैं इससे मुंहपत्ति बंधीहुई कभी नहीं ठहर सकती।

१६२. फिरभी देखिये जैसे तीर्थंकर भगवान्के चयवन कल्याणक समय इंद्रमहाराज देवलोकमें रहे हुए ही उत्तरासन करके भगवान्की दिशी तरफ जाकर भगवान्को मस्तक नमाकर दोनों हाथ जोड़कर मस्तकसे आवर्त करके पीछे उन्हीं दोनों हाथोंसे उत्तरासनका छेडा मुंहआगे रखकर नमुत्थुणं करतेहैं (मुंह आगे वस्त्र रखकर इंद्रमहाराज धर्मकार्यमें निरवद्य भाषा बोलें ऐसी ढूंढियोंकी मान्यताहै) इसमें इंद्र महाराजने भगवान्को दोनोंहाथ जोड़े मस्तकसे आवर्त किया और मुंहकी यत्ना करके नमुत्थुणंभी किया परन्तु इंद्र महाराजका मुंह बंधा हुआ नहींथा. ऐसेही संत्थारा करनेवाले मुनियोंनेभी पहिले दोनों हाथ जोडकर मस्तक नमाकर पीछे मुंहकी यत्ना करके नमुत्थुणं कहा है इसलिये ढूंढियोंकी तरह उन्ह मुनियोंके मुंहपर हमेशा मुंहपत्ति बंधी हुई कभी नहीं ठहर सकती।

१६३. फिरभी देखिये—साधु-साध्वी देव दर्शन करनेको मंदिरमें जातेहैं, तब तीनवार मस्तक नमाकर दोनों हाथ जोडकर मस्तक से आवर्त करके पीछे दोनों हाथोंसे मुंहपत्ति मुंहआगे रखकर चैत्य वंदन करतेहैं, यह प्रत्यक्ष प्रमाणहै इसमें साधु—साध्वियोंके मुंहपर मुंहपत्ति बंधी हुई नहींहै, इसी तरहसे संथारा करने वाले मुनियोंकेभी मुंहपर मुंहपत्ति बंधी हुई नहीं थी।

१६४. फिरभी देखो ढूंढिये हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखतेहैं सो संमूर्च्छिम असंख्य पंचेंद्रीय जीवोंकी घात करतेहैं, मिथ्यात्वियोंका कुलिंगहै और हवाके जोरसे हमेशा मुंहपत्ति हिलती रहतीहै जिससे समय समय असंख्य वायुकायके जीवोंकी हिंसा होतीहै, इत्यादि अनेक दोषहैं. ऐसे अनेक दोष वाली मुंहपत्ति बंधी रखनेका घोर तपस्वी शुद्ध उपयोगी अप्रमादी मोक्षगामी महामुनियोंको दोष लगाना यह दुर्लभ बोधियोंका कामहै।

---

१६५. ढूंढिये कहतेहैं कि जगतमें अच्छी वस्तु ढकी जातीहै और खराब वस्तु खुल्ली रहतीहै, इसलिये अच्छी वस्तुकी तरह हमभी अपने अच्छे मुंहको हमेशा ढका रखतेहैं, यहभी ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूंठहै क्योंकि देखो जगतमें अच्छी २ मिठाई, अच्छे २ फलादि मेवा, अच्छे २ वस्त्र, अच्छे २ चांदी-सोने-जौहारातके आभूषण वगैरह ग्राम-नगरादि हरएक जगह बाजारोंमें बाजारकी व शहरकी शोभारूप सजावट के साथ दुकानोंमें खुल्ले रक्खे जातेहैं और विष्टा-पेशाब-लोही (खून) वमन-पित्त-कफ आदि घृणीत वस्तुको घास-धूल-रक्षा (राखोडी) वगैरहसे सब कोई ढकतेहैं यह जगत प्रसिद्ध बातहै। और जिस मनुष्यके मुहमें रोग हुआहोवे, मसोडे फुलगये होवें दांतोंमें कीड़े पड़ेहोवे, मुंहसे दुर्गंधी आतीहोवे अथवा होठादि बिगड़ गयेहोंवे सपेद होगये होंवे, घाव पड़ा होवे या कट गयाहोवे इत्यादि कारणोंसे लोग लज्जासे मुंह बांधते हैं परन्तु अच्छे निरोगी आदमी कोईभी मुंह बाँधते नहीं। औरभी जो कोई चौर डाकू धाडापाडने वाले लुटारूं होतेहैं वो लोग अपना रूप छुपाने के लिये मुंह बांधतेहैं और मुंह—नाक—हाथ वगैरह दर्शनीय विभाग सबलोग अपना खुल्ला रखतेहैं तथा गुदा—लिंग—योनि वगैरह लज्जनीय विभाग ढकतेहैं इसी तरहसे अच्छी २ दर्शनीय वस्तु सर्व जगतमें

खुला रहती है और निंदनीय लज्जनीय घृणीत खराब वस्तु सर्व जगह ढकी जाती हैं, इसबात में सर्व जगत भी शाक्षी है इसलिये ढूंढियोंकोभी अच्छी २ वस्तुओंकी तरह अपना अच्छा मुंह खुला रखना योग्यहै परंतु गुदा-लिंग-योनिकी तरह तथा चौर डाकु-धाडापाडने वालों की तरह अपना मुंह बांधना योग्य नहींहै और "निंदक मुख अदिट्ठ" इस प्रकारकी जगत की कहावत मुजब ढूंढियों ने भी जिनप्रतिमाकी, जैनागमोंकी, जैनसंघकी निंदा करके लोक विरुद्ध मलेच्छ कार्य करते हुए सर्वज्ञ शासनकी जगतमें खूब निंदा करवाई है, इसलिये ढूंढियोंके कर्तव्यके अनुसार जगतसे अपना मुंह छुपानेके लिये हमेशा मुंह बांधनेकी दुर बुद्धि हुईहै अन्यथा ऐसी दुरबुद्धि कभी नहीं होती।

---

१६६ ढूंढिये कहतेहैं कि शरीरमें किसी तरहका घाव पड़ा होवे उसीपर पट्टी बंधी होवे उस पट्टीमें शरीरकी गरमीसे जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होसकती, वैसेही मुंहकी गरमी से बंधीहुई मुंहपत्तिमें जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होसकती, यहभी ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठहै, क्योंकि देखो- पट्टीतो चारों तरफसे खींचकर बांधी जातीहै, उसमें खुली हवा नहीं जा सकती इसलिये शरीरकी गरमीसे उस पट्टीमें जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती, परंतु वही पट्टी शरीरसे अलगहोनेसे उसमें जीवोंकीउत्पत्ति हो जातीहै और पट्टीकी तरह मुंहपत्तिको ढूंढिये लोग चारों तरफसे खींचकर नहीं बांधते, तीनों तरफसे खुली रहतीहै, उसमें हवा जाती है तथा आहारादि करनेके लिये मुंहसे अलगभी करतेहैं इसलिये थूंक की गीली मुंहपत्तिमें संमूर्च्छिम असंख्य पंचेंद्रीय जीवों की उत्पत्ति हो जातीहै, उसको बांधना असंख्य जीवोंकी घात करने वाला होनेसे महान् पापका हेतुहै. इसका विशेष खुलासा थूंकमें संमूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्तिके अधिकारमें पहिले लिख आयेहैं। और घावपर मक्खी आदि जीव बैठ कर नुकसान न करने पावें, तथा रसी लोही (खून) वगैरह घृणीत पदार्थ देखकर भोजनादि करते समय लोगों को घृणा न होने पावे, इसलिये घृणीत पदार्थ ढकनेके लिये व घावके अंदर दवाई ठहर कर जल्दीसे घाव मिटनके लिये पट्टी बांधी जातीहै परंतु घावकी तरह मुंह रोगी व घृणीत पदार्थ नहींहै इसलिये घावकी पट्टीकी तरह मुंह

बांधने का ठहराना बडी अज्ञानताहै। इतनेपरभी घृणीत धाव की तरह मुंह को भी घृणाति पदार्थ समझ कर लोक लज्जा से ढूंढियों ने मुंह बांधना मान लिया होतो उन्हों के कर्मों की गति विचित्र है।

---

१६७ ढूंढिये कहतेहैं कि- शादीमें वरराजा (वींद-दुल्हा) अपने मुंह आगे उत्तरासनका छेडा रखताहै तथा राज्य दरबारमें कईअच्छे आदमी अपने मुंहआगे रुमाल रखकर बोलतेहैं, यह प्राचीन रिवाजहै उसी मुजब हमभी मुंहपत्ति बांधतेहैं. यहभी ढूंढियोंकी प्रपंच बाजीहै क्योंकि वींद तथा राज्य दरबार में मुंह आगे वस्त्र रखतेहैं परंतु मुखकोश की तरह कोईभी अपना मुंह बांधते नहीं, वैसेही ढूंढियोंकोभी मुंहकी यत्ना करनेके लिये अपने मुंह आगे वस्त्र रखना योग्यहै, मगर बांधना योग्य नहींहै. ढूंढियें लोग-दृष्टांततो वींदका और राज्य दरबारका मुंहआगे वस्त्र रखनेका बतलातेहैं, फिर अपने मुंह बांधनेका मत जमातेहैं यही भोले जीवोंको मिथ्यात्वमें डालने की माया जाल है, आत्मार्थियोंको ऐसी मायाजाल फैलाना योग्य नहींहै।

---

१६८ ढूंढियें कहतेहैं कि 'ज्ञाताजी' सूत्रके १४ वें अध्ययनमें तेतलीपुत्र मंत्रीके अधिकारमें तेतलीपुत्र मंत्रीकी पोट्टिला नामा स्त्रीके मकानपर कोई साध्वी आहार वहोरनेको गईथी तब पोट्टिलाने साध्वी को आहार वहोरा करके पीछे अपने पति वश करनेके लिये यंत्र-मंत्रादि उपाय पूछा, तब साध्वीने दोनों कानोंमें अंगुली डालकर कहा कि हमारे को वशीकरणादि की बातोंका उपाय बतलाना तो दूर रहा परंतु ऐसी बातें सुननाभी योग्य नहींहै और धर्मके प्रताप से सर्व सुख मिलता है धर्मकरो इत्यादि धर्म का उपदेश दिया उस बख्त साध्वीके मुंहपर मुंहपत्ति बंधी हुई नहीं होती तो दोनों कानोंमें अंगुली डालकर कैसै बोलती, इसलिये मुंहपत्ति बांधना योग्यहै यहभी ढूंढियोंका कहना अज्ञानता जनक होने से प्रत्यक्षझूठहै, क्योंकि देखो-पोट्टिलाने साध्वी को पहिले आहार वहोराया और पीछे अपने पति को वश करनेका उपाय पूछा. अब यहांपर विवेकबुद्धिसे विचार करना चहिये कि-साध्वीके हाथोंमें आहारके भरे हुए पात्रोंकी झोलीहै इसलिये आहारके भरे हुए

पात्रोंवाले हाथों से दोनों कानोंमें अंगुली कभीनहीं डाल सकती। अगर ढूंढिये कहें कि पात्रे नीचे रखकर दोनों कानों में अंगुली डाली होगी, यहभी ढूंढियों का कहना झूठ है, क्योंकि आहारके भरेहुए पात्रे नीचे रखकर बातें करने से पात्रोंमें उपयोग नहीं रह सकता उससे पात्रोंमें चीटी (कीडी) आदि जीव चढ जावें अथवा बिल्ली-कुत्तादि पशु झपाटा मारकर आहार खाने लगें, पात्रे ढोल डालें, फोड डालें वगैरह अनेक दोष आवें इसलिये आहारके भरे हुए पात्रे नीचे रखकर बातें करनी साधु साध्वियों को कल्पताही नहीं इसलिये पात्रे नीचे रखकर कानोंमें अंगुली डालने का ढूंढियों का कथन प्रत्यक्ष झूठ ठहर गया और पात्रे हाथोंमें रखकर कानोंमें अंगुली डाल सकती नहीं।

१६६ फिरभी देखिये विचार करीये-बात करतेही कानों में अंगुली डाली कहोगे तोभी उससे बात सुनी नहीं जा सकती, जब बात सुनने में नआवे तो उसका जवाब देनेकी जरूरतही नहीं रहती और बात सुनने बाद कानों में अंगुली डालने का कहोगे तोभी ऐसा कभी नहीं बन सकता, पहिले संसारी कर्म बंधनकी बात सुन लेना फिर कानोंमें अंगुली डालकर पीछा जवाब देना, ऐसी बाल चेष्टा जैसी ढूंढियों की बात कोई भी बुद्धिमान कभी नहीं मान सकता। ढूंढिये बिचारों को जैनागमोंके गंभीर आशय समझ में नहीं आते इसलिये अपनी कल्पना मुजब अर्थका अनर्थ कर डालते हैं और खोटी २ कुयुक्तियें लगाकर आप डूबतेहैं तथा अपने भक्तोंकोभी डूबाते हैं। देखो जैसै-नारकी जीवोंका वैक्रिय शरीर होता है उसमें हाड मांस नहीं होते तोभी "सुयगडांग" सूत्रके पंचम अध्ययनमें नारकियों के हाड मांसादिकका छेदन भेदन परमाधामी करतेहैं, ऐसा कहाहै, सो नरककी अनंत वेदना समझाने के लिये कथन किया है, वैसेही यहांपर भी साधु-साध्वियों को यंत्र-मंत्र-तंत्र-मारण-मोहन-वशीकरणादि कर्म बंधनके हेतुकी बात सुननाभी नहीं और उसका उपाय बतलानाभी नहीं, इस प्रकार इस विषयका अत्यंत अभाव बतलाने के लिये कानों में अंगुली डालने का कहाहै, इसलिये उत्सर्ग सूत्र- अपवादसूत्र-भयसूत्र-उपदेशसूत्र- वर्णकसूत्र इत्यादि सूत्रपाठोंके गंभीर आशय को समझेविना हमेशा मुंह बांधनेका मिथ्यात्व फैलाना आत्मार्थियों को योग्य नहींहै। इतनेपरभी ढूंढिये

कानों में अंगुली डालने का हठकरेंगे तोभी देखो साध्वी के मस्तकपर चद्दर ओढीहुई होतीहै, उस चद्दर का पला गले में पडा रहताहै, सो गौचरी वहोरनेके समय उस चद्दरके पलेको मुंह आगे डाल देतीहै अथवा खंभेपर कंबल होतीहै उसको मुंहके आगे डालदेती है, उससे मुंह की यत्ना होतीहै और दोनों हाथ खुले रहतेहैं इसलिये ढूंढियोंके हठ मुजब अगर कानोंमें अंगुली डालकर बात करे तोभी उससे हमेशा मुंह पत्ति बांधना कभी साबित नहीं हो सकता ।

---

१७० ढूंढियें कहतेहैं कि जैसे साध्वीके साडा बांधनेका दोराकहीं सूत्र में नहीं लिखा तोभी साडा दोरा से बांधनेमें आताहै, वसे ही मुंह पत्तिकेभी दोरा नहीं बतलाया तोभी दोरा से बांधनेमें आतीहै, यहभी ढूंढियोंका कहना अन समझकाहै, क्योंकि देखो- साध्वी के तो योनि आदि लज्जनीय वस्तु ढकने के लिये दोरा से साडा बाँधनेमें आताहै परंतु मुंह तो योनि जैसा लज्जनीय नहीं है इसलिये लज्जनीय वस्तु ढकनेका दृष्टांत बतलाकर मुंह बांधने का दोरा सिद्धकरना बडी अज्ञानताहै ।

---

१७१ ढूंढिये कहतेहैं कि जैसे आहार शब्द से चारों प्रकार का आहार समझा जा सकताहै, वैसे ही मुंहपत्ति शब्द से दोराभी समझ लेना चाहिये । यहभी ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठहै, देखो- आहारके असणं पाणं खाईमं साईमं ऐसे चारों प्रकारके अलग अलग पाठ सूत्रोंमें मौजूदहैं, वैसेही मुंहपत्ति के दोराका पाठ किसीभी सूत्रमें नहींहै इसलिये मुंहपत्ति के साथ दोरा लगाना सूत्र विरुद्ध हठाग्रहहै और जैसे- रजोह- रण बांधनेका दोरा निशीथसूत्रके पाचवें उद्देशमें कहाहै, वैसेही मुंहपत्ति बांधने का दोरा किसी जगह कहा नहींहै परंतु सर्व शास्त्रोंमें बोलने के समय मुंहआगे मुंहपत्ति रखकर यत्नासे बोलने का कहाहै तथा कभी दुर्गंधि आदि रोकने के लिये नाक-मुंह दोनों के उपर बांधनी पडे तो त्रिकोणी करके पिछाडी गांठ लगाकर बांधने की विधि बतलायाहै, उसमें दोरे की जरूरत नहीं पडती इसलिये ढूंढियेलोग अपनी कल्पना से मुंहपत्तिके साथ दोराभी लगा देतेहैं सो सर्वथा उत्सूत्र प्ररूपणाहै और "मुहणंतगेण" पाठका अर्थ मुखवस्त्रिका होताहै इसलिये ऐसे पाठ देखकर दोरा समझलेना यहभी बडी अज्ञानताहै इस बातका विशेष

खुलासा 'ओघनिर्युक्ति' के पाठ की समीक्षा में पहिले लिख आयेहैं, वहां से समझलेना।

---

१७२ ढूंढियें कहतेहैं कि मुंहपत्ति शब्द का अर्थही हमेशा मुंहपर वांधना होताहै, मुंहपर बंधे सोही मुंहपत्ति कही जावे, इसलिये हमलोग मुंहपत्तिको हमेशा मुंहपर बाधतेहैं; यहभी ढूंढियों का कहना प्रत्यक्ष झूठहै, क्योंकि देखो- जमालि-मेघकुमारादि राजकुमारोंके दीक्षा समय लोचकरने योग्य केश रखकर बाकी के केश काटने के लिये नाइयोंने मुंह बांधकर केश काटेथे, ऐसा भगवती—ज्ञाताजी वगैरह आगमो में कहा है, वहांपर "चउपुडेणं वत्थेणं मुंह बंधेइ,, "अट्ठपडलाए पोत्तियाए मुह बंधेइ,, याने- चार पडवाले वस्त्रसे और आठ पड वाली धोतीसे मुंह बांध ऐसे कहाहै और भी बहुत लोग कारण वश उत्तरासनसे, धोतीसे, दुपट्टासे, रुमालसे व मुखकोशादि वस्त्रसे मुंह बांधतेहैं, यह जगत प्रसिद्ध बातहै, परंतु उत्तरासनादि को मुंहपत्ति नहीं कह सकते इसलिये मुंहपर बांधे सोही मुंहपत्ति कही जावे ऐसा ढूंढियों का कहना प्रत्यक्षझूठ है।

१७३ फिरभी देखिये- जसे रजको दूर करने वाला रजोहरण कहा जाता है सो रजको दूर करनेके लिये चलते-फिरते-सोते-बैठते-स्वाध्याय-ध्यान-आहार करते हर समय पैरों के बांधा नहीं जासकता किंतु जब रज दूर करने की जरूरत हो तब हाथ में रजोहरण लेकर रज दूर की जातीहै, वैसेही मुंहपत्ति कहने से हर समय मंहपर बंधी नहीं जाती, किंतु जब बोलनेका कामपडे तब हाथ में मुंहपत्ति लेकर मंहकी यत्ना करके बोला जाताहै, जिसपरभी अगर ढूंढिये बांधनेका हठ करेंगे तो रजोहरण को भी पैरों के बंधा रखना पडेगा, तथा पात्रों में हर समय रात्रि- दिन भोजन करतेही रहना पडेगा और थूंकको गीली मुंहपत्ति में असंख्य जीवों की हानि वगैरह अनेक दोष आवेंगे उसका विशेष खुलासा मुंहपत्ति हाथपत्तिके निर्णयमें पहिले लिख आयेहैं, वहांसे देखो।

---

१७४ ढूंढिये कहते हैं कि जैसे—शिव मतवालों के मुखपर तिलक शोभे, खाखी लोगों के शरीरपर भस्मशोभे, हाथ का कंकण हाथमें शोभे, पैरोंका भूषण पैरोंमें शोभे, हंस तलावपर शोभे और चंद्र आकाश में शोभे वैसेही हमारे मुंहपर बंधी हुई मुंहपत्ति भी शोभतीहै, यहभी ढूंढियों का

कथन सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्धहै, क्योकि देखो-यह उपरके सर्व कार्य अपनी अपनी शोभा रूपहैं और ढूंढिये लोगभी अपने मुखकी शोभाके लिये मुंह पत्ति वांधना स्वीकार करतेहैं, परंतु मुखकी शोभा करने वाले साधुको "निशीथ सूत्र" में प्रायश्चित्त कहा है, इसलिये मुंहपत्ति वांधने वाले ढूंढिये भी प्रायश्चित्त के अधिकारीहैं। और जैसे- होली के पर्वमें अज्ञानी लोग राजा बनकर लोगोंमें हासी का पात्र होता है, तोभी उसमें अपनी शोभा मानताहै, वैसेही- ढूंढिये लोगभी जिनाज्ञा विरुद्ध होकर हमेशा मुंह बांधने से जगतमें हांसी के पात्र होते हैं, तोभी अज्ञान दशासे अपनी शोभा समझतेहैं, जो आत्मार्थी समझदार होगा सो तो ऐसी शोभाको अवश्यही त्याग करेगा।

---

१७५ ढूंढिये कहतेहैं कि विना उपयोग उघाडे मुख वोलनेसे दोष लगे और वार वार उपयोग रहे नहीं इसलिये उघाडे मुख वोलनेसे तो हमेशा मुंहपत्ति वांधी रखना अच्छा ही है उससे कभी उघाडे मुख वोला नहीं जावे, यहभी ढूंढियों का कहना अनुचितहै क्योंकि देखो–आचारांग, दशवैकालिक, उत्तराध्ययनादि सूत्रों में साधुको सोना- वैठना- लोटना- चलना- फिरना- खडे रहना-आहार करना- भाषण करना-व्याख्यान करना- गौचरीजाना- पेशाव करना- ठलेजाना- देवदर्शन- गुरुवंदन- प्रतिक्रमण-पडिलेहण करना-पूजना-प्रमार्जनादि सर्व कार्य उपयोगसे यत्ना पूर्वक करने का वतलायाहै, उसमें कभी कोई कार्य विना उपयोगसे करनेमें आवे, दोषलगे, तो उसका मिच्छामि दुक्कडं देनेमें आताहै, इरियावही करनेमें आतीहै तथा देवसी- राई प्रतिक्रमण में आलोयणा लेनेमें आतीहै और उपवासादि यथा योग्य प्रायश्चित्तभी लिया जाताहै. इसीतरहसे जो अपने आत्म कल्याणके लिये संयम लेवेगा सोतो उपयोगसे मुंहकी यत्ना करके वोलेगा जिसपर भी कभी विना उपयोग उघाडे मुंह वोला जावे तो उसकी भी आलोयणा लेनेमें आतीहै, प्रतिक्रमण में मिच्छामिदुक्कडं देतेहैं, अपनी भूलका पश्चाताप भी करतेहैं और उसको सुधारनेका खपकरतेहैं. इसी तरहसे ढूंढिये लोगभी हमेशा मुंहपर मुंहपत्ति वांधतेहैं उसमें थूंक लग कर पंचेंद्रीय असंख्य संमूर्च्छिम जीवोंकी उत्पत्ति, हानि होतीहै औरभी प्रथम विज्ञापन में लिखे मुजब अनेक दोष आतेहैं, उसकी आलोयणा कोईभी ढूंढिया लेता नहीं; पश्चातापभी करता नहीं, किंतु मुंहवांधना अच्छा समझतेहैं और अपना मूढ पक्षस्थापन करने के लिये

"जिनवर फुरमाया, मुंहपत्ति बांधो मुख उपरे" ऐसी ऐसी भगवान् के नामसे झूठी झूठी बातें बनाकर वीरप्रभुकी, वीश विहरमानोंकी व अतित, अनागत और वर्तमान कालके अनंत तीर्थंकर भगवानोंकी आज्ञा उत्थापन करके अनंत संसार परिभ्रमण कराने वाला बडा अनर्थ खडा किया है, व करते भी हैं, इसलिये हमेशा मुंह बांधना बहुत बुराहै।

१७६ फिरभी देखिये-ढूंढियेलोग बोलने का थोडासा उपयोग न रहनेसे मुंहपत्ति बांधना मानतेहैं तो फिर बडे बडे सूत्रों का व प्रकरण ग्रंथोंका नाम से बांधने का ठहरा करके भोले लोंगों को भ्रममें डालकर क्यों मिथ्यात्व फैलातेहैं और जो बोलनेका थोडासा उपयोगभी न रखसकें तो ब्रह्मचर्य रक्षाकी नव वाडोंमें तथा अष्ट प्रवचनमाता पालने वगैरह हरएक धर्म के कार्यमें भी उपयोग न रख सकेंगें, उनसे शुद्धसंयम कभी नहीं पलसकता और बोलनेका उपयोग न रहने से मुंह बांध लिया उसीतरह चलने का उपयोग न रहने से विहार करना छोड कर एक जगह पडे रहें या दोनों पैरों के दो पूंजणी बांधकर रास्तेमें झाडु निकालते हुपे चलनेका नया सांग निकालें तब तो ढूंढियों की मुंह बांधनेमें दया समझी जावे नहीं तो भोले लोगों को भ्रमानेकी माया जालही समझी जातीहै और उपयोग बिना तो मुंह बांधकर बोले तोभी जिनाज्ञा विरुद्धहै, उपयोगमेंही धर्महै, इसलिये आत्मार्थियोंको ऐसी माया जाल को अवश्य त्याग करना योग्य है।

---

१७७ ढूंढियें कहतेहैं कि संवेगीसाधु उघाडेमुख बोलतेहैं, यहभी कहना झूठहै, क्योंकि सब संवेगी साधु उघाडे मुख कभी नहीं बोलते, बहुत साधु उपयोगसे मुह आगे मुहपत्ति रखकर मुंह की यत्नाकरके बोलतेहैं, कोई प्रमाद वश उघाडे मुख बोलेगा वह अपनी आत्माको दोषका भागी करेगा परंतु उघाडे मुख बोलनेकी बातको पुष्ट कभी नहीं करेगा इसलिये सब संवेगी साधुओंपर उघाडे मुख बोलनेका झूठा दोष लगाना बड़ा पाप है, और ढूंढिये साधु हमेशा मुंह बांधतेहैं, उसको बडे बडे शास्त्रों के झूठे झूठे नामलेकर, कुयुक्तियें लगाकर पुष्ट करतेहैं, भोले जीवों को भ्रममें डालते हैं, समाजमें मिथ्यात्व फैलातेहैं, इसलिये बिना उपयोग प्रमादवश उघाडे मुख बोलने वाले थोडे दोषी से भी जिनाज्ञा विरुद्ध हो कर उत्सूत्र प्ररूपणासे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका स्थापन करने वाले ढूंढिये व तेरहापथी लोग अनंत संसार बढाने वाली भाव हिंसा के महान् दोष के भागी बनतेहैं,

ऐसे महान् पापसे डरने वाले ढूंढिये व तेरहापंथी साधु-साध्वी- और श्रावक- श्राविका हमेशा मुंहपत्ति बांधने का अवश्य त्याग करेंगे परंतु पाप से नहीं डरने वाले भारी कर्मों की बातही जुदीहै।

---

१७८ कई मुंह बांधने वाले कहतेहैं कि संवेगियों में कान विंधाकर व्याख्यान समय मुंहपत्ति बांधने का लिखा है यहभी कहना झूठहै, क्योंकि ऐसा संवेगियों के किसी ग्रंथमें नहीं लिखा और ऐसा कोई करते भी नहीं किंतु जिसके गृहस्थ अवस्था में कान विंधेहुए होवें, छेदहोवें तो उसमें डालकर नाक मुंह दोनों ढककर व्याख्यान बांचतेहैं नहींतो मेरे व मेरे गुरुमहाराज आदि की तरह हाथसे मुंहपत्ति को मुंहआगे रखकर नाक मुंह दोनोंकी यत्नापूर्वक व्याख्यान बांचतेहैं इसलिये ऐसी झूठी बातें फैलाकर बालजीवों को भ्रममें डालना योग्य नहीं है और संवेगी साधु नाक-मुंह दोनों की यत्ना करके व्याख्यान देतेहैं इस दृष्टांतसे नाक खुला रखकर हमेशा मुंह बंधनेका ठहराना बडी भूल है।

---

१७९ कई मुंहबंधे कहतेहैं कि—पुस्तकपर थूंक न लगने पावे इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधतेहैं यहभी मायाचारीका प्रपंचहै क्योंकि देखो- पुस्तकतो थोडी देर बांचतेहैं और मुंहतो हमेशा बंधा रखतेहैं, अगर पुस्तकपर थूंक लगने के भयसे मुंह बांधते होवे तबतो जबतक पुस्तक बांचें तबतक बंधा रक्खें अन्य समय खोल डाले, नहीं तो पुस्तक बांचने के बहाने हमेशा मुंह बंधा रखना सो बालजीवों को भ्रममें डालने की ठग बाजीहै।

---

१८०. कई मुंहबंधे कहते हैं कि— हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखने से मन स्थिर होता है यहभी कहना झूठहै, क्योंकि देखो— ज्ञान दशासे मन को वशकरके धर्म ध्यान में चित्त लगाने से मन स्थिर होताहै परंतु मुंहपत्ति बांधने मात्र से मन स्थिर कभी नहीं हो सकता।

---

१८१ कई मुंहबंधे कहतेहैं कि— बारहा वर्षी काल पडा तब साधुलोग ढीले (क्रियामें प्रमादी) हो गयेथे, तबसे मुंहपत्ति हाथमें रखना शुरु किया हैं, परंतु उसके पहिले तो सर्व साधु हमेशा मुंहपत्ति बंधी रखते थे यहभी मुंह बंधों का कहना सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्धहै क्योंकि देखो— किसी भी आगममें जैन साधु के लिये हमेशा मुंह बांधने का नहीं लिखा, किंतु आचारांग, निशीथ, आवश्यक, दशवैकालिक आदि आगमोंमें सर्व-साधु- साध्वि

योंके हमेशा मुंह खुले रखनेका लिखाहै उनके सर्व आगम पाठ इसी ग्रंथमें पहिले लिख चुकेहैं, इसलिये अनादि कालसे मुंहपत्ति हाथमें रखनेकी जिनाज्ञाहै जिसपरभी प्रत्यक्ष आगम विरुद्ध होकर पहिलेके सर्व साधुओंको हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखनेका झूठा दोषलगातेहैं सो उत्सूत्र प्ररूपणासे अनंत तीर्थंकर महाराजोंकी आज्ञा उत्थापन करतेहैं। जैन शासनमें हमेशा मुंह बांधनेका नया ढोंग विक्रम संवत् १७०९में 'लवजी' ने चलायाहै सो प्रसिद्धहीहै और इस ग्रंथमें पहिले लिखभी आयेहैं।

---

१८२. कई मुंहबंधे कहतेहैं कि- साधुओंकी मांडली (टोली) में सब को आहार देते (वांटते) समय अगर मुंहपर मुंहपत्ति बंधीहुई न होवे तो आहार देते समय कैसे बोलसके, इसलिये मुंहपत्ति बंधी रखना योग्यहै. यहभी मुंहबंधोंका कहना प्रत्यक्ष झूठहै, क्योंकि देखो आहार करते समय मौनपने रहकर इशारेसे रोटी-शाक-जल वगैरह साधुलोग मांग सकते हैं, उससे देने वालाभी मौनपने दे सकताहै और आहार करते समय सर्व साधु-साध्वियों के मुंह खुले रहतेहैं तथा हमेशा मुंह बांधकर फिरने वाले ढूंढिये व तेरहापंथी साधु आहार करते समय मुंहपत्ति मुंहपर से खोल डालतेहैं, उस समय मुंह बांधनेकी कोई भी जरूरत नहीं पड़ती इतने परभी अगर आहार वांटने के समय मुंह बांधनेका हठ करोगे तोभी उस समय थोडी देरके लिये बांध लो मगर आहार वांटनेके वहाने चलते फिरते हमेशा बांधकर दुनियांके लोगों को सांग जैसा ढोंग बतलाकर सर्वज्ञ शासन की हीलना करवाना योग्य नहीं है।

---

१८३. ढूंढिये कहतेहैं कि मुनिके मृतक शरीर के मुंहपर मुंहपत्ति बांधी जातीहै, उससे हमभी हमेशा बांधी रखते हैं यहभी कथन अन समझकाहै, क्योंकि देखो- ढूंढियो के मरे हुए साधु-साध्वियों के मुंहपर मुंहपत्ति बांधतेहैं सो अपने मत का हठाग्रहहै, मुरदे कुछ बोलते नहीं उसके मुंहपर मुंहपत्ति बांधना व्यर्थ है। और जब मुरदे को मांडी (विमान, चकडोल) में बेठा कर जलाने को ले जाते हैं उस समय मुरदा हिलताहै उससे मुंहपत्ति भी हिलती रहतीहै उससे बार बार वायुकायके असंख्य जीवोंका नाशहोताहै उससे मुंहपत्ति बांधनेवाले

तथा बांधना अच्छा समझने वाले सब पाप के भागी होतेहैं किंतु उसमें कुछ भी जीव दया का धर्म नहींहै. ऐसे हठाग्रहसे मुरदे के मुंहपत्ति बांधना बडी भूलहै और मुरदे के मुंहपत्ति बांधनेका बतलाकर अपने हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका मान लेना यह उससे भी बडी भारी भूलहै। और किसी गच्छके यतिआदिकोंमें अगर मुरदे को मुंहपत्ति बांधनेका रिवाज होगा तो वह लोग भी थोडी देरके लिये व्याख्यान बांचने का दृश्य बतलाने के लिये नाक-मुंह दोनों बांधते होगें मगर ढूंढियों की तरह नाक खुला रखकर अकेला मुंह कोई नहीं बांधते होंगे इसलिये ऐसी २ बातों के बहाने बतलाकर नाक खुला रखकर हमेशा मुंहपत्ति बांधने की बात को पुष्ट करना बडी भूल है।

---

१८४. ढूंढिये लोग रोगीके चीराफाडी करनेके समय डाक्टर मुंहबांधते हैं, ऐसा बतलाकर हमेशा मुंहपत्ति बांधनाठहरातेहैं, सोभी अनुचित है क्योंकि डाक्टर तो जब चिरा फाडी का काम पडे तब थोडी देर के लिये नाक-मुंह दोनों ढकतेहैं, बादमें खोल डालतेहैं. इस-लिये अगर डाक्टरों की तरह ढूंढिये भी मुंह बांधना मानते होवे तब तो जब काम पडे तब नाक-मुख दोनों बांधलें फिर खोल डालें मगर नाक खुला रखकर हमेशा मुंहबांधा रखना योग्य नहींहै।

---

१८५. ढूंढिये कहतेहैं कि विष्टा आदि अशुद्ध जगहकी मक्खी (मक्षिका) अपने मुखपरबैठ जावे तो मुख अशुद्ध हो जावे उससे प्रभु का नाम लेना इत्यादि धर्मकार्य नहीं होसके इसलिये हमेशा मुखपर मुंहपत्ति बांधीरखना योग्य है, यह भी ढूंढियों का कहना अनसमझ का है, क्योंकि देखो—अन्न, मिठाई, जल, दूध, गुड़, शक्कर, घृत, दवाई वगैरह पर मक्खी बैठनेसे उन वस्तुओंको अशुद्ध समझकर सर्व जगत में कोईभी फेकता नहीं, ढूंढियेभी उन्हीं वस्तुओं को खाते-पीतेहैं और ढूंढियोंके हाथकी अंगुलियों पर मक्खी बैठनेसे अपनी अंगुलियें अशुद्ध नहींमानकर उन्हीं अंगुलियोंसे नवकरवाली (माला) फेरकर भगवान्का स्मरण करतेहैं, उसमें कोई दोष नहीं मानत. वैसेही मुहपर मक्खी बैठे तोभी मुंह से भगवान्का नाम लेने में कोई दोष नहींहै इसलिये ऐसी २ झूंठी २ कुयुक्तियें लगा कर भोले जीवोंको उन्मार्गमें डालकर मिथ्यात्व फैलाना योग्य नहींहै।

१८६. फिरभी देखो विचारकरो–मुंहपर मक्खी बैठनेसे मुंह अशुद्ध मानोंगे तो मुंहपत्ति परभी मक्खी बैठतीहै, उससे मुंहपत्तिभी अशुद्ध हो जावेगी ऐसी अशुद्ध मुंहपत्तिको अपने मुंहपर बाँधकर आप भगवान्का नाम लेतेहैं, मुंहपत्ति बांधनेसेभी मक्खीकी अशुद्धता तो मिट सकती नहीं तो फिर मक्खी बैठनेकी अशुद्धता बतलाकर भोले जीवों को भगवान्का स्मरण करनेकी मना करना तथा मुंहपत्ति बांधने के अपने झूंठे मतमें डालना ऐसी प्रपंचबाजी करना आत्मार्थियोंको योग्य नहीं है।

---

१८७. ढूंढिये कहतेहैं कि बड़े २ अंग्रेजोंने अपने बनाये पुस्तकोंमें जैन मुनियोंके मुंहपर मुंहपत्ति बांधना लिखाहै, इसलिये हम हमेशा बांधी रखते हैं. इस प्रकार अंग्रेजोंके लेखों का प्रमाण बतलाकर हमेशा मुंहपत्ति बांधनेकी बातको पुष्टकरना बड़ी भूलहै, क्योंकि देखो कोईभी अन्य दर्शनयि विद्वान् या जैनी विद्वान् वर्त्तमानमें जैन धर्मका स्वरूप लिखने वाले श्वेताम्बर, दिगम्बर व ढूंढिये इन तीनोंका स्वरूप लिखतेहैं। वह लोग तो देखें वैसा लिखें, मगर वस्तु का निर्णय रूपमें नहीं लिखते-वैसेही–अंग्रेज लेखको ने भी अभी ढूंढियों को मुंहपत्ति बांधना देख कर मुंहपत्ति बांधना लिख दिया सो जिनाज्ञानुसार सत्यरूप से नहीं लिखा किंतु वर्त्तमान में जैसा देखा वैसा लिखाहै, इसलिये ऐसे अंग्रेजों के लेखों को देखकर मुंहपत्ति बांधने की सत्यता का घमण्ड करना व्यर्थ है।

१८८. फिर भी देखो विचार करो- आज से २२-२३ वर्ष पहिले सन् १९०२ के अंग्रेज लेखकों ने ढूंढियों के मुंह बांधने का लिखा उसको सत्य स्वरूप मानते हो तब तो उसके भी पहिले के अंग्रेज लेखक फांर्बस साहब ने सन् १८७८ में 'रासमाला' मे ऐसा लिखा हैः– "The Doondea ascetic is a disgusting object— He wears a screen of cloth called Moomuttee, tied over his mouth. His body and clothes are filthy in the last degree and covered with vermin." Rasmala 1878.

इस लेखका भावार्थ ऐसा है किः—"ढूंढियों के साधू घृणा करने योग्य है वे अपने मुंह को एक प्रकारके कपडे से ढंका रखते हैं जो कि

मुंहपत्ति कहलातीहै उनके कपडे और शरीर बहुत मैले होतेहैं और उनमें जुऐ तक भी पैदा हो जाती है-" रासमाला, सन् १८७८

१८९. सन् १९०२ के अंग्रेज के लेखों को प्रमाण मानने वाले सर्व ढूंढियों को सन् १८७८ के उससे भी विशेष पुराणे ४७ वर्षके उपर के अंग्रेज लेख को प्रमाण मानकर अपने झूठे घृणीत मतको त्याग करना चाहिये-

---

१९०. ढूंढियें कहतेहैं कि 'तुंगिया नगरी' के श्रावकोंने मुखकोश बांधकर भगवान् को वंदना की थी, ऐसा ढूंढियों का कहना प्रत्यक्ष झूठ है. क्योंकि 'तुंगिया नगरी' के श्रावक अपने अपने घरमें स्नान और देवपूजन करके शुद्धवस्त्र धारण करके जहां पुष्पवती चैत्य में स्थविर भगवान् समोसरेथे, वहांगये उस संबंधी श्रीभगवती सूत्र के दूसरे शतकके पांचवे उद्देशमें सूत्र वृत्ति सहित छुपेहुए पृष्ठ १३७ में ऐसा पाठहै, सो देखो—

"थेरे भगवंते पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छंति,तं जहा-सचित्ताणं दव्वाणं विउसरणयाए १, अचित्ताणं दव्वाणं अविउसरणयाए २, एगसाडिएणं उतरासंग करणेणं ३, चक्खुप्फासे अंजलिप्पग्गहेणं ४, मणसो एगत्ति करणेणं ५, जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता जाव० तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासंति"

१९१. इस पाठमें 'तुंगिया नगरी' के श्रावक जब स्थविर भगवान् के पास में वंदना करने को गये तब वहां पर सचित्त द्रव्य (अपने अंग पर से पुष्पादि) का त्याग करना १,अचित्त द्रव्य (वस्त्र आभूषण) का त्याग न करना २, एक साडी का (अखंड दुपट्टे) का उत्तरासन करना ३, स्थविर भगवंतको (वडील आचार्य महाराज को) दूरसे देखतेही भक्ति पूर्वक दोनों हाथ जोडने ४, और अपने मनको एकगुरु भक्तिमें ही लगाना ५, इस प्रकार पांच तरहके अभिगमन (विनय) से गुरु महाराज़ के पास में जाकर विधिसहित वन्दनाकरके शुद्ध मन- वचन- कायासे- सेवाभक्ति करने लगे।

१९२. देखो ऊपर के पाठ में उत्तरासन करके गुरु महाराज के

पास जानेका लिखा है, सो यह रिवाज अभी भी जब विवेक वाले श्रावक लोग जिन मंदिर में देव दर्शन कर ने को जाते हैं तब और उपाश्रय में गुरु वंदन, व्याख्यान श्रवणादि के लिये देव-गुरु के पास जातेहैं तब दुपट्टा से उत्तरासन करते हैं, वैसेही पहिले भी श्री तीर्थंकर भगवान् को या गणधरादि साधू महाराज को वंदना करने को या धर्म देशना सुनने को विवेक वाले श्रावक जाते थे तब उत्तरासन करके वंदना करते थे परंतु मुखकोश बांध कर किसी भी श्रावक ने तीर्थंकर गणधरादि किसी भी मुनियों को वंदना करने का अधिकार किसी भी आगम में नहीं है और अभी वर्तमान काल में भी विवेक वाले श्रावक मुखकोश बांध कर गुरु को वंदना करनेको नहीं जाते इसलिये तुंगिया नगरी के श्रावक मुखकोश बांध कर वंदना करने को गये थे उस से अभी मुखपर मुंहपत्ति बांधनी योग्य है ऐसा ढूंढियों का कहना सर्वथा शास्त्र विरुद्ध होने से प्रत्यत्त मिथ्या है और इतने पर भी ढूंढिये मुखकोश बांधनेका मानते होवें तो भी जैसे श्रावक लोग जिन मंदिर में पूजा करने को जाते हैं तब मुखकोश से नाक मुंह दोनों बांधते हैं वैसेही ढूंढियों को भी मुखकोश की तरह नाक और मुंह दोनों बांधने चाहिये मगर नाक खुला रखना फिर मुखकोश बांधने का दृष्टांत बतलाकर हमेशा अकेला मुंह बांधने का ले बैठना यह तो प्रत्यक्ष ही मायाचारी है इसलिये आत्मार्थियों को ऐसी मायाचारी का झूठा पत्त त्याग करना ही उचित है।

१९३. फिरभी देखिये-ज्ञाताजी सूत्रके ८ वे अध्ययन में मल्लिनाथजी के अधिकार में मल्लिकुमारी की पुतली में से जब दुर्गन्ध निकली तब छः मित्र राजाओं ने अपने २ उत्तरासन के छेडेसे अपने २ मुंह ढके थे, तथा ९ वे अध्ययन में जिनरिखी और जिनपाल दोनों भाइयोंने जब बगीचे में दुर्गंध आतीथी तब उत्तरासन के छेडेसे अपने मुख ढके थे और बारहवें (१२) अध्ययनमें खाई की दुर्गंधसे व्याकुल होकर जितशत्रु राजा वगैरहोंने उत्तरासन के छेडे से मुख ढके थे, इत्यादि बहुत आगमों में उत्तरासन का अधिकार आता है उसका अर्थ इतनाही होता है कि जैसे ब्राह्मणोंकी जनोई (यज्ञोपवित) की तरह अच्छे आदमियोंके दुपट्टेका उत्तरासन होता है सो कभी काम पडे तो उस का छेडा मुंह आगे रखते हैं, इसलिये उत्तरासन कहनेसे मुखकोश की तरह मुंह बांधना ठहराने वाले ढूंढियों की बडी भूल है।

१९४. वीतराग सर्वज्ञ भगवानके पास भक्तिसे वंदनादि करने के

लिये जातेहैं तब अपने सुखके लिये, अपने शरीरकी शोभा के लिये, अपनी पंचेन्द्रियोंके विषयोंकी पुष्टिके लिये पुष्पादि सचित्त वस्तु भगवान्‌के पास नहीं ले जाते, परंतु भगवानकी भक्तिके लिये, शासनकी प्रभावना के लिये भगवान् के पास समोवसरण में ही जल से उत्पन्न होने वाले कमलादि और स्थल (जमीन) से उत्पन्न होनेवाले जाई-जुई आदिके पुष्पोंकी वर्षा देव करते थे, उसी तरह अभी भी भगवान् के मंदिरमें जानेके समय अपने सुख के लिये पुष्पादि सचित्त वस्तु मंदिर में ले जाने की मनाई है परंतु भगवान् की भक्ति के लिये पुष्पादि सचित्त वस्तु मंदिर में ले जाने में कोई दोष नहीं है। और भी देखिये- जैसे सचित्त वस्तु का त्यागी तथा महाव्रतधारी साधु रास्ता में विहार करते हुए जब जल वाली नदी उतरता है तब अपकाय (जल) व नीलण फुलण वगैरह के सूक्ष्म असंख्यात व अनंत जीवोंकी हानि होती है, कच्चा जल वगैरह का संघटनभी होताहै तोभी साधू के मनके परिणाम, संयम धर्म में शुद्ध होनेसे साधू सचित्त का भोगी व महाव्रत रहित नहीं हो सकता तथा साधु-साध्वियों के फोटों को (तसवीरों को) बनाने वाले कच्चे जल से धोते हैं और श्राविका तथा श्रावक हाथ में लेते हैं वंदनादिक करते हैं तो भी उसमें साधु- साध्वियोंको कच्चे जल का और श्राविका श्रावक के संघटे का दोष नहीं लगता, वैसेही भगवान्‌की प्रतिमा को भी कच्चा जल व सचित्त पुष्पादि चढाने से भगवान् त्यागी के भोगी कभी नहीं हो सकते तथा भगवान् को सचित्त पुष्पादिके संघटे का दोष भी नहीं लगता और भगवान् त्यागी हैं तो भी भगवान् की भक्तिके लिये खास भगवान् के बैठने के लिये देवता रत्नजडीत सिंहासन बनाते हैं, भगवान् उसपर बैठते हैं, भगवान् के ऊपर देवता चामर ढोलते हैं भगवान् की भक्ति के लिये महिमा करने के लिये देव दुन्दभी नगारे आदि अनेक तरह के वाजित्र बजाते हैं भगवान् के सामने इन्द्राणी वगैरह देव-देवी आदि नाटक करते हैं, तोभी भगवान् वीतराग होने से त्यागी के भोगी कभी नहीं हो सकते और भक्ति से यह कार्य करने वालों के मन के परिणाम शुद्ध तथा भगवान के गुण गान करनेमें होतेहैं इसलिये ऐसी भक्ति करने वाले देव देवीगण अपने अशुभ कर्मोंकी निर्जरा करतेहैं, महान् पुण्य उपार्जन करते हैं तथा एकंत शुभ अनुबंधकी परंपरासे मोक्ष मिलनेका फल प्राप्त करते हैं, वैसेही भगवान् की प्रतिमाको भी चामरढोलने वगैरह कार्यें करने से भगवान् त्यागी के भोगी कभी नहीं हो सकते और भक्ति

करने वाले भक्तजनों के मनके परिणाम संसारी मोह माया तथा विषय वासना आरंभ समारंभादि संसारी पापबंधन करनेसे छुटजाते हैं, और भगवान्‌की भक्ति में एक चित्त होता है, भगवान्‌के गुण गानादि में लयलीन हो जातेहैं उस समय अशुभ कर्मों का नाश होता है, शुभ पुण्य उपार्जन करते हैं और उत्कृष्ट शुभ भाव चढ जावें तो क्षण भर में मोक्ष प्राप्ति का एकंत शुभ फल उत्पन्न कर लेते हैं, इस बातका और जिनप्रतिमा जिन सरीखी किस अपेक्षा से है व पूजामें भावहिंसा नहीं लगती एकंत लाभ होताहै तथा जिन प्रतिमा पूजने से मोक्ष प्राप्ति का फल कैसे मिले इत्यादि सब बातोंका विस्तार पूर्वक खुलासा सब तरह की शंकाओं का समाधान सहित, " श्री जिन प्रतिमा को वंदन-पूजन करने की अनादि सिद्धि " नामा ग्रंथमें अच्छी तरह लिखा है उस के वांचने से सब बातों खुलासा हो जावेगा।

---

१९५. ढूंढिये कहते हैं कि " हितशिक्षा " के रासमें हमेशा मुंह पत्ति बांधना लिखा है, यह भी प्रत्यक्ष झूठ है क्योंकि देखो " हितशिक्षा " के रास भीमसिंह माणेक ने मुंबई में छपवाया है उस के प्रष्ठ ३७-३८ में अज्ञानी, अगीतार्थ, व्याख्यान बांचने के अयोग्य के लक्षण बतलाये हैं उसमें "सूत्र भेद समझे नहीं, चरित्र तणों नहीं जाण ॥ अवसर सभा न ओलखे, ते शुं करे वखाण ॥ १ ॥ योग्य अयोग्य जाने नहीं, जिम तिम दिये उपदेश ॥ पंखिनी सुघरीनी परे, पामे तहे कलेश ॥ २ ॥ " इत्यादि अयोग्य पुरुष को हित शिक्षा देनेके प्रसंग में मुंहपत्ति संबंधी भी " मुखे बांधी ते मुहपत्ति, हेठे पाटो धारी ॥ अति हेठी दाढीथइ, जोतर गले निवारि ॥१॥ एक काने धज सम कही, खंभे पछेडी ठाम ॥ केडे खोशीते कोथली, नावे पुण्य ने काम ॥ २ ॥" यह दो गाथा कही हैं सो इन गाथाओंसे हमेशा मुंहपत्ति बांधना कभी साबित नहीं हो सकता क्योंकि इन गाथाओं में अज्ञानी प्रमादियों को उपदेश देते हुए कहा है कि मुंहपत्ति को कोई तो मुंहपर बांधलेता है, कोई पाटे की तरह मुंह से थोडी नीचे कर लेता है, कोई डाढी पर रखता है, कोई गले में जोतर (झूसर) की तरह लटकाता है, कोई ध्वज की तरह एक कान पर लटकाता है, कोई थैली की तरह कमर में खोस लेता है, कोई चद्दरकी तरह खंभे (स्कंध) पर रख लेता है, इस प्रकार मुंहपत्ति को मुंहपर बांधने से व थोडी नीचे रखने से मुंहपत्ति पुण्य के काम में नहीं आती, यानी-जिनाज्ञा में नहीं है।

१६६. देखिये ऊपर के लेख में मुंहपत्तिको बांधना निषेध करके बांधने वालोंको अज्ञानी ठहराये हैं, इसलिये आगे पीछेका संबंध छोड कर बीचमें से थोडासा विना संबंध का अधूरा लेख बतलाकर उसका उलटा अर्थ कर के हमेशां मुंहपत्ति बांधने का ठहराना वडी भूल है।

१६७. फिर भी देखो विचार करो "हित शिक्षा" के रास को बनाने वाले ऋषभदास जी श्रावक हाथ में मुंहपत्ति रखने वाले थे, उनके गुरुजी भी हाथ में मुंहपत्ति रखने वाले थे तथा उनकी श्रद्धा भी हाथ में मुंहपत्ति रखने की थी, इस लिये मुंह की यत्ना करने के लिये हाथ में मुंहपत्ति रखने का निषेध नहीं किया किन्तु बांधने का निषेध किया है और ऊपर की गाथा मुजब ढूंढिये ही मुंहपत्ति को मुंहपर बांधते हैं, तथा किसी को कभी छींक आवे तव नाक में श्लेषम आता है उस को साफ करने के लिये कोई मुंहपत्ति को थोडी नीचे कर लेता है, तथा कोई दवाई लेने के लिये या जल पीने के लिये कोई मुंहपत्ति को खींच कर डाढी पर नीचे कर देतेहैं, कोई डाढीके भी नीचे गलेमें व कोई ध्वज की तरह एककान पर लटका लेते हैं, इस तरहसे ढूंढिये ही मुंहपत्तिकी विटंबना करतेहैं यह वात प्रत्यक्ष अनुभव सिद्ध है और हमनेभी हमारे कई ढूंढिये मित्रों को ऐसे करके दवा या जल पीते देखाहै और मुंहपत्ति का दोरा छोडकर ढूंढियों के साधुपने को झूठा जानकर त्याग करके शुद्ध संयम लेने वाले वहुत साधु यह वात खुलासा पूर्वक कहते हैं कि- हमको फजर में दूध वगैरह लेते समय या सुपारी वगैरह खाते समय, दवाई लेते समय तथा रोगादि कारण से सरदी लगजाती तव नाकका श्लेषम साफ करने के लिये और मुंह की लाल वा कफ वगैरह बाहिर फेकनेके लिये, यंत्र दवा कर कोई वस्तुको ऊंची-नीची करनेकी तरह अथवा नाटक के परदेकी तरह वारवार हमेशा दिनमें १०-२० दफे ऊपर लिखे प्रमाणे मुंहपत्तिकी विटंवना करनी पडतीथी सो इस विटंवनाको हमने तो छोडदिया, इसलिये ऊपर की गाथा खास ढूंढियोंके लियेही रासके किसी लेखकने बनाईहैं, क्योंकि कोईभी संवेगी साधु मुंहपत्ति बांधी रखता नहीं तथा दवा या जल पीते समय मुंहके नीचे डाढी या गले में वा एक कान वगैरह पर लटकाताभी नहीं और यह कार्य ढूंढिये प्रत्यक्ष करतेहैं, ढूंढियोंको ऐसा करनेका निषेध करनेके लिये ही रूपकालंकारमें ढूंढियों

का उपहास करते हुए ऐसी गाथा बनाई हैं इसलिये मुंहपत्ति बांधने का निषेध करने वाली गाथाओंका भावार्थ समझे विना ऐसी गाथाओं को देखकर मुंहपत्ति बांधनेका ठहरानेवाले ढूंढियोंकी बडी अज्ञानताहै।

---

२०० ढूंढिये कहतेहैं कि नाककी हवा से जीव नहीं मरते इस लिये हम नाक खुला रखतेहैं यहभी ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष मिथ्याहै, क्योंकि देखो-"आचारांग" सूत्रमें उश्वासलेते, निःश्वास लेते, छींककरते नाक मुंह दोनों ढकलेना कहाहै, तथा 'आवश्यक' सूत्रमें भी कायोत्सर्गमें यदि खांसी, छींक, आदि आवें तो उसकी यत्ना करनेके लिये हाथ उठाकर नाक-मुंह दोनोंके आगे रखनेका कहाहै. इसके पाठ पहिले लिख चुकेहैं, इस प्रमाणसेभी नाकसे जीवोंकी हानि होना आगमप्रमाणानुसार प्रत्यक्ष सिद्धहै।

२०१ फिरभी देखिये-सोतेसमय, चलतेसमय या जोरसे कार्य करते समय नाकके छिद्रोंसे इतना वेगसे जोरका श्वासोश्वास निकलताहै कि कभी २ श्वासके झपाटे से नाकके अन्दर डांस-मच्छर-मक्षिका, आदिजीव घुस जाते हैं, यह प्रत्यक्ष अनुभव सिद्ध जगत् प्रसिद्ध बातहै इसलिये सिद्धहुआ कि नाककी हवासे भी जीव अवश्य मरतेहैं, यदि ढूंढियोंको जीव दयासे प्रीति हो तो नाकपर अवश्य मुंहपत्ति बांधें, जिसपरभी नाककी हवासे जीव नहीं मरनेका कहकर नाककी यत्ना करने का उडा देतेहैं, सो प्रत्यक्ष आगम विरुद्ध होकर मिथ्याभाषण करके असंख्य जीवोंकी हानिके पापके भागी बनतेहैं।

---

२०२ ढूंढिये कहतेहैं कि "पन्नवणा" सूत्रमें लिखाहै कि भाषा वर्गणा के पुद्गल मुंहके अन्दर रहें तबतक चार स्पर्शवाले होतेहैं परन्तु जब मुंहके बाहिर निकलें तब आठ स्पर्शवाले होकर वायुकायके जीवोंका नाश करतेहैं इसलिये वायुकायके जीवोंकी रक्षाके लिये हमलोग हमेशा मुंहपत्ति बांधतेहैं, यहभी ढूंढियोंका कहना प्रत्यक्ष झूठहै, क्योंकि देखो- 'पन्नवणा' सूत्र वृत्तिसहित छपेहुए पृष्ठ २६१ में ऐसा पाठहै—

"जाइं भावतो फासमंताइं गेण्हति ताइं किं एगफासाइं गेण्हइ, जाव अट्ठफासाइं गिण्हति ? गोयमा ! गहणदव्वाइं पडुच्च णो एगफा-

साइं गेण्हति, दुफासाइं गिण्हइ जाव चउफासाइं गेण्हति, णो पंचफासाइं गेण्हति, जाव नो अट्ठफासाइं गेण्हति, सव्वगहणं पडुच नियमा चउफासाइं गेण्हति, तं जहा- सीतफासाइं गण्हति, उसिणसाफाइं, निद्धफासाइं, लुक्खफासाइं गेण्हति "

२०३ ऊपरके पाठका भावार्थ ऐसाहै कि ११ वें भाषापदमें द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावसे भाषा वर्गणामें वर्ण-रस-गंध-स्पर्शके पुद्गल ग्रहण करनेके अधिकार में गौतमस्वामीने भगवन्से पूछा कि हे भगवन् जब भावसे स्पर्शवाले पुद्गल ग्रहण करे तब भाषा वर्गणा में एक स्पर्श वाले पुद्गल ग्रहण करे या यावत् आठ स्पर्शवाले पुद्गल ग्रहण करे। तब भगवान्ने कहा कि हे गौतम-ग्रहण द्रव्यकी अपेक्षासे भाषा वर्गणा में एक स्पर्शवाले पुद्गल ग्रहण नहीं करे किन्तु दो स्पर्शवाले पुद्गल ग्रहण करे यावत् चार स्पर्शवाले पुद्गल ग्रहण करें परन्तु पांच स्पर्शवाले पुद्गल ग्रहण न होवे यावत् आठ स्पर्शवाले पुद्गल भी ग्रहण न होवें और सर्व ग्रहणकी अपेक्षासे नियमा शीत-उष्ण-स्निग्ध-रूक्ष यह चार स्पर्शवाले पुद्गल ग्रहण होतेहैं, इसलिये गुरु (भारी), लघु (हलके) वगैरह आठ स्पर्शवाले पुद्गल भाषा वर्गणा में ग्रहण नहीं होसकते।

२०४ देखिये ऊपरके मूलसूत्रके पाठमें भाषा वर्गणाके पुद्गलोंमें चार स्पर्श बतलाये हैं मगर मुंहके बाहिर निकलनेसे आठ स्पर्शवाले होनेका नहीं बतलाया, इसलिये ढूंढिये अपनी कल्पनासे मुंहके बाहिर भाषा वर्गणाके पुद्गलोंमें आठ स्पर्श बतलाते हैं सो प्रत्यक्ष उत्सूत्र प्ररूपणाहै। और इसी भाषापदके आगेके पाठमें पृष्ठ ६६२ में कहाहै कि-"जाइं भिन्नाइं णिसरति ताइं अणंतगुण परिवुड्ढीए णं परिवुड्ढमाणाइं लोयंतं फुसन्ति " अर्थात्- जो भाषाके पुद्गल भिन्न रूपमें मुंहके बाहिर निकलतेहैं सो अनन्त गुणी वृद्धिहोकर यावत् लोकान्त पर्यन्त पहुंचते हैं अब विचार करिये, अगर भाषा वर्गणाके पुद्गल मुंहके बाहिर निकलने से आठ स्पर्शवाले होजावें तो उसमें गुरु (भारी) स्पर्शभी होगा सो उस भारी स्पर्शकी भी अनन्त गुणी वृद्धिहोनेसे भारी स्पर्शके पुद्गल लोकान्त तक कभी नहीं जा सकते, इसलिये भाषा वर्गणाके पुद्गलोंमें आठ स्पर्श मानना बड़ी भूलहै।

२०५ फिरभी देखिये तीर्थंकर भगवान मुंहपत्ति बांधना तो

दूर रहा किन्तु सर्वथा मुंहके आगेभी कभी नहीं रखते, और जब धर्मदेशना देतेहैं, तब एक योजन (चारकोस) के प्रमाणमें देव, मनुष्य व तिर्यंच पशु, पक्षी आदि सबके सुननेमें आतीहै और ढूंढियोंके कथनानुसार भाषा वर्गणाके पुद्गल मुंहके बाहिर निकलनेसे आठ स्पर्शवाले होकर यदि वायु कायके जीवोंकी हानि करते होंवें तब तो तीर्थंकर भगवान् बहुत वायुकायके जीवोंकी हिंसा करने वाले ठहरेंगे, ढूंढियोंकी दया तो तीर्थंकर भगवान्से भी बहुत ज्यादा बढगई, सो आप खुद मुंह बांध कर दया पालने वाले बनतेहैं और तीर्थंकर भगवान् को हमेशा खुले मुंह बोलने से वायु कायके जीवोंकी हिंसा करने वाले ठहरातेहैं, बडे अफसोस की बातहै कि ढूंढियोंमें कैसी अज्ञान दशा फैली हुईहै सो तीर्थंकर भगवान्की अवज्ञा करने वाली कुयुक्ति करनेमें संकोच नहीं करते हैं, शास्त्रोंमें तीर्थंकर भगवान् की भाषा को एकान्त निर्दोष बतलाया है, इसीसे साबित होताहै कि भाषाको आठ स्पर्शवाली कहकर वायु कायके जीवोंकी हिंसा करने वाली ढूंढिये ठहराते हैं सो प्रत्यक्ष शास्त्र विरुद्ध है।

२०९ यहांपर कोई शंका करेगा कि तीर्थंकर भगवान् मुंहपत्ति नहीं रखते हैं उसी तरह हमलोग भी मुंहपत्ति न रक्खें तो क्या दोष है. इसबात का समाधान ऐसा है कि- भगवान् का आचार अगोचर है वह तो कल्पातीतहैं तथा रागद्वेष मोह प्रमाद वगैरह दोष नाशकरने वालेहैं छद्मस्थ अवस्था में भी सदा अप्रमादी रहतेहैं व अवधिज्ञान होनेसे उपयोग वंतभी रहतेहैं,और हमेशा काउसग्ग ध्यानमें मौन रहते हैं व कभी बोलनेका कामपडे तोभी उपयोग से निर्वद्य भाषा बोलते हैं इसलिये रजोहरण- मुंहपत्ति वगैरह कोई भी उपकरण नहीं रखते और अपन लोग राग द्वेष मोह कषायादि दोष सहित प्रमादी हैं और समय २ भूलने वाले हैं इसलिये जीवदया वगैरह के लिये रजोहरण मुंहपत्ति वगैरह उपकरण रखने पड़ते हैं। दूसरी बात यह भी है कि- भगवान् तीर्थनायक हैं जब सर्वज्ञ होते हैं तब धर्म देशना देते हैं सर्वज्ञकी भाषा सर्वथा निर्दोषहोतीहैं और अपने को भगवानकी आज्ञा मुजब चलना पडताहै परन्तु भगवान्की देखादेखी कभी नहीं करसकते और भगवानने सर्वसाधु- साध्वियोंको रजोहरण- मुंहपत्ति वगैरह उपकरण रखनेकी आज्ञादी है इसलिये अवश्यही रखने चाहियें, इतने परभी जो कोई अभी भगवान् की देखा देखी मुंहपत्ति न रखेगा वह भगवान् की आज्ञा का उत्था-

पन करने वाला ठहरेगा, उस से अपने को अवश्य मुंहपत्ति रखना और जब बोलने का काम पडे तब मुंह आगे रखकर उपयोग से यत्नापूर्वक बोलना योग्य है; अन्यथा सावद्य भाषा बोलने वाला दोषी ठहरेगा.

२०७ फिर भी देखिये विचार करिये-अगर भाषा वर्गणा के पुद्गल आठ स्पर्श वाले होकर वायुकाय के जीवों की हिंसा करते होवें तब तो कपडे की मुंहपत्ति बांधने से तो क्या किन्तु लोहकी मुंहपत्ति बांधनेसे भी उसका बचाव कभी नहीं हो सकेगा, क्योंकि भाषाके पुद्गल मुंहपत्ति बांधने पर भी अवश्य ही मुंह के बाहिर निकलते हैं यदि मुख के बाहिर न निकलें तो दूसरोंको शब्दही सुननेमें न आसके इसलिये भाषाके पुद्गलोंसे वायुकायके जीवोंका बचाव करनेके लिये मुंहपत्ति बांधना व्यर्थ है।

२०८ फिरभी देखिये- भाषा के लिये पुद्गल ग्रहण करने तथा बोलने और आगे बोलने में आवेंगे उनसबको भाषाही कहीजाती है, इसलिये जब चारस्पर्श वाले पुद्गल ग्रहणहोवें तब चारस्पर्श वालेही बोलने में आवेंगे, इनमें आठस्पर्श होने का कोई कारण नहीं, कोई युक्ति नहीं, व कोई आगम प्रमाण भी नहीं इसलिये आठस्पर्श ठहराने वाले ढूंढिये प्रत्यक्षझूठे हैं और भाषा वर्गणाके पुद्गलों से वायुकाय के जीवों की हानि होने का किसी जैन शास्त्रमें लिखा नहीं, किंतु बोलने के समय नाक द्वारा निकलने वाले श्वास मुंहसे भी निकलते हैं उससे मक्खी, मच्छर, डांसादि जीवों की हानि होती है तथा सचित्त पृथवी-काय, अपकाय (जलका बिंदु) वगैरह मुंह के अंदर गिरकर विराधना होती है इत्यादि त्रस, व स्थावर जीवों की रक्षा करने के लिये बोलते समय मुंह आगे वस्त्र (मुंहपत्ति) रखने की जरूरत है। इतनेपरभी अगर सिर्फ एक वायुकाय की दया पालने के लिये मुंहपत्ति बांधने का ढूंढिये मानते हैं तबतो प्रतिक्रमण करना, पडिलेहण करना, गौचरी जाना, विहार करते हुए गांवोंगांव फिरना, गुरुवंदनादि कार्योंमें उठ बैठ करना, चलना, फिरना, लोटना, सोना, रजोहरणसे जमीन वगैरह को झाडना, पात्रेआदि उपकरणों की पुजन—प्रमार्जन करना, लंबा रजोहरण हिलाते हुए रास्ते में चलना, हाथ पैरादि अंग उपांग हिलाने इत्यादि अनेक कार्योंमें बार बार बहुत दफा वायुकाय की प्रत्यक्ष विरा-धना (हिंसा) होती है, इसलिये वायु कायके जीवों की दया पालने के

लिये उपर लिखे सर्वकार्यें ढूंढियों को अवश्य ही त्याग करने चाहियें तभी वायुकायकी दया पालने वाले ढूंढिये बन सकेगें, नहीं तो ऊपर, मुबज सर्व कार्य करते रहेंगे और फिर वायुकायकी दयाकेलिये मुंह बांधने का हठ करेंगे तबतो वायुकायकी दया नहीं किंतु वायुकायके नाम से भोले जीवों को भ्रममें डालने की प्रपंच बाजी फैलाने का ढोंगही समझा जावेगा, इसलिये आत्मार्थियोंको ऐसी मायाचारी की प्रपंच बाजी का त्याग करनाही हितकारी है।

---

२०९ "जैन संप्रदाय शिक्षा" चौथा अध्याय पृष्ठ १५९ वेंमें वैद्यक अधिकारमें हमेशा मुंहबंधा रखनेसे अनेक नुकसान होनेका बतालायाहै उसका लेखनीचे मुजब है-"तीसरा पदार्थ- उस हवामें दुर्गंध युक्त मैल है, अर्थात्- श्वासका जो पाणी स्वच्छ नहीं होता है वह वर्त्तनों के धोवन के समान मैला और गन्दा होता है उसी में सडेहुए कई पदार्थ मिले रहते हैं, यदि उसको शरीर पर रहने दिया जावे तो वह रोग को उत्पन्न करता है, अर्थात्- श्वासकी हवामें स्थित वह मलीन पदार्थ हवाके समान ही खराबी करता है, देखो! जो कोई एक पेशे-वाले लोग हरदम वस्त्र से अपने मुख को बांधे रहते हैं, वह (मुखका-बांधना) रसायनिक योग से बहुत हानि करता है, अर्थात्-मुंहपर दाग होजाते हैं, मुंहके बाल उडजाते हैं, श्वास व कासरोग होजाता है. इत्यादि अनेक खराबियां होजाती हैं, इसका कारण केवल यही है कि मुंहके बँधे रहने से विषैली हवा अच्छे प्रकार से बाहर नहीं निकलने पाती है"

२१० देखो उपरके लेखका भावार्थ ऐसा है कि हमेशा मुंह बंधा रखनेसे बोलते समय पेटके अंदरसे जो दुर्गंध युक्त खराब परमाणु मुंह में से बाहिर निकलते हैं, सो वह मुंहपत्ति के लग जाते हैं वोही खराब परमाणु मुंह के श्वासोश्वाससे पीछे पेटके अंदर जाते हैं तथा नाकसे श्वासोश्वासके साथ भी जो दुर्गंध वाले खराब परमाणुं बाहिर निकल-ते हैं, वह भी मुंहपत्ति के उपर चिपक जाते हैं और उश्वास के साथ पीछे पेट के अंदर चले जाते हैं, उससे पेटके अंदर में फेफसे बिगडते हैं और कास- श्वास वगैरह रोग उत्पन्न होते हैं, इस प्रकार देशी वैद्य और अंग्रेजी डाक्टर लोगभी हमेशा मुंह बंधा रखने में बहुत नुकसान

बतलाते हैं, इसलिये हमेशा मुंहपत्ति बांधने का रिवाज बहुत बुरा होने से अवश्य त्याग करना उचित है। और बोलने के समय मुंह के आगे मुंहपत्ति रखने से उसमें खुली हवा जाती आती रहती है उससे दुर्गंध वाले खराब पुद्गल उडजाते हैं उससे मुंहआगे मुंहपत्ति रखने से उपर के दोष नहीं आसकते, इससे सिद्धहुआ कि हमेशा मुंहपत्ति बांधना छोडकर हाथ में रखना और जब बोलने का कामपडे तब मुंहआगे रखकर यत्नासे बोलना योग्य है।

---

२११ ढूंढिये कहते हैं कि-'अवतार चरित्र' में हमेशा मुंहपत्ति बांधना लिखा है, यहभी प्रत्यक्ष झूठ है. क्योंकि देखो-'अवतार चरित्र' में जैनसिद्धांतों को तथा जैन-बोद्धकी भिन्नताको समझे विना २३ वें बुद्धावतारके चरित्रमें कई तरह की जैनधर्म की कुछ बातें लिखी हैं, और जैसे अपने लोग रजोहरण कहते हैं, उसको कई अन्य दर्शनीय लोग झाडु, बुहारी या पुंजिका कहते हैं और अपने लोग मुंहपत्ति-मुखवस्त्रिका कहते हैं उसको कई अन्य दर्शनीय मुखवस्त्रि या मुखपट्टि कहते हैं उसी तरह से बुद्धचरित्र में भी 'अवतार चरित्र' के छपे हुए पृष्ठ ५१६ में " सब श्रावक पोसा दिवस साधि॥ मुखपट्टि रूद्ध आरँभ उपाधि " इस वाक्य में श्रावकों के पौषध करने संबंधी मुखपट्टि (मुंहपत्ति) बतलाया है, मगर मुखपट्टि मुंहपर बांधी रखने का नहीं लिखा इसलिये 'अवतार चरित्र' के नाम से हमेशा मुंहपत्ति बांधने का ठहराना बडी अज्ञानता है।

---

२१२ ढूंढिये कहते हैं कि "षड् दर्शन समुच्चय" नामा ग्रंथ में हमेशा मुंहपत्ति बांधने का लिखा है, यह भी प्रत्यक्ष झूठ है. देखो- मलधारि श्री राजशेखर सूरिजी विरचित "षड्दर्शन समुच्चय" ग्रंथ के छपे हुए प्रथम पृष्ठमें ही जैन दर्शन संबंधी "तत्र जैनमते लिङ्गं, रजोहरण मादिमम्॥ मुखवस्त्रं च वेषश्च, चोलपट्टादिकः स्मृतः ॥१॥" यह श्लोक कहा है इस श्लोक में जैन साधु का लिंग रजोहरण व मुखवस्त्रिका कहा है तथा चौलपट्टादि वेष दिखलाया है। इस में मुंहपत्ति का नाम बतलाया है, मगर मुंहपत्ति को मुंहपर बांधने का नहीं बतलाया इसलिये 'षड्दर्शन समुच्चय' के नाम से हमेशा मुंहपत्ति बांधने का ठहराने वाले प्रत्यक्ष मिथ्या वादी हैं।

॥ ख़ास जरूरी सूचना ॥

२१३ ढूंढियों ने "अवतार चरित्र" इत्यादि अन्य दर्शनीय ग्रंथों में तथा "षड् दर्शन समुच्चय" इत्यादि जैन शास्त्रों में 'मुखवस्त्रिका, मुंहपत्ति, मुखपट्टी' ऐसे मुंहपत्ति शब्द के नाम मात्र को देखकर उससे हमेशा मुंहपत्ति बांधनेका ठहराया है सो बडी भूल की है। मुंहपत्ति कहने से हमेशा मुंहपर बांधना कभी नहीं ठहर सकता, इसबातका विशेष विवरण पहिले लिख आया हूँ। अगर ढूंढियों को मुंहपत्ति शब्द देखने से भ्रम पडगया हो तवतो धर्म संग्रह वृत्ति १, श्राद्ध प्रतिक्रमण सूत्र की चूर्णि २, वृत्ति ३, महाभाष्य ४, बृहत्कल्प चूर्णि ५, वृत्ति ६, आवश्यक चूर्णि ७, वृत्ति ८, लघुवृत्ति ९, टिप्पणक १०, षडावश्यक वालाववोध ११, पंचवस्तु वृत्ति १२, विधि प्रपादि १५ विधि-विधानकी सामाचारियोंके ग्रन्थोंमें एवं २७, प्रवचनसारोद्धार बृहद्वृत्ति २८, लघुवृत्ति २९, नवपद प्रकरण वृत्ति ३०, श्रावक धर्म प्रकरणवृत्ति ३१, श्राद्ध विधि ३२, प्रतिक्रमण गर्भहेतु ३३, देववन्दन-गुरुवंदन भाष्य अवचूरि वृत्ति ३४, त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र ३५, उपदेश प्रासाद ३६, सामाचारी शतक ३७ इत्यादि विधिवाद के, तथा चरितानुवाद के व उपदेश के सैकड़ों जैन ग्रंथों में साधु- श्रावक के सम्वन्ध में मुंहपत्ति शब्द ढूंढियों के देखने में आवेगा परन्तु मुंहपत्ति शब्द से हमेशा मुंहपर बांधना कभी साबित नहीं हो सकता, इसलिये योगशास्त्र वृत्ति, आचार दिनकर, आवश्यक बृहत्वृत्ति, ओघ निर्युक्ति, पिण्डनिर्युक्ति, आदि प्राचीन शास्त्रोंके नामसे तथा भगवतीजी, ज्ञाताजी, उपासकदशा, अनुत्तरोववाई, अंतगडदशा, विपाक, उत्तराध्ययनादि आगमोंके नामसे केवल मुंहपत्ति शब्द देखकर अपनी अज्ञान कल्पना से हमेशा बांधने का ठहराया है सो उत्सूत्र प्ररूपणासे भोलेजीवोंकों उन्मार्गमें डालकर संसार वढानेका वडा अनर्थ खडा किया है। और जब हमेशा मुंहपत्ति बांधीरखना जिनाज्ञा मेंही नहीं है किसी जैनागम में कहीं भी नहीं लिखा तो फिर शिवपुराण, श्रीमाल पुराण, अवतार चरित्र वगैरह मिथ्यात्वियों के शास्त्रों के नाम से और हितशिक्षाका रास, हरिवल मच्छीका रास, भुवनभानु केवलि का रास, वगैरह के लेखों का भावार्थ समझेविना तथा २२-२३ वर्ष के अंग्रेज लेखकों के (वर्त्तमानिक काल में ढूंढियों के मुंह बांधने का) लेख देखकर उससे हमेशा मुंहपत्ति बांधने का ठहराना बडी ही भूल है. इन सर्व बातों का पूरा २ विशेष निर्णय इसग्रंथको सम्पूर्ण बांचने वाले पाठकगण अच्छी तरहसे समझलेंगे।

२१४ अब आत्मार्थी भव्य जीव सत्य बातको ग्रहण करनेवाले सज्जन पाठक गणसे मेरा इतनाही कहनाहै- कि ढूंढियोंकी तरफसे हमेशा मुंहपत्ति बांधने का ठहराने बाबत आजतक जितनी पुस्तकें छपी हैं उसमें जिस २ शास्त्र का नाम लेकर और झूठीझूठी कुयुक्तियें लगा कर हमेशा मुंहपत्ति बांधने का ठहरायाहै उन्ह सर्व शास्त्रोंके पाठों के साथ और सर्व कुयुक्तियोंके समाधान सहित मैंने इसग्रंथमें हमेशा मुंहपत्तिबांधीरखनेका नयारिवाज सर्वथा जिनाज्ञा विरुद्ध साबित करके बतलाया है तथा हमेशा मुंहपत्ति बांधी रखने में अनेक दोषभी बतला दियेहैं और मूल आगमप्रमाणानुसार मुंहपत्ति हाथ में रखनेका सिद्ध कियाहै, सो जब बोलने का कामपडे तब मुंहआगे रखकर यत्नापूर्वक बोलना यही अनादि मर्यादाहै, यही जिनाज्ञा है, और यही युक्तियुक्त सत्य बातहै, इसलिये अब जो आत्मार्थी होगा सो इस ग्रन्थको पूरा २ अवश्य बांचकर सत्य असत्य का निर्णय करके दृष्टिराग, लोक लज्जा व गुरुपरंपराका झूठाआग्रह को छोडकर अपने आत्मकल्याण के लिये जिनाज्ञानुसार सत्य को अवश्य ग्रहण करेगा. मेरा विचार इस ग्रंथ में जिन प्रतिमा के दर्शन- पूजन करनेकी रीति व उसका लाभ तथा चैत्य विवादका निर्णय और दंडा, धोवण, वासी, विदल, आचार, कंदमूल, ऋतुधर्म, रात्रिजल वगैरह विषयों संबंधी इस जगह खुलासा लिखने का था परन्तु यह ग्रंथ बहुत बढगया इसलिये यहां नहीं लिखता, इस ग्रन्थ की जाहिर उद्घोषणा में थोडा २ लिखूंगा, और विशेषतासे "श्रीजिनप्रतिमाको वंदन-पूजन करने की अनादि सिद्धि" नामाग्रंथ में लिखने में आवेगा. वहां से पाठकगण इन सर्व बातोंका निर्णय समझ लेंगे। इति शुभम्.

श्रीवीर निर्वाण सं० २४५१, विक्रम सं० १९८२ आषाढ कृष्ण २ मंगलवार.

हस्ताक्षर-परमपूज्य परमगुरु शांतमूर्ति श्रीमन्महोपाध्यायजी श्री १००८ श्रीसुमतिसागरजी महाराजके चरणकमलोंका सेवक पं० मुनि-मणिसागर.

ठिकाना जैन धर्मशाला, राजपूताना, मु- कोटा.

॥ इति श्रीआगमानुसार मुंहपत्तिका निर्णय नामाग्रन्थ समाप्तः ॥

इस ग्रंथको छपवाने संबंधी द्रव्य सहायक महाशयोंके नाम.

रु० ५०१) श्रीयुत, सेठजी गणेशदासजी हमीरमलजी,
१५१) श्रीयुत, सेठजी पानाचंदजी उत्तमचंदजी,
१०१) श्रीयुत, एक गुप्त श्रावक,
१०१) श्रीयुत, देवराजजी प्यारेलालजी जिन्दाणी,
१०१) श्रीयुत, गुलावचंदजी सोभागमलजी मुथा,
१०१) श्रीयुत, हिम्मतरामजी जुहारमलजी सिंगवी,
१०१) श्रीयुत, चंदनमलजी रीखवदासजी लुणीया,
१०१) श्रीयुत, सीरेमलजी भूरामलजी सिंगी,
१०१) श्रीयुत, जयचंदजी तेजमलजी मालू दलाल,
६१) श्रीयुत, फतेराजजी गजराजजी मुणोत,
५१) श्रीयुत, भेरूदानजी केशरीमलजी मालू ,
५१) श्रीयुत, सोभागमलजी सांकला,
४१) श्रीयुत, सूरजमलजी वागचार,
२५) श्रीयुत, मुनीमजी वालुरामजी चौवे ब्राह्मण,
२५) श्रीयुत, शेरसिंहजी जोरावरसिंहजी कोठारी,
२५) श्रीयुत, चिन्तामणदासजी, वरडियारी धर्मपत्नी,
२५) श्रीयुत, वृद्धिचन्दजी डाकालिया,
२५) श्रीयुत, मोतीलालजी भणसाली,
२५) श्रीयुत, समीरमलजी कल्याणमलजी वांठिया,
२५) श्रीयुत, दोलतराम जी फतेचंद जी अग्रवाल,
२१) श्रीयुत, पन्नालालजी वारां वाले की धर्म पत्नी,
१५) श्रीयुत, नथमलजी प्यारचन्दजी जौहरी,
१५) श्रीयुत, छगनमलजी मीश्रीलालजी वाफणा,
११) श्रीयुत, सूरजमलजी जुगराजजी वाफणा,
११) श्रीयुत, जेठमलजी आईदानजी पारख,
११) श्रीयुत, रीखभदासजी अखेराजजी पारख,
११) श्रीयुत, रीखभदासजी चिंतामणदासजी वडेर,
११) श्रीयुत, कुशलराजजी समदडीया,
११) श्रीयुत, गोवींदसिंहजी डांगी,
७) श्रीयुत, जीवराजजी भंडारी,
५) श्रीयुत, हीराचन्दजी रूपचन्दजी मुथा,
५) श्रीयुत, मोतीलालजी वस्तीमलजी धाडीवाल,
५) श्रीयुत, रीखवदासजी जेठमलजी पारख,